[प्रथम भाग]

ज्ञान केन्द्र
शान्ति केन्द्र
ज्योति केन्द्र
दर्शन केन्द्र
चाक्षुष केन्द्र
प्राण केन्द्र
विशुद्धि केन्द्र
आनन्द केन्द्र
तैजस केन्द्र
स्वास्थ्य केन्द्र
शक्ति केन्द्र

मानव शरीर में चेतना केन्द्र

प्रकाशक :

श्री पीताम्बरापीठ संस्कृत परिषद्,
दतिया (म. प्र.)

योग-विज्ञान

(प्रथम भाग)

लेखक

अज्ञात

श्री पीताम्बरा संस्कृत परिषद्

दतिया, मध्य प्रदेश
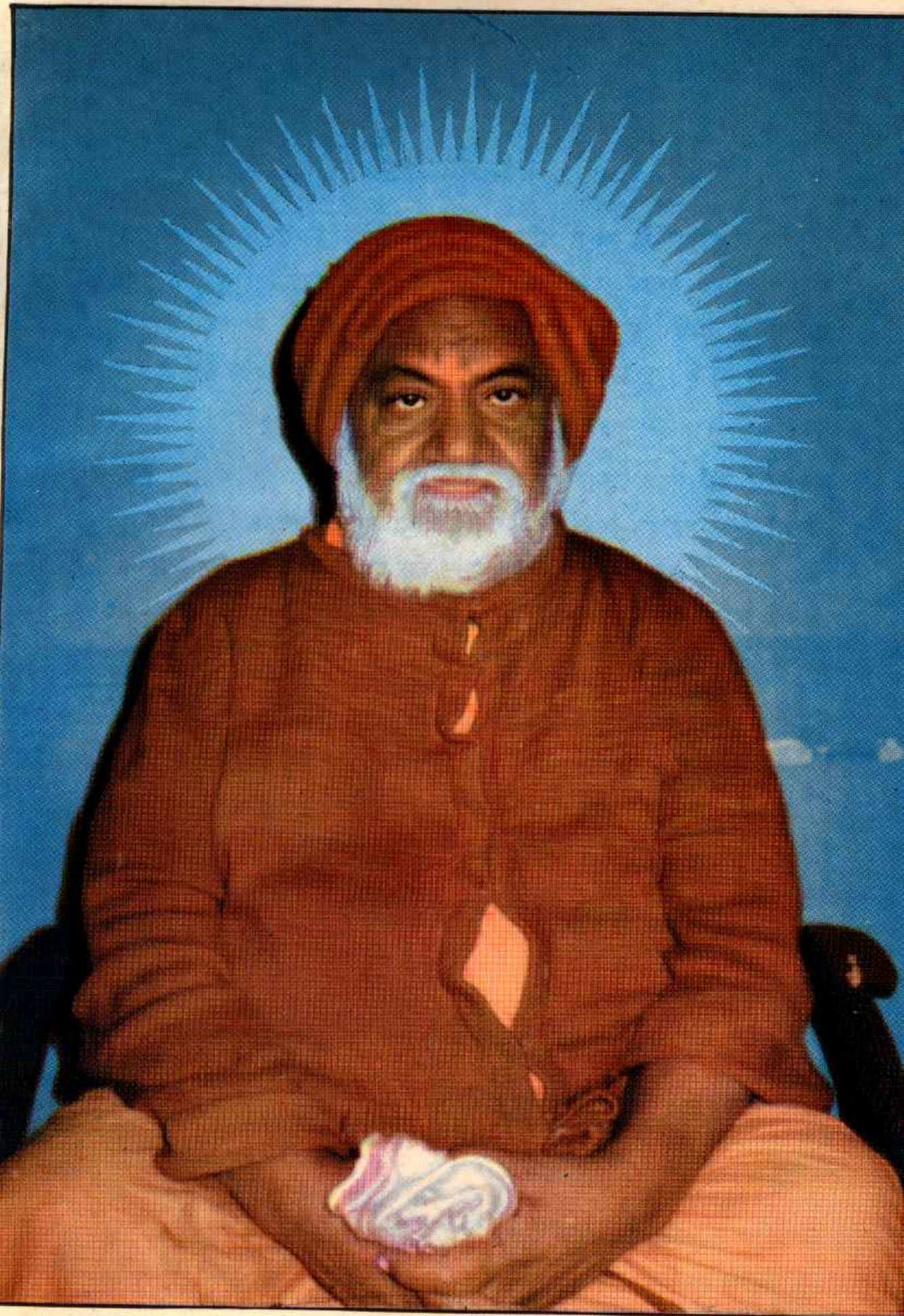
ब्रह्मलीन

श्री पीताम्बरा पीठाधीश्वर राष्ट्रगुरु परमपूज्य श्री १००८ श्री स्वामी जी महाराज, वनखण्डेश्वर, दतिया (म०प्र०)

स
महर्षि
का ि
योग
है।

साध
ऐसे
श्री स
द्वारा

चरण
प्रति
ग्रन्थ

प्रकाशकीय

साधना क्षेत्र में अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति में दो ही साधन प्रणालियाँ महर्षियों के अनुभव द्वारा सिद्ध हैं - योग एवं तन्त्र। प्रस्तुत प्रकाशन योग का विशद विवेचन एवं उसके क्रियात्मक स्वरूप का पूर्ण विवरण जो कि योग के अनेक ग्रन्थों द्वारा भी प्राप्त नहीं हो सकेगा, उसे पूर्ण करने में सक्षम है।

तन्त्र विज्ञान का पूरक योग है और योग का तन्त्र। दोनों को मिलाकर साधना पथ का निर्माण विद्वान् एवं योगी का ही कार्य है। यह ग्रन्थ किसी ऐसे ही अनुभवी विद्वान् आचार्य की अनुभवपूर्ण कृति-है। यह ग्रन्थ रत्न हमें श्री रामनारायणजी शर्मा, प्रधान संचालक, श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, झाँसी द्वारा प्राप्त हुआ है।

ग्रन्थ की महत्ता और उपयोगिता को देखते हुए परिषद् पूज्य आचार्य चरण की आज्ञानुसार इसे सहर्ष प्रकाशित करने जा रही है। ग्रन्थ की मुद्रणार्ह प्रतिलिपि श्री विष्णुकान्तजी मुडिया (शास्त्री) ने की है। ग्रन्थ का व्यय-भार ग्रन्थ प्रदाता ने स्वयं वहन किया है, तदर्थ साभार धन्यवाद।

आशा है साधक-गण इसके द्वारा अपनी साधना में अग्रसर होंगे।

ब्रजनन्दन शास्त्री , साहित्याचार्य

मंत्री

श्री पीताम्बरा संस्कृत परिषद्

दतिया (म.प्र.)

सं. २०३४

शारदीय नवरात्र

प्रार्थना

आनन्द रूप भगवन्! किस भाँति तुमको पाऊँ?

तेरे समीप स्वामिन् ! मैं किस तरह से आऊँ।।

अनुपम परम छवीले बिन रूप रंग रसीले।

कंटक लगा है फुलवा क्या तेरे सर चढ़ाऊँ।।

सुख मूल मुक्त रूपम् मङ्गल कुशल स्वरूपम्।

घड़ियाल शङ्ख को क्या सन्मुख तेरे बजाऊँ।।

गङ्गा है तेरी दासी सेवक है इन्द्र तेरा।

तेरे शरीर पर क्या दो चुल्लू जल चढ़ाऊँ।।

नभ पर हैं दास तेरे रवि चंद्र और तारे।

करते हैं जग उजाला घृत दीप क्या जलाऊँ।।

लक्ष्मी है तेरी निशदिन चरन की चेरी।

ताँबे का एक पैसा मैं नाथ क्या चढ़ाऊँ।।

आनन्दरूप भगवन्! किस भाँति तुमको पाऊँ।

गुण तेरा गा रहे हैं क्या गाके मैं सुनाऊँ।।

कोटानिकोट भूमि जिस पर असंख्य प्राणी।

जगदीश अपना नम्बर मैं कौन सा गिनाऊँ।।

विनती किशोर की है निशदिन यही दयामय।

हृदय में लौ हो तेरी आँखो में तुझको पाऊँ।।

नोट : गाते समय प्रत्येक लड़ी दो बार कहना चाहिए पहली दो लड़ियों के उपरांत व हर दो लड़ियों के पश्चात् पहली दो लड़ी कहना चाहिए।

मेरी भावना

(नित्य पाठ)

जिसने रागद्वेष कामादिक जीते।
उसने सब जग जीत लिया।।
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया।
राम, कृष्ण, नारायण व हरि ॐ का जाप किया।।

भक्ति भाव से प्रेरित होकर चित्त उन्हीं में लीन किया।
विषयों की नहीं इच्छा जिसको, मोह माया का त्याग किया।।

परहित साधन में जो निशदिन तत्पर रहता है।
ऐसा ज्ञानी साधु जगत् में विरला ही कोई मिलता है।।

रहे सदा सत्संग उन्हीं का ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन जैसी दिनचर्या में चित्त सदा अनुरक्त रहे।।

नहीं सताएँ किसी जीव को झूँठ कभी नहीं कहा करूँ।
परधन समझूँ तृण समान संतोषामृत को पिया करूँ।

अहँकार का भाव न रखूँ नहीं किसी पर क्रोध करूँ।
देख दूसरों की बढ़ती को कभी न ईर्ष्या द्वेष करूँ।।

रहे भावना ऐसी मेरी सदा सत्य व्यवहार करूँ।
बने जहाँ तक इस जीवन में औरों का उपकार करूँ।।

प्रेम भाव जगत् में अपना सब जीवों पर सदा रखूँ।
दीन दुःखी जीवों पर उर से दयापूर्ण व्यवहार करूँ।।

दुर्जन क्रूर कुमार्गरतों पर क्रोध नहीं आने दें।
साम्यभाव रखूँ सब पर ही ऐसा विचार सदैव रहे।।

भक्तजनों को देख हृदय में फ़ौरन प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उसकी सेवा करके यह मन सुख पावे।।

होंऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं ईर्ष्या द्वेष न उर आवे।
गुण ग्राहकता का भाव रहे नित दृष्टि न दोषों पर जावे।।

कोई बुरा कहे या अच्छा दिल में न हर्ष विषाद आवे।
चाहे जब तक जिऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे।।

न्याय मार्ग से कदापि न मेरा पद डिगने पावे।
पाकर सुख में फूल न उठूँ दुःख में कभी न घबड़ाऊँ।।

पर्वत, वन, श्मशान भयानक स्थानों में कभी न भय खाऊँ।
रहे सदा मेरा मन स्थिर दृढ़प्रतिज्ञ मैं बन जाऊँ।।

इष्ट वियोग अनिष्टयोग में सहनशीलता दिखलाऊँ।
सुखी रहें सब जीव जगत् में तब मन में मैं सुख पाऊँ।।

❖

प्रार्थना

ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे।

भक्त जनन के संकट, क्षण में दूर करे ।।ओ३म्।।

जो ध्यावे फल पावे, दुःख विनशे मन का।

सुख सम्पति घर आवे, कष्ट मिटे तन का।।ओ३म्।।

मात पिता तुम मेरे , शरण गहूँ किसकी।

तुम बिन और न दूजा, आस करूँ जिसकी।।ओ३म्।।

तुम पूरण परमात्मा तुम अन्तर्यामी।

पारब्रह्म परमेश्वर, तुम सबके स्वामी।।ओ३म्।।

तुम करूणा के सागर, तुम पालन कर्ता।

दीन दयालु कृपालु, कृपा करो भर्ता।।ओ३म्।।

तुम हो एक अगोचर सबके प्राणपति।

किस विधि मिलूँ दयामय, तुमसे मैं कुमती।।ओ३म्।।

दीनबन्धु दुःख हर्ता, तुम रक्षक मेरे।

करूणा हस्त बढ़ाओ, शरण पड़ा तेरे।।ओ३म्।।

विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा।

श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, सन्तन की सेवा।।ओ३म्।।

प्रार्थना

पितु मातु सहायक स्वामि सखा।

तुम्ही एक नाथ हमारे हो।।

जिनके और अधार नहीं।

तिनके तुम्हीं रखवारे हो।।

प्रतिपाल करो सिगरे जग का।

अतिशय करूणा उरधारे हो।

उपकारन को कुछ अन्त नहीं।

क्षण ही क्षण जो विस्तारे हो।।

महाराज ! महा महिमा तुम्हरी।

समझें विरले बुधवारे हो।।

शुभ कान्ति निकेतन प्रेम निधे।

मन मन्दिर के उज्यारे हो।।

यह जीवन के तुम जीवन हो।

इन प्राणन के तुम प्यारे हो।।

तुमकों प्रभु पाय 'प्रताप' हरी।

केहि को अब और सहारे हो।।

नोट :- गाते समय प्रत्येक लड़ी को दो दफ़ा कहना चाहिए और पहली दो लड़ियों के पश्चात् हर दो लड़ियों के उपरान्त पहली दो लड़ियाँ एक-एक मर्तवा कहना चाहिए।
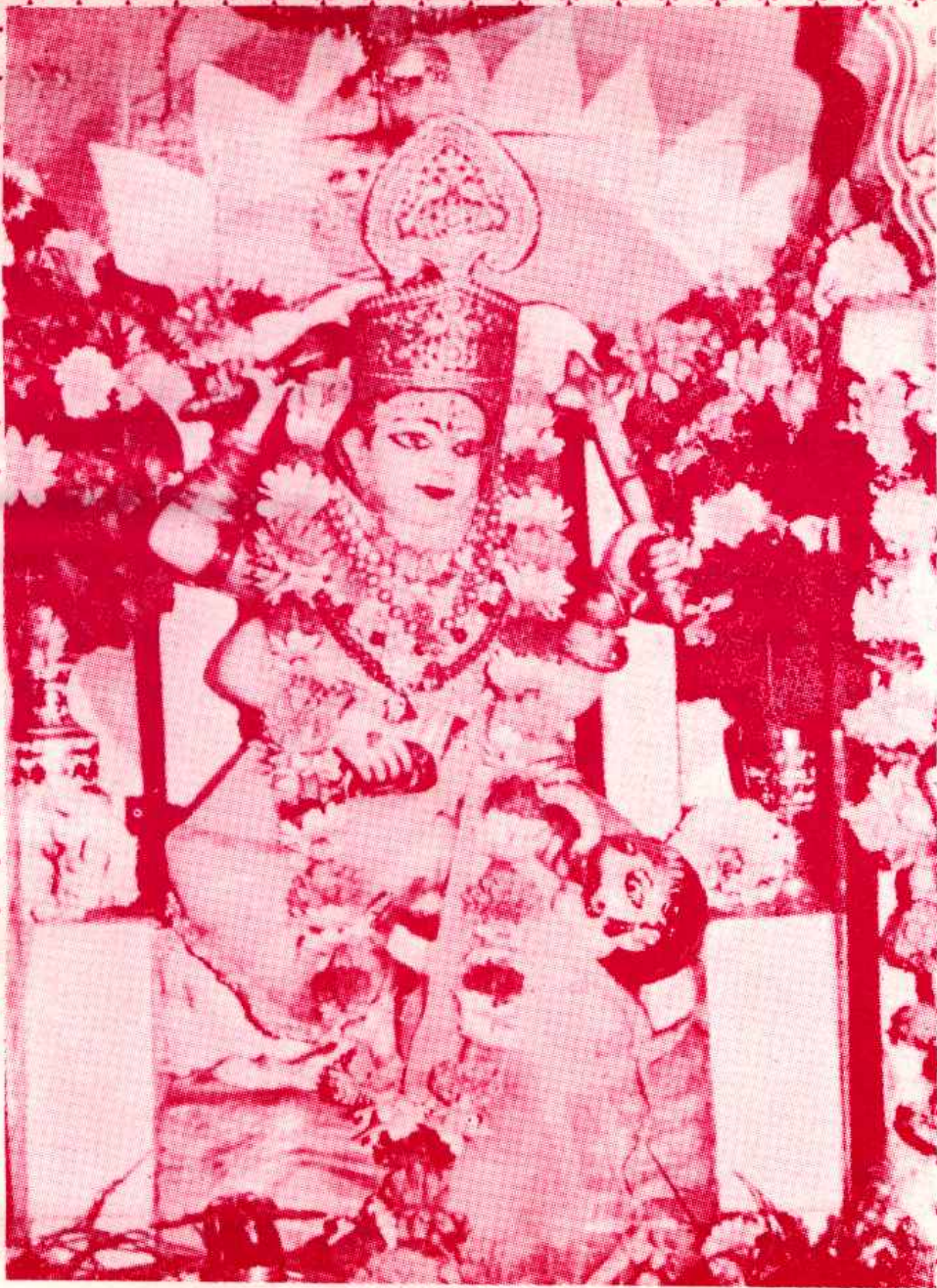
मूल कुण्डलिनी ब्रह्मस्वरुपा
ब्रह्मविद्या श्री बगला

पुस्तक समर्पण

आदि गुरु होने के कारण मैं प्रथम उन योगेश्वर भगवान् शंकरजी के श्री चरणों में बारम्बार प्रणाम करना अपना मुख्य धर्म व कर्त्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने प्रथम श्री पार्वतीजी को हठ योग व राज योग का उपदेश दिया, साथ ही सर्वशक्तिमान् परब्रह्म परमपिता परमात्मा को भी हाथ जोड़कर अनेकानेक नमस्कार करता हूँ और उन्हीं की कृपा स्वरूप इस ग्रन्थ को उन्हीं के चरणारविन्दों में सादर समर्पित करता हूँ।

भगवान् शंकर व परब्रह्मपरमात्मा के अतिरिक्त योगशास्त्र के आदि लेखक महाराज पतंजलि, मत्स्येन्द्रजी, गुरु गोरखनाथ तथा उन ऋषियों-मुनियों आदि को जिन्होंने इस विद्या का प्रचार किया और उन योग विद्या के गुरूओं, योगियों और उसके साधकों को भी आदरपूर्वक नमस्कार करता हूँ जो आजकल भी इसका प्रचार कर रहे हैं।

हरिः ॐतत्सत्

ॐ शांतिः

लक्ष्मणराव क़दम
भूतपूर्व एम.एल.ए.

२० मई, सन् १९६२
बाग नानाभाऊ, बड़ागाँव दरवाज़ा,
झाँसी

प्रकाशकीय

तपस्विभ्योधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भर्वाजुन।।

– गीता ६/४९

भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को भी योगी बनने को कहा, योग केवल हठ योग, राज योग, लय योग ही नहीं है। मन जिस प्रकार एकाग्र हो, वह सब योग ही है। "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः पातञ्जल योग सूत्र है, चित्त की सभी वृत्तियों को रोकना भी योग है। प्रस्तुत 'योग विज्ञान' ग्रन्थ में आपको वह सभी योग पद्धतियाँ मिल जाएँगी जो प्रचलन में हैं और जो नहीं हैं, यही इस ग्रन्थ की विशेषता है। अनन्तश्री विभूषित पूज्यपादश्री स्वामीजी महाराज ने, साधना में सहायता प्राप्त हो, साधकों का कल्याण हो, अनुग्रहपूर्वक ग्रन्थ-प्रकाशन किया है। योग विज्ञान के प्रथम भाग का तृतीय संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। साधक जगत को अधिकाधिक लाभ हो, यही संस्कृत परिषद् का उद्देश्य है।

मंत्री

वसन्त पञ्चमी संवत् २०६१ श्री पीताम्बरा संस्कृत परिषद्
ईस्वी सन् २००५ दतिया (म.प्र.)

योग-विज्ञान

(प्रथम भाग)

विषयानुक्रमणिका

भूमिका

योग के जन्मदाता

योग विद्या का प्रादुर्भाव वेदों के पहले हुआ है और उसके जन्मदाता हिरण्यगर्भजी महाराज थे, जिनके सम्बन्ध में (ऋ. वेद १०/१२१/(१)) व श्रीमद्भागवत् (५/१९/१३) में लिखा है कि यह हिरण्यगर्भ महाराज वही थे जिन्होंने कि वेद विद्या के पहले ही योग विद्या का प्रादुर्भाव किया था। वेदों के विकास के पहले ही योग विद्या तरुण हो चुकी थी बल्कि योग विद्या के गर्भ से ही वेद विद्या का जन्म हुआ है।

योग का जन्म

सृष्टि के आरम्भकाल में उक्त हिरण्यगर्भजी महाराज से अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा आदि चार महर्षियों ने इसे पढ़ा और उक्त चारों ऋषियों से महर्षि पतंजलि ने सीखकर 'योग दर्शन' नामक ग्रन्थ के रूप में प्रकट किया जो कि इस सम्बन्ध में सभी ग्रन्थों में प्रधान व मान्य माना जाता है।

योग के अर्थ

योग शब्द का एक अर्थ है जोड़ना और दूसरा अर्थ है उपाय, अर्थात् महर्षि पतंजलि के मतानुसार चित्त की वृत्तियों को रोक देना ही योग है। माया के कारण जीवात्मा और परमात्मा भिन्न-भिन्न मालूम होते हैं।। अद्वैत सिद्धांत के अनुसार जिस ज्ञान व क्रिया से जीवात्मा को परमात्मा स्वरूप का ज्ञान हो उसी को योग कहते हैं। माया से बढ़कर संसार में कोई दूसरा बन्धन नहीं है अतएव उसी बन्धन को काटने वाला साधन ही योग कहलाता है। यही महाराज पतंजलि की योग के सम्बन्ध में व्याख्या है।

योग शब्द के अर्थ कोई यह न समझे कि योग की शिक्षा केवल योगियों के लिए ही है, सर्व साधारण के लिए नहीं। योगी शब्द के व्यापक अर्थ हैं जो कोई संसार में सदाचार से रहकर जीवन को सफल करना चाहता है, वही योगी है और सभी धर्म इस बात की पुष्टि करते हैं कि सदाचार ही स्वर्ग का सुगम मार्ग है। योग में सदाचार का अर्थ केवल शिष्टाचार नहीं है, बल्कि आहार विहार का नियम भी है संक्षेप में यौगिक जीवन का अर्थ हैं शरीर का युक्त व्यायाम, सात्त्विक आहार और ब्रह्म विद्या का अध्ययन, सभी हिन्दु शास्त्र बतलाते हैं कि योग के सिवाय मुक्ति का और कोई दूसरा उपाय नहीं है। अतएव जो लोग यह समझते हैं कि योग साधन केवल विरक्त ही कर सकते हैं और गृहस्थ लोगों का उससे कोई सम्बन्ध नहीं, यह धारणा भ्रमपूर्ण है राजा जनक व भगवान् कृष्ण इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। वे गृहस्थी में रहते हुए भी पूर्ण योगी माने गए हैं।

योग का महत्त्व

योगशिखोपनिषद् में योग मार्ग का बहुत ही सुन्दर स्पष्टीकरण किया गया है।

आरम्भ काल में हिरण्यगर्भ ने श्री महेश्वर से प्रश्न किया कि हे शंकर! इस दुःखमय संसार में सब जीव पड़े हैं और अपने-अपने कर्मों का फल भोग रहे हैं, इनकी मुक्ति किस प्रकार से हो सकती है, कृपया इसका कोई सरल उपाय बतलाइए। शंकरजी ने इसका उत्तर देते हुए कहा कि कर्मबन्धन से मुक्त होने के उपाय को ही कोई ज्ञान और कोई योग कहते हैं; परन्तु मेरा मत तो यह है कि योगहीन ज्ञान और ज्ञानहीन योग कभी भी मोक्षप्रद नहीं हो सकता अतएव मुमुक्षु को दृढ़ता के साथ दोनों का ही अभ्यास करना चाहिए ।

योगाभ्यास के द्वारा चित्त की एकाग्रता प्राप्त होने पर ज्ञान उत्पन्न होता है व उसी ज्ञान से जीवात्मा की मुक्ति होती है। वह मुक्ति परम

ज्ञानयोग के सिवा केवल शास्त्र पढ़ने से नहीं हो सकती। भगवान् शंकरजी ने यह भी कहा है कि सैकड़ों तर्कशास्त्र तथा व्याकरणादि पढ़कर मनुष्य शास्त्र जाल में फँसकर केवल विमोहित हो जाते हैं। वास्तव में प्रकृतिज्ञान योगाभ्यास के बिना नहीं होता।'

(योगबीज ८)

योगेन रक्षते धर्मो विद्या योगेन रक्षते (विदुरनीति) ।

अर्थात् योग से धर्म और विद्या दोनों की रक्षा होती है।

शास्त्र में लिखा है कि व्यासजी के पुत्र श्री शुकदेवजी ने एक वृक्ष की शाखा में छिपकर भगवान शंकर के मुँह से निकला हुआ योगोपदेश श्रवण किया और उसी से पक्षी योनि से उद्धार पाकर दूसरे जन्म में वह परमयोगी हो गए। योगोपदेश के सुनने मात्र से जब इतना लाभ होता है तब उसकी साधना से ब्रह्मानन्द तथा सब सिद्धियाँ प्राप्त होने में भला क्या सन्देह है।

महादेवजी ने योग की श्रेष्ठता बतलाते हुए एक मर्तबा श्री पार्वतीजी को उपदेश दिया था कि हे परमेश्वरी! योग विहीन ज्ञान मोक्षदायक नहीं हो सकता। हे प्रिये! ज्ञानवान, संसार विरक्त, धर्मज्ञ, जितेन्द्रिय होने से ही मुक्ति नहीं मिलती। मोक्ष के लिए तो देवताओं तक को भी योग साधन करना पड़ता है।

भगवान शंकर ने कहा है कि :-

ज्ञान निष्टो विरक्तो वा धर्मज्ञोऽपि जितेन्द्रियः।

बिना योगेन देवोऽपि न मोक्षं लभते प्रिये ॥

(भगवान् शंकर)

अर्थात् कोई मनुष्य चाहे जितना ज्ञानी, विरक्त, धर्मिष्ट और

जितेन्द्रिय क्यों न हो पर बिना योग, मोक्ष का अधिकारी नही हो सकता।

महाभारत के समय जिस वक्त अर्जुन ने भगवान् श्री कृष्ण से पूछा कि हे मनमोहन! जो अनन्य प्रेमी भक्तजन- निरंतर आपके भजन ध्यान में लगे रहकर आप सगुणरूप परमेश्वर को, अति श्रेष्ठ भाव से उपासते हैं और जो अविनाशी, सच्चिदानन्दघन, निराकार को ही उपासते हैं, उन दोनों प्रकार के भक्तों में अति उत्तम योगवेत्ता कौन है?

(भगवद्‌गीता १२-१)

अर्जुन के इस प्रकार प्रश्न करने पर श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा, हे अर्जुन! मुझमें मनको एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन, ध्यान में लगे हुए जो भक्तजन, अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त हुए मुझे भजते हैं वे मेरे मन में सबसे उत्तम योगी हैं।

(भगवद्‌गीता १२-२)

इसके सिवाय भगवान् कृष्ण ने इस सम्बन्ध में अर्जुन को उपदेश देते हुए (भगवद्‌गीता ६-४६) यह भी कहा था कि योगी तपस्वियों, ज्ञानियों व सकाम कर्म करने वालों से भी श्रेष्ठ हैं अतएव हे अर्जुन! तू योगी हो ।

योग साधन

मनुष्य चार प्रकार के होते है कर्म प्रधान, योग प्रधान, भक्ति प्रधान और दार्शनिक अर्थात् बुद्धि प्रधान। उनकी प्रकृति के अनुसार मार्ग भी चार ही हैं यद्यपि उनका लक्ष्य एक ही परमतत्त्व की उपलब्धि हैं। इस परमतत्त्व को उपर्युक्त चार प्रकार के मनुष्यों की भिन्न-भिन्न दृष्टियों से उपलब्ध करने के जो चार मार्ग बतलाए गए है उन्हीं को कर्म योग, भक्ति योग, राज योग, और ज्ञान योग कहते है। यह चारों मार्ग परस्पर विरोधी न होकर एक दूसरे के सहायक ही

हैं। कुछ कुछ लोगों का मत है कि भक्ति और ज्ञान परस्पर विरोधी हैं; परन्तु ऐसा कहना भूल है। पूर्णज्ञान ही प्रेम है और पूर्ण प्रेम ही ज्ञान है। इस सम्बन्ध में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो मुझमें निरन्तर मन लगाकर प्रेम से मेरा भजन करते हैं, उनको मैं वह ज्ञान देता हूँ जिसके द्वारा वह मुझे प्राप्त कर लेते हैं। (भगवद्गीता १०-१०) कर्मयोग से मल का नाश होता है, चित्त की शुद्धि होती है और हाथों में कुशलता आती है। भक्तियोग से विक्षेप दूर होता है। ज्ञानयोग से अज्ञान का आवरण हटकर बुद्धि का विकास होता है, आत्मज्ञान की उपलब्धि होती है और राजयोग द्वारा मन पर विजय पाकर प्रकृति के समस्त व्यापारों पर शासन किया जा सकता है व ब्रह्म, ईश्वर या विराट् रूप अद्वितीय ब्रह्मसत्ता का दर्शन करके या ध्यान भूमि की पराकाष्ठा में पहुँचा जा सकता है। अतएव साधक को चारों योगों का साधन करना चाहिए ।

प्राचीन ऋषियों मुनियों द्वारा जो धर्म मानव जाति के उद्धार के लिए प्रकाशित किया गया उसमें 'योग शास्त्र' को प्रथम स्थान प्राप्त है। यदि मानव धर्म से योग साधन को हटा दिया जाय तो फिर उसमें कोई विशेष महत्त्व की बात ही नहीं रह जाती है। योग शास्त्र ही संसार में एक ऐसा शास्त्र है।

योग के अलौकिक प्रभाव

योगियों ने योगबल से मन स्थिर करके, शरीर के अन्दर कहाँ क्या है, यह सब जानकर, मानसिक अवस्थाओं का पूर्ण रूप से विचार कर, मंत्र, तंत्र और यंत्रों के रहस्य का आविष्कार किया है। उनके मतानुसार शरीर के हर एक चक्र में, प्रत्येक स्नायविक केन्द्र में एक-एक प्रकार की अलौकिक शक्ति निहित है। उन निद्रित शक्तियों को प्राणवायु और ध्यान की सहायता से जागृत करके साधक दूरदर्शन, दूर श्रवण, परचित्त विज्ञान, परकाया प्रवेश,आकाश रोहण, योगबल से

देह त्याग नाना प्रकार की सिद्धियाँ व अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कर सकता है।

चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद कहीं दुर्लभ मनुष्य योनि प्राप्त होती है और यही एक योनि है जिसमें जो सुविधा मनुष्य को प्राप्त है, उससे स्त्रियाँ भी वंचित नहीं हैं। अतएव नर तन पाकर भी जिसने संसार के दु:खों से मुक्ति व ईश्वर प्राप्ति का उपाय नहीं किया उसके सम्बन्ध में जितना भी कहा जाय वह भी थोड़ा है। यह बात अवश्य है कि योग का मार्ग सरल न होकर बहुत ही दुर्गम और कष्टप्रद है, परन्तु सत्य संकल्प और दृढ़ प्रतिज्ञा के सामने कोई व कैसी भी बाधा टिक नहीं सकती, एक दो नहीं बल्कि दस बार असफल होने पर आप निश्चय पर अटल रहेंगे तो सफलता को एक न एक दिन अपने आगे हाथ जोड़े हुए खड़ी पाएँगे।

योग प्रचार की आवश्यकता

समय के परिवर्तन के साथ-साथ सभी बातों में स्वाभाविक ही विकृति आ गई है।

आजकल बहुत से लोग अपने स्वार्थ साधन के लिए लेख व पुस्तकें लिखकर, व्याख्यान देकर, कितने ही ठग जटाजूट बढ़ाकर, भभूत रमाकर, तरह-तरह की आसनें दिखलाकर, गाँजा, चरस, भाँग आदि नशीली चीज़ों से आँखें चढ़ाकर, तपस्या व योग की कुछ क्रियाएँ दिखाकर जनता को ठगते फिरते हैं, ऐसे लोगों से सावधान रहने व वास्तविक योग के प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता है।

संसार में सबसे अधिक मननशील लोग प्राचीनकाल के हिन्दू ही थे। जीवन के सभी क्षेत्रों का पूर्ण विचार करके उन्होंने प्रत्येक के सम्बन्ध में उचित सिद्धांत निश्चित किए। इस लोक व परलोक में भी सुख तथा शांति प्राप्त करना ही उनका बराबर लक्ष्य रहा है। उन्होंने

जीवन के ऐसे उद्देश्य बनाए थे जिनसे न केवल उनका बल्कि उनके पड़ोसियों, सम्बन्धियों और सारे संसार का कल्याण हो। उनकी दिनचर्या ऐसी थी कि जिसके द्वारा प्रातःकाल से सायंकाल तक विविध प्रकार के ऐसे कार्य हुआ करते थे जिनसे सभी को सुख,शांति व आनन्द प्राप्त होता रहता था, परन्तु देश और काल के परिवर्तन के साथ-साथ सभी बातों में स्वाभाविक कुछ न कुछ विकृति आ गई है, जबकि योग साधन प्रणाली में सुन्दर-सुन्दर तत्त्व निहित हैं, उसकी सहायता से जब स्वास्थ्य लाभ, एकाग्रता, शांति, आनन्द व उन्नति प्राप्ति, भगवद्दर्शन, भगवद् प्राप्ति, जीव का कल्याण, सहज, सुन्दर और स्वाभाविक रूप में होता है। अतएव इस योग साधन प्रणाली का पुनरुद्धार, उन्नति तथा सर्व साधारण के सामने इस उच्च आदर्श तथा वास्तविक योग के प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता है।

केवल पुस्तक पढ़ लेने, निष्काम कर्म योग सुन लेने, ज्ञान योग समझ लेने व हठ योग की कुछ क्रियाएँ सीख लेने, भक्ति योग के अनुसार पूजा पाठ कर लेने से भगवत् प्राप्ति नहीं होती, संसार के सब साधन, आचार विचार, आहार, त्याग, वैराग्य, पूजा पाठ, कीर्तन, जप,सत्संग प्राणायाम, आसनें आदि इसलिए हैं कि विचार पुष्ट हों। यदि विचार पुष्ट न हुए तो कोई भी साधन भला कैसे हो सकता है। जब नींव ही पक्की नहीं तो भला इमारत कैसे उठ सकेगी, किसी अभीष्ट स्थान पर पहुँचने के लिए केवल रास्ता जान लेने से ही काम नहीं चल सकता। मंज़िल पर पहुँचने के लिए तो चलकर ही रास्ता तय करना पड़ेगा। यही नहीं बल्कि रास्ते में आने वाली सारी विघ्न बाधाओं को भी पार करना ही पड़ेगा। इस सम्बन्ध में सबसे पहले आवश्यकता है विचारों के पुष्ट होने की। विचारों के पुष्ट होने का अर्थ है विचारों में अपने स्वरूप के जानने की शक्ति आ जाय। 'अहं' का नाश, विस्तार व समर्पण करने की शक्ति आ जाय ताकि जीवात्मा अपने वास्तविक स्वरूप का अनुभव कर सके, अपने वास्तविक स्वरूप में मिल जाय और दिव्य

अन्तर प्रवाह के लिए जीवात्मा का द्वार खोल दे, जिससे कि वह पूर्ण होकर अपने आत्मा में मिलकर परमात्मा हो जाय ।

हठ योग शरीर को आरोग्य रखकर विचार शक्ति बढ़ाने के लिए ही है। यम, नियम , आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि आदि सभी चित्त की एकाग्रता व विचार शक्ति बढ़ाने के लिए ही हैं। सारांश यह कि यदि आपके विचार अच्छे और पक्के है। तभी सब साधनाएँ सफल हो सकती हैं अन्यथा सभी व्यर्थ हैं, निष्फल और निस्सार हैं। प्रश्न यह नहीं है कि आपने क्या पढ़ा, क्या सुना व क्या सीखा है ? बल्कि यह है कि आपने क्या किया है? बाहरी बातें तो मनुष्य देखता है परन्तु परमात्मा हृदय टटोलता है। यदि आपने सारे धर्मग्रन्थ पढ़ डाले और दार्शनिकों की सूक्तियाँ भी याद कर लीं तो लाभ क्या हुआ यदि आप परमात्मा के प्रेम से वंचित रहे। अतएव 'मैं' को या तो क्षीण कर दीजिए या उसे सर्वव्यापी में लीन कर दीजिए। अर्थात् भगवान् चरणारविन्दों में पूर्ण रूप से आत्म समर्पण कर दीजिए, परमात्मा बड़े दयालु हैं। उनकी दया पर विश्वास रखिए, उनको निरन्तर अपने साथ रहने का अनुभव करिए, संसार में एक ऐसे यात्री की तरह रहिए जिसका दुनिया से कोई सम्बन्ध नहीं, दुनिया में जिसका कुछ भी नहीं।

संसार से आप जितने दूर रहेंगे उतने ही परमात्मा के समीप पहुँचेंगे। जितना ही आप सांसारिक सुखों को छोड़ेंगे उतना ही ईश्वरीय सुख प्राप्त करेंगे । पानी में कूदकर जो मनुष्य जितना नीचे जाता है, वह उतना ही ऊपर उठता है, जिस समय आप भगवान् के सामने पूर्ण रूप से प्रेम तथा श्रद्धापूर्वक आत्म समर्पण कर देंगे, उनके चरणों पर अपने को भेंट कर देंगे, उसी क्षण वे आपको उठा लेंगे, बस परमात्मा की साधना उनकी प्राप्ति तथा उनके दर्शन करने का यही साधन है, यही गुर है यही गूढ़ रहस्य है।

गुरु की आवश्यकता

संसार का कोई भी कार्य बिना अनुभवी गुरु या जानकार पथप्रदर्शक के सफल नहीं होता, केवल पुस्तकों के पढ़ने से ही काम नहीं चलता। जो मनुष्य जिस काम को करके सफल हो चुका है उस कार्य में उसी के आदेश की आवश्यकता होती है। यदि कार्य कठिन हो तो कुछ दिन उसी के पास रहकर उसकी सेवा व विनय द्वारा उसको प्रसन्न करके उस कार्य को सीखना पड़ता है, अन्यथा हानि होने की सम्भावना रहती है। गुरु ही शिष्य की आँखें खोलकर व उसको ठीक मार्ग बतलाकर लक्ष्य स्थान पर सुखपूर्वक पहुँचा देता है। यही कारण है कि हिन्दू समाज में गुरु की बड़ी महिमा व गुरु का पद बहुत ऊँचा है। गुरु और ईश्वर में कोई भेद नहीं माना जाता, बल्कि शिष्य के लिए गुरु ईश्वर से भी बढ़कर है।

सच्चे गुरु पहले भी बड़ी कठिनाई व भाग्य ही से मिलते थे; परन्तु आजकल तो उनका मिलना और भी कठिन हो गया है, आजकल बहुत से लोभी, लालची व कामी और कपटी लोग गुरु बन गए हैं अतएव बहुत ही सावधानी से किसी को गुरु बनाना चाहिए। गुरु में यह गुण होना आवश्यक हैं -

स्वभाव शुद्ध, जितेन्द्रिय, त्यागी, परोपकारी, शास्त्र व नीति का ज्ञाता, दयालु, सत्यवादी, शाँतिप्रिय, योगी, शिष्य के पापों को नाश करने की शक्ति रखने वाला, ईश्वरभक्त, स्त्रियों से अनासक्त, क्षमावान्, धैर्यशाली, चतुर, अव्यसनी, प्रियभाषी, निष्कपट, निर्भय, सदाचारी, धर्म प्रेमी, सादा रहन-सहन वाला व शिष्यों को पुत्रों से अधिक प्रेम करनेवाला हो, मंत्र, जप, पूजा, संध्या आदि साधन करता हो। पूर्ण विरक्त व त्यागी, सन्यासी हो ।

स्त्रियों का पति ही गुरु के समान है अतएव उनको किसी अन्य पुरुष से दीक्षा लेने की आवश्यकता नहीं है। पति ही स्त्री को दीक्षा दे सकता है। विधवा स्त्री ईश्वर को ही अपना गुरु मानकर उनकी ही सेवा पूजा करें।

जिस प्रकार वैद्य रोगी की नाड़ी आदि द्वारा रोग का वास्तविक कारण जानकर रोगी को उपयुक्त औषधि देकर उसे स्वस्थ कर देता है, उसी प्रकार योग्य गुरु जिज्ञासु या शिष्य की योग्यता आदि का विचार करके उसे उपयुक्त साधन, मंत्र व उसमें अपनी शक्ति का संचार करके सिद्धि प्राप्त करा देते हैं।

गुरु महिमा

श्रीमद्भागवत् में लिखा है कि गुरु के उपदेशानुसार हृदय में ध्यान करने से नारदजी को भगवान् के दर्शन हुए ।

जगद्गुरु श्री शिवजी की कृपा से साधक को अपने अदृश्य सद्गुरु के हृदय में ही दर्शन होते हैं और उनके तेज़ के प्रकाश से अन्तर में उनसे सम्बन्ध हो जाता है।

श्री सद्गुरु योग की यथार्थ उच्चदीक्षा द्वारा साधक का दैवी प्रकृति के प्रकाश के साथ सम्बन्ध करा देते हैं, जिस प्रकाश की सहायता से श्री सद्गुरु साधक को अविद्यान्धकार से पार करके इष्टदेव में उसे समर्पित और मुक्त कर देते हैं। यह सद्गुरु की कृपा के बिना कदापि सम्भव नहीं।

श्री सद्गुरु

श्री शिवजी का सद्गुरु होना तो सबको विदित ही है। गुरु गीता आदि में गुरु का वर्णन इस प्रकार आया है कि गुरु मिलते ही साधक को ज्ञानचर्चा देकर अज्ञानान्धकार को दूर करके उसे ब्रह्म का साक्षात्कार करा देते हैं, गुरु स्वयं त्रिमूर्ति और परब्रह्म के रूप हैं। इस वर्णन से त्रिकालदर्शी महर्षियों और सिद्धों से तात्पर्य है जो यद्यपि आजकल कलियुग में अदृश्य हैं, तथापि इस भूलोक में ही वर्तमान हैं। ऋषि और सिद्धगण प्रायःशरीर त्याग नहीं करते, वे तो अमर हैं। लिंग पुराण के सातवें अध्याय में उन सद्गुरुओं का वर्णन योगाचार्य के रूप में आया है और उसमें उनके शिष्यों का भी उल्लेख है । उसमें कहा गया है कि उन लोगों का वासस्थान हिमालय और सुमेरु पर्वत में सिद्धाश्रम नाम से कहा जाता है। यह सब जगद्गुरु श्री शिवजी के शिष्य पुत्र के समान हैं।

श्री भागवत् के १२वें स्कंध के ३७ वें श्लोक में लिखा है कि श्री देवर्षि और श्री मरु जिनका आश्रम कलापग्राम में है, कलियुग में वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करेंगे। श्री सनकादि चारों कुमारों का आश्रम उत्तर में है और श्री अगस्त्य दक्षिण में हैं, यह बात भी प्रसिद्ध है। प्रत्येक मंत्र के एक-एक ऋषि होते हैं, जिनका आवाहन उनके पूर्व नामोच्चारण द्वारा कवच अथवा स्तोत्र में किया जाता है। इसका भाव यह है कि इन ऋषियों की कृपा के बिना मंत्रसिद्धि नहीं हो सकती क्योंकि उस मंत्र के यथार्थ आविष्कारक वही हैं। सारांश यह है कि महर्षि और सिद्धगण वर्तमान हैं और उनका ज्ञान, भक्ति, योगादि का लोगों मे प्रचार करना ही एक मात्र कार्य है, इसी कारण इस ऋषि ऋण से मुक्त होने के लिए प्रतिदिन ऋषियज्ञ करना नित्यकर्म का एक प्रधान अंग माना गया है ।

गुरु महिमा

यह लोग अदृश्यभाव से सब जिज्ञासुओं की सहायता उनकी योग्यतानुसार करते हैं और उपयुक्त समय पर प्रत्यक्ष दर्शन देकर योग दीक्षा देते हैं, इसमें पहले बतलाए हुए दो ऋषि श्री देवर्षि और श्री मरु विशेष कार्य कर रहे हैं, क्योंकि आगामी युग में उनमें से एक व्यास और एक मनु होंगे । अतएव यह लोग योग्य साधकों को चुनकर अपने भावी कार्य के लिए तैयार कर रहे हैं। भगवान् कृष्ण ने प्रस्थान करने के पहले श्री उद्धव को इन्हीं दोनों ऋषियों से अथवा श्री मरु से उपदेश लेने को कहा था। जो लोग इनको गुरु मानकर इनमें श्रद्धा और भक्ति रखते हुए उनके पाद-पद्मों का ध्यान करेंगे उनका इनकी कृपा से बड़ा उपकार होगा। आजकल भी ऐसे साधक वर्तमान हैं जिन्होंने श्री देवर्षि और श्री मरु से सम्बन्ध स्थापित किया है तथा उनके दर्शन किए हैं।

अधिकांश साधकों को कुछ दिन साधना करने के बाद, यदि वह शैव हों तो स्वप्न में शिवमूर्ति, शिवलिंग शिव पूजादि के दर्शन होने लगते हैं, जिसका भाव यही है कि अब उनको अपने इष्ट के साथ-साथ श्री शिवजी की भी उपासना जगद्गुरु के रूप में करना चाहिए, जिसमें उनकी कृपा से इष्ट की प्राप्ति हो।

शास्त्र और ऋषि मुनियों ने एक स्वर से गुरु को ब्रह्म स्वरूप ही माना है। महात्मा कबीर ने कहा है कि:-

गुरु गोविन्द दोनों खड़े किसके लागूँ पाय।

बलिहारी गुरुदेव की जिन गोविन्द दियो लखाय॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।

गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

अर्थात् गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है, गुरु ही महेश्वर है और गुरु ही साक्षात् परब्रह्म है, ऐसे गुरुदेव को बार-बार प्रणाम है।

गुरु में ऐसे गुण होना चाहिए, यद्यपि वैसे गुरु का मिलना कठिन है परन्तु जिसको ज्ञान की वास्तविक जिज्ञासा है, जो सद्गुरु को पाने के लिए सचमुच व्याकुल है उसके लिए उपयुक्त गुरु का मिलना भी दुर्लभ नहीं। यदि आप सच्चे जिज्ञासु हैं, वास्तविक मुमुक्षु हैं तो आपको गुरु को खोजने की आवश्यकता नहीं। यदि आप दृढ़ श्रद्धा और भक्ति के साथ भगवान् का भजन, आराधना, जप, तप आदि साधना करते जावेंगे तो आप गुरु को अपने पास स्वयं उपस्थित पायेंगें, परन्तु पहले आपको निम्नलिखित षट् साधन सम्पत्ति प्राप्त कर लेना अत्यन्त आवश्यक है ।

(१) **शम**– आन्तर इन्द्रियों (मन-बुद्धि आदि)को वशीभूत करना।

(२) **दम**– बाह्य इन्द्रियों का निरोध करना ।

(3) **उपरति**– विषयों से चित्त का हट जाना। अर्थात् कर्म सन्यास या भगवत्-कथा व स्मरण में रुचि होना ।

(४) **तितिक्षा**– इन्द्रिय सहिष्णुता अर्थात् सुख, दुख, हानि, लाभ, शीत, उष्ण इन सबको समान भाव से ग्रहण करना ।

(5) **श्रद्धा**– गुरु और वेदान्त वाक्यों पर अटल विश्वास ।

(6) **समाधान**– भगवान् में एकाग्रता ।

इन बातों के पूरा हो जाने पर गुरु ही क्या पीछे-पीछे हरि फिरत रहत। कबीर कबीर की तरह अपने पीछे भगवान् तक को फिरता हुआ पा सकते हैं ।

मन का नियंत्रण

मन की चंचलता

कोई भी कार्य चाहे वह किसी प्रकार का भी क्यों न हो उसको करते समय मन की एकाग्रता की अत्यन्त आवश्यकता होती है, क्योंकि यह मन बड़ा ही चंचल है । अर्जुन ऐसे धीर वीर ने भी मनः संयम के प्रसंग में गीता में कहा है कि यह मन बड़ा चंचल, बड़ा बलवान्, दृढ़ और मथने वाला है, इसको रोककर स्थिर करना वायु की गति को रोकने के समान अत्यन्त कठिन है।

मन का स्वभाव बन्दर की तरह है। बात की बात में वह चारों धाम की यात्रा और सारे भूमंडल की परिक्रमा कर लेता है। यह इतना बलवान् है कि सैकड़ों हाथियों के पाँवो में जंजीर डाल देना, सैकड़ों सिंहों को पिजड़ों में बन्द कर देना आसान है, परन्तु इस मन को स्थिर करना सरल नहीं है। मन ही ने काशीपति श्री विश्वनाथ की समाधि भंग कर दी थी, विश्वामित्र और अगस्त जैसे तपस्वियों को धराशायी कर दिया था, देवर्षि नारद को मोहनास्त्र से बाँध लिया था और भगवान् रामचन्द्रजी तक को सीताजी के वियोग में रुला दिया था। वह सब इन्द्रियों को अपने अधीन करके सारे शरीर में खलबली मचा देता है। इसे लक्ष्मणजी जैसे मति, हनुमान्‌जी जैसे योद्धा और भीष्म पितामह जैसे महायोगी ही जीत सकते हैं। इसी के निरोध करने को योग कहते हैं। जो इसका निरोध कर सकता है, वही ईश्वर का साक्षात्कार कर सकता है। शास्त्रों और महान् पुरुषों ने इसको स्थिर करने के कई उपाय बतलाए हैं, परन्तु बड़े भाग्य, पुण्य-प्रताप और उपाय से ही मन स्थिर होता है। इसको स्थिर करने के कुछ नियम नीचे लिखे जाते हैं।

मन को स्थिर करने के उपाय

(१) आप शिव, विष्णु, राम, कृष्ण, सूर्य या ॐ कोई भी एक नाम लीजिए और उसे सौ तक गिनिए। अब सौ से उलटे लौट कर गिनते हुए एक पर आइए। इस तरह अभ्यास बढ़ाते-बढ़ाते हज़ार तक गिनिए । आप अपने मन को बहुत कुछ शांत पाएँगें। अब दूसरी मंज़िल पर चढ़िए और दो हज़ार तक गिनिए। इसी प्रकार तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठवीं, सातवीं, आठवीं, नवीं, और दसवीं, मंज़िल तक चढ़िए और उतरिए अर्थात् दस हज़ार तक गिनिए। इस साधन से आपको विलक्षण शांति मिलेगी और जप भी होगा।

(२) प्राणायाम करते हुए कुम्भक की क्रिया में जहाँ प्राण रुकेगा वहाँ मन भी स्थिर होगा। यह निश्चित बात है। मन: साधन की गिनती करते हुए जब आप एक हज़ार तक पहुँचें तब वहीं चुप होकर बैठ जावें। मन को इधर उधर न जानें दें। इसके बाद लौटकर आ जाएँ तब भी चुप होकर मन को भीतर ही रोक रखें और कुछ देर तक हृदय और नाभि चक्र का ध्यान करें। इस अभ्यास से यह मन कुछ दिनों में शांत व स्थिर होगा। साथ ही आपको बड़ा आनन्द व आत्मानुभव होने लगेगा।

(३) पलंग या चारपाई आदि पर बग़ैर तकि़ए के सीधे लेट कर बदन व कपड़ों को ढीला कर देना चाहिए। पश्चात् प्राण को उल्टा खींच कर पेट में ले आवें, फिर छाती तक लावें और फिर पेट में नाभि तक घुमावें। ऐसा करने से आपका नाभि सूर्य प्रकाशित होगा, कुछ दिन इस प्रकार करने से व मन को इसी में लगाने से मन को बड़ी शांति व स्थिरता प्राप्त होगी।

(४) किसी मैदान में खड़े होकर शरीर को ढीला छोड़ दो, हाथों को नीचे लटका कर प्राण को आकाश में फेंक दो, फिर प्राण को भीतर खींचते हुए मन से यह काल्पनिक योग करो कि मैं अमुक

शक्ति को खींचकर अपने अन्दर ला रहा हूँ। कुछ दिन ऐसा अभ्यास करने पर आप में उस शक्ति का प्रवेश होगा। हमारे पूर्व पुरुष मन और प्राण की शक्तियों से जो चाहते थे, कर सकते थे।

पाँच शक्तियों में से मन और प्राण शक्ति का ऊपर वर्णन किया जा चुका है। क्रिया, भावना और बुद्धि शक्तियाँ इन्हीं दो के अन्तर्गत आ जाती हैं। जो लोग इन दो शक्तियों का शोधन कर लेंगे उनको इनके अलौकिक गुणों का स्वयं ही अनुभव होगा।

मन का नियंत्रण और भी दो प्रकार से किया जा सकता है। एक तो उसकी गति का मार्ग परिवर्तन करने से दूसरा उसे गतिहीन कर देने से। वासना और कामना से लिप्त चित्त को वृत्ति कहते हैं। योग सूत्र में वृत्तिहीन अवस्था ही योगाभ्यास का लक्ष्य बतलाया हैं। 'योगश्चित्तः वृत्तिनिरोधः तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'। जहाँ चित्तवृत्ति का निवारण हुआ कि आत्मस्वरूप की प्राप्ति निश्चित ही है। इसलिए पहले यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार,,धारणा और ध्यान द्वारा मन की गति एक तरफ़ लगाई जा सकती है। यह सब साधन हमें सविकल्प समाधि तक पहुँचाते हैं, निर्विकल्प समाधि इसके परे है।

मनोविज्ञान के अनुसार मन को गतिहीन करना सम्भव नहीं; परन्तु हम उसको एक तरफ़ से रोककर दूसरी ओर अवश्य लगा सकते हैं। मन सदैव कुछ न कुछ करता ही रहता है इसलिए उसे कुछ न कुछ कार्य देते ही रहना चाहिए। इस मनोवैज्ञानिक सत्य के कारण ही भगवान् कृष्ण ने गीता में इसलिए कर्मयोग और भक्तियोग को ही मन को वश में करने के लिए श्रेष्ठ उपाय बतलाया है।

मन को शून्यता में विलीन करना भी सम्भव नहीं। मन जब तक मन के रूप में है। वह गतिशील ही रहेगा। अध्यात्म दृष्टि से मन अविद्या का कार्य है। द्वैत बुद्धि ही अविद्या है इस द्वैत बुद्धि का निवारण ज्ञान से होता है। द्वैत बुद्धि का नाश हो जाने पर मन अपने

आप ही विलीन हो जाता है। अर्थात् जब तक हमें अद्वैत तत्त्व का ज्ञान नही हो जाता, मन का अवरोध करना उसे काष्ट को लोष्टवत् बनाने की चेष्टा करना है। जब तक शुद्ध चैतन्य की प्राप्ति नहीं होती मन का इधर उधर दौड़ना स्वाभाविक है। वास्तव में मन की इस दौड़-धूप का अन्तिम प्रयोजन आत्मानन्द अथवा ब्रह्मानन्द प्राप्त करना ही है। मन सूक्ष्म होकर जिन कारणों को छोड़कर व सांसारिक वासनाओं को त्यागकर परम शुद्ध आत्मतत्त्व की ओर लगना, मन की सत्ता और आत्मा की सत्ता पर बार बार विचार करना, संसार के पदार्थों की असत्ता का दृढ़ निश्चय हो जाना, परमतत्त्व में चित्त का सामान्य रूप से स्थिर होना आदि।

बिना उचित उपाय के मन का नियंत्रण करना कठिन है। जो लोग ठीक युक्तियों को छोड़कर दृढ़तापूर्वक मन को जीतना चाहते हैं उनको अनेक क्लेश व भय प्राप्त होते हैं। मन का निरोध करने की कुछ युक्तियाँ आगे लिखीं जाती हैं।

ज्ञान की प्राप्ति

(१) ज्ञान द्वारा मन का निरोध करना आँखें बन्द करने या फूल को मसल देने से भी सरल है। मन की सत्ता ही अज्ञान के कारण है और वह ज्ञान द्वारा इस प्रकार सरलता से नष्ट की जा सकती है जैसे रस्सी में साँप की सत्ता। जो वस्तु अज्ञानजन्य है वह ज्ञान होने पर यह भलीभाँति निश्चित हो जाता है कि आत्मा के अतिरिक्त और कोई पदार्थ है ही नहीं और मन भी असत् है।

संकल्प त्याग

(२) संकल्प मन का बन्धन है और संकल्प का त्याग मन की मुक्ति है। संकल्प न रहने पर मन का नाश हो जाता है। संकल्प के शांत हो जाने पर संसार के सब दु:ख मूल सहित नष्ट हो जाते हैं और मुक्ति का उदय हो जाता है।

भोगों से विरक्ति

(३) जब तक संसार का नाश करने वाली भोगों से विरक्ति का उदय नहीं होता तब तक दुःखों पर विजय पाने वाली परम निवृत्ति का अनुभव नहीं होता। संसार रूपी गड्ढे में पड़े हुए लोग तभी तक दुःखों में भ्रमण करते रहते हैं जब तक उनको विषयों से वैराग्य नहीं होता। विषयों से विरक्त होने से मन सूक्ष्म होकर आत्म भाव को प्राप्त होता है ।

वासना का त्याग

(४) मन (चित्त) का असली रूप वासना है। वासना (इच्छा) और मन पर्यायवाची शब्द हैं। वह मनुष्य जिसकी सब वासनाएँ क्षीण हो गईं हैं, जीवन मुक्त हो जाता है। बन्धन में पड़े हुए लोगों को उसका अनुभव नहीं हो सकता। वासना त्याग की सरल युक्ति यह है कि पहले तामसी वासनाओं से रहित होकर केवल एक चित्तमात्रावस्था को प्राप्त होने की वासना को मन में रहने दें। तन, मन और बुद्धि सहित उस वासना का भी त्याग करके जो अवस्था शेष रहे उसके ध्यान में स्थिर रहें। इस प्रकार जिस भावना द्वारा दूसरी वासनाओं का भी त्याग किया जाय उसको भी त्याग देना-चाहिए। उस ज्ञानवान् पुरुष के मन में, जिसने उस भावना से कि 'ब्रह्म सत्यं' अर्थात् केवल ब्रह्म ही सत्य और सब कुछ है, अपना अज्ञान नष्ट ही कर लिया है, कभी वासना का उदय नहीं होता । जिस प्रकार दीपक से अन्धेरा नष्ट होकर प्रकाश का उदय हो जाता है उसी प्रकार 'ब्रह्म' के ज्ञान से वासना समूल नष्ट होकर शांति का अनुभव होता है।

अहंभाव

(५) अहंभाव के उदय के साथ ही संसार के भ्रम का भी उदय होता है और अहंभाव के क्षीण होने पर उस स्वभाव में स्थिर

हो जाता है जिसमें कि निरंतर शान्ति ही शान्ति है। अहंभाव रूपी मेघ के छिन्न भिन्न होने से चिदाकाश के निर्मल हो जाने पर ही आत्मानुभव रूपी सूर्य का प्रचंड प्रकाश होता है और यह भान होने लगता है कि यह सब संसार इंद्रजाल की तरह मिथ्या है, इसलिए इसमें राग रखने से क्या? और द्वेष रखने से क्या? इस प्रकार निरंतर विचार करते रहने से अहंभाव नष्ट हो जाता है। जब यह ज्ञान हो कि मैं ही सारा जगत् हूँ और यहाँ पर कोई भी वस्तु त्यागने अथवा प्राप्त करने योग्य नहीं है, चित्त में समता का प्रकाश हो जाता है तब फिर भला अहंभाव कैसे रह सकता है?

असंग भाव

(६) जिसके हृदय में संसार की वस्तुओं का संग है वही मनुष्य संसार सागर में डूबा हुआ है और जिसका मन असंग अर्थात् संग से रहित है, वही संसार से मुक्त है। संसार रहित मनुष्य वह है जो न कर्मों के त्याग से प्रसन्न होता है और न कर्मों में अनुरक्त होता है, जो किसी भी कर्म का फल नहीं चाहता और जो सब अवस्थाओं में समान रहता है। यहाँ सब कुछ आत्मा ही है, अतएव किस वस्तु का त्याग करूँ? और किसका ग्रहण? इस भाव का नाम असंग है। जीवनमुक्त दशा में यही अवस्था होती है।

कर्तृत्व भाव का त्याग

(७) जब स्पन्दात्मक कर्म क्षीण हो जाता है तो मन भी क्षीण हो जाता है। जिस तरह अग्नि उष्णता की सदा ऐक्यता है वैसे ही मन् और कर्म की सदा ऐक्यता है। दोनों में से एक का भी नाश हो जाने से दोनों का ही नाश हो जाता है। कर्म का (बीज) कारण आत्मा के अज्ञान से उत्पन्न हुआ संकल्प है। संकल्प करना ही बन्धन का कारण है, इसलिये उसका त्याग कर देना चाहिए। संवेदन और सम्बन्ध दोनों को छोड़कर वासना रहित शांत होकर रहने का नाम कर्मयोग है।

सर्व त्याग

(८) जब तक सब कुछ त्यागा नहीं जाता तब तक आत्म लाभ नहीं हो सकता। सब अवस्थाओं का त्याग करने के पश्चात् जो शेष रहता है वही आत्मा है। शुद्ध सर्व त्याग को ही सर्व दुःखों का अन्त करने वाली चिन्तामणि समझना चाहिये और शुद्ध बुद्धि से उसी की ही साधना करना चाहिए। जो सब कुछ है जिससे सब कुछ है और जो सबका आदि कारण है, उसी में सर्व त्याग कर देने से सर्व सिद्धि होती है। तीनों कालों में रहने वाले जगज्जाल को जिसने अपने भीतर इस प्रकार देख लिया है जैसे मोती के भीतर धागा, उसने सब कुछ देख लिया है। जिसने बुद्धि द्वारा सब शंकाओं, सब इच्छाओं और सब निश्चयों का त्याग कर दिया है वही महात्यागी कहलाता है।

समाधि का अभ्यास

(९) यदि निर्विकल्प समाधि में स्थित हो जाय तो अक्षय और निर्मल सुषुप्ति के समान आत्मपद की प्राप्ति हो जाती है। समाधि चुप रहने का नाम नहीं है। सब आशारूपी ऋणों को भस्म करने वाली तत्त्वज्ञान रूपी अग्नि का नाम समाधि है। समाधि उस प्रज्ञा या स्थिति का नाम है जिसमें चित्त स्थिर हो, नित्य तृप्ति हो और पदार्थों के वास्तविक रूप का ज्ञान हो। विषयों के किसी रूप में भी न रहने का नाम ही समाधि है।

लय क्रिया

(१०) देह, मन बुद्धि और क्षेत्रज्ञ जिन-जिन तत्त्वों से उत्पन्न होते हैं उनका ज्ञान प्राप्त करके उनमें इनको लय कर देने का प्रयत्न करना चाहिए। इस रीति से पहले अपने आपको विराट् में स्थित करो, फिर अव्याकृत में और फिर परम कारण में। शरीर के पार्थिव भाग मांसादि

का पृथ्वी तत्त्व में विचार द्वारा लय करो, रक्तादि का जल तत्त्व में, तेजस भाग का अग्नि तत्त्व में, नाभस भाग का वायु तत्त्व में, नाभस भाग को आकाश तत्त्व में, इसी प्रकार एक-एक इन्द्रिय को उसके कारण तत्त्व में लय करो। श्रोत्र को दिक में, त्वक् को वायु में, चक्षु को सूर्य में, जिह्वा को जल में, घ्राण को पृथ्वी में, पैरों को विष्णु में, वायु को मित्र में उपस्थ को कश्यप में, मन को चन्द्रमा में, बुद्धि को ब्रह्मा में, इस प्रकार समस्त देह को उसके कारण तत्त्वों में लय करके अपने आपको विराट् समझो। अब पृथ्वी तत्त्व को जल में, जल को अग्नि में, अग्नि को वायु में, वायु को आकाश में, आकाश को महाकाश में जो कि सबका उत्पत्ति कारण है , लय करो। वहाँ पर योगी लिंग शरीर द्वारा क्षण भर स्थिर होकर और ब्रह्मांड के बाहर दृष्टि फैलाकर यह अनुभव करें कि मैं आत्मा हूँ। लिंग शरीर को सूक्ष्म अव्याकृत में जो कि ब्रह्म से पूर्व की अवस्था का नाम है लीन करना चाहिए। कोई इसको प्रकृति कहते हैं, कोई माया, कोई परमाणु समूह, कोई नर्क से भ्रांत चित्त वाले इसको अविद्या कहते हैं, उसमें सब पदार्थ लय होकर अव्यक्त रूप से वर्तमान रहते है।। इन तीनों अवस्थाओं (स्थूल, सूक्ष्म और कारण) के परे भी एक अव्यय चतुर्थ पद है। उसकी प्राप्ति के लिए, उसका ध्यान करके कारण शरीर को उसमें लय करना चाहिए।

प्राण निरोध

जिस प्रकार हिलना बन्द होते ही हवा का चलना बन्द हो जाता है उसी प्रकार प्राणों की गति रुक जाने पर मन भी शांत हो जाता है, प्राण का स्पंदन रुकने से मन शांत हो जाता है और मन के शांत होने पर संसार का लय हो जाता है। अतएव पहले प्राणों को ही जय करना चाहिए, तब मिताहार होकर आसन साधन और फिर शक्ति चालू न करे।

प्राण क्या है? प्राणों की प्रगति किस प्रकार होती है प्राणायाम किस प्रकार किया जाता है। इस विषय की योगवाशिष्ठ में बहुत

विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। परम कारण का ध्यान, व्यसन क्षय, निरोध की विशेष युक्ति, परमार्थ ज्ञान, शास्त्र और सज्जनों का संग, वैराग्य और अभ्यास, दुःख हरण वाले पूरकादि (पूरक, कुम्भक और रेचक) प्राणायामों का गहरा अभ्यास, एकांत में ध्यान, ॐकार का उच्चारण करते-करते शब्द तत्त्व की भावना, संविद् को सुषुप्ति में लाना, रेचक के अभ्यास से प्राण को आकाश पर्यन्त विस्तृत करना, पूरक के अभ्यास से मेरु के समान स्थिर हो जाना, कुम्भक के अभ्यास से प्राणों का स्तम्भित करना, तालू मूल पर स्थित घंटी की जिह्वा से यत्नपूर्वक दबाकर ऊर्ध्वरंध्र में प्राण ले जाना, संविद् को शून्याकाश में, जहाँ पर कोई कल्पना नहीं है वहाँ ले जाकर शांत करना, नासाग्र से द्वादश अँगुल बाहर शुद्ध आकाश से संविद् को लीन करना, भ्रुवों के बीच में दृष्टि लीन करके शुद्ध चेतन में स्थित होना, उर्ध्वरंध्र में प्राण ले जाकर तालू से बारह अँगुल ऊपर प्राण को शांत करना, जिसमें ज्ञान का उदय हो जाय ठीक उसी समय उसमें दृढ़ भाव से निश्चित होना और किसी भी विकल्प से विचलित न होना, चिरकाल तक जिस पदार्थ की भावना रही हो उसकी शून्य भावना से मन को वासना रहित करके क्षीण करना और शुद्ध संविद् में ध्यान लगाना। इनके सिवाय प्राण निरोध की और भी अनेक युक्तियाँ हैं। इस प्रकार प्राण निरोध के अभ्यास से प्राण के लय होने पर मन की सारी क्रियाएँ शांत हो जाती हैं और निर्वाण पद ही शेष रह जाता है।

भगवान् पतंजलि ने चित्तवृत्ति के निरोध के निम्नलिखित आठ उपाय बतलाये हैं।

(१) अभ्यास और वैराग्य।

(२) प्रणव जप और प्रणव का अर्थ चिंतन।

(३) प्राणायाम।

(४) नासाग्र के अग्रभाग में संयम करने से दिव्य गंध का प्रत्यक्ष होता है। किसी एक अभिमत लक्ष्य में धारणा, ध्यान व समाधि का नाम संयम है। जिह्वा में सयंम के परिपाक से दिव्य रस का, तालू में संयम से दिव्य रूप का, जिह्वा के मध्य में संयम से दिव्य स्पर्श का, जिह्वा के मूल में संयम से दिव्य शब्द का साक्षात्कार होता है। इन गंधादि प्रत्यक्षों का नाम विषयवती प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति चित्तनिरोध द्वारा समाधि में उपयोगी होती है।

(५) हृदय कमल में संयम करने से चित्त का प्रत्यक्ष होता है। अस्मिता में संयम करने से अस्मिता का प्रत्यक्ष होता है। इस प्रत्यक्ष से भी साधक का चित्तनिरोध होता है।

(६) बीतराग पुरूषों के चरित्र के अनुकूल चलने से भी चित्त का निरोध होता है।

(७) भगवान् की मूर्ति में संयम करने से चित्तवृत्ति निरोध रूपं योग की सिद्धि होती है।

(८) इष्ट देवतादि का ध्यान करने से भी चित्तवृत्ति का निरोध हो जाता है।

मानस शास्त्र का यह नियम है कि अपने को जो जैसा समझता है वह वैसा ही बन जाता है। सुनने में तो यह बात आश्चर्यजनक सी मालूम होती है परन्तु वास्तव में है बिल्कुल सत्य।

योरोपीय महान् मनोविज्ञानाचार्य एमीलो का कथन है कि रात्रि को सोते समय अन्तर्मन में जिस भावना का चिन्तन करते हुए हम निद्रा में प्रवेश करते हैं उसी प्रकार हमारे जीवन का निर्माण होता है। इस सिद्धांत के अनुसार भावनाओं का प्रभाव हमारे मन, विचार, प्रवृत्ति शरीरिक संगठन तथा उसके कार्यो पर पड़ता है।

आनन्द, सुख, शांति, आरोग्य, उत्साह श्रद्धा, सामर्थ्य, बल, आदि

की भावना अन्तर्मन में भरी जा सकती है और यही भावनाएँ सत्य होकर हमारे जीवन को उच्च बना सकती हैं।

जो आपकी इच्छा और आवश्यकता हो वही भावना रात्रि को सोते समय बार-बार दोहराया करो! उदाहरणार्थ मेरी इच्छा शक्ति बलवती हैं, मैं सब कुछ कर सकता हूँ, मैं अवश्य करूँगा, मैं दुःख और विपत्ति से कभी नहीं डरता। शरीर और मन पर मेरा पूर्ण अधिकार है आदि-आदि।

इस अभ्यास से थोड़े ही दिनों में आपके मन और शरीर में आश्चर्यमय उन्नति होगी। आपका मन और स्वभाव आपके वश में हो जाएगा।

नाभि में दृष्टि और मन स्थिर करने से वह जल्दी स्थिर हो जाऐंगे। यह बहुत ही सरल उपाय है।

त्राटकयोग से भी मन स्थिर होता है परन्तु कमज़ोर दृष्टि वालों की आँखें ख़राब हो जाने का भय रहता है।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि जिनका मन वश में नहीं उनके लिये योग का प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है, यह मेरा मत है, परन्तु मन को वश में किए हुए प्रयत्नशील पुरुष साधन द्वारा योग प्राप्त कर सकते हैं। (गीता ६/३६)

भगवान् श्रीकृष्ण के उपर्युक्त वचनों के अनुसार सिद्ध है कि मन को वश में किए बिना परमात्मा की प्राप्ति रूप योग दुष्प्राप्त है। अतएव दुःखों की निवृत्ति और आनन्दमय परमात्मा की प्राप्ति के जिज्ञासु को मन वश में करना ही पड़ेगा इसके सिवा ओर कोई दूसरा उपाय ही नहीं है, परन्तु मन स्वभाव से ही बड़ा चंचल और बलवान् है इसलिए उसे वश में करना कोई साधारण बात नहीं है सारे साधन इसी को वश में करने के लिए किए जाते हैं। इस पर विजय मिलते ही मानो

विश्व पर विजय प्राप्त हो गई। भगवान् शंकराचार्य ने कहा है कि **'जितं जगत् केन, मनो हि येन'**, अर्थात् जगत् को किसने जीता? जिसने मन को जीत लिया।

अर्जुन ने भी मन को वश में करना कठिन समझकर भगवान् कृष्ण से कहा था कि 'हे भगवान् ! यह मन बड़ा ही चंचल, हठीला, दृढ़ और बलवान् है, इसे वश में करना मैं तो वायु को रोकने के समान अत्यन्त दुष्कर समझता हूँ।' गीता (६/३४)

जो बात अर्जुन के लिए कठिन थी वह हम लोंगें के लिये भला कैसे सहज हो सकती है। मन को जीतना कठिन है इस बात को मानते हुये भगवान् ने कहा कि 'हे अर्जुन ! इसमें सन्देह नहीं कि इस चंचल मन का निग्रह करना बड़ा कठिन है, परन्तु अभ्यास और वैराग्य से यह वश में हो सकता है।' इससे यह सिद्ध हो गया कि मन का वश में करना कठिन अवश्य है, परन्तु असम्भव नहीं है, और इसको वश में किए बिना दुःखों की निवृत्ति भी नहीं हो सकती, अतएव इसे वश में करना ही चाहिये। गीता (६/३५)

ध्यान की एकाग्रता के लिए मन को स्थिर रखना अत्यन्त आवश्यक है इसलिए पहले इसे वश में करना चाहिए। दृढ़ निश्चय के साथ सतत प्रयत्न करने पर भला ऐसा कौन सा कार्य है जो नहीं हो सकता। विश्वामित्र जी ने असफल होने पर भी हताश न होकर बराबर उद्योग करके बह्म ऋषि के पद को प्राप्त कर ही लिया था।

मन का स्वरूप

मन क्या वस्तु है ? यह आत्म और अनात्म पदार्थ के बीच में रहने वाली एक विलक्षण वस्तु है। यह स्वयं अनात्म और जड़ है परन्तु बंध और मोक्ष इसी के अधीन है।

मन ही जगत् है, मन नहीं तो जगत् नहीं, मन विकारी है, इसका कार्य संकल्प विकल्प करना है। यह जिस पदार्थ को भली भाँति ग्रहण करता है, उसमें स्वयं भी तदाकार हो जाता है। यह राग के साथ ही चलता है, सारे अनर्थों की उत्पत्ति राग से होती है, राग न हो तो मन प्रपंचों की तरफ़ ही न जाय। किसी भी विषय में गुण और सौंन्दर्य देखकर उसमें राग होता है, इसी से मन उस विषय में प्रवृत्त होता है, परन्तु जिस विषय में इसे दु:ख और दोष दिखलाई पड़ते हैं उससे इसका द्वेष हो जाता है, फिर यह उसमें प्रवृत्त नहीं होता यदि भूलकर हो भी जाता है तो उसमें अवगुण देखकर द्वेष से तुरन्त लौट आता है। वास्तव में द्वेष वाले विषय से भी इसकी प्रवृत्ति राग से ही होती है। साधारणत: यही मन का स्वरूप और स्वभाव है। अब विचार करने की बात यह है कि यह वश में कैसे हो? इसके लिए भगवान् ने जो उपाय बतलाए है वह हैं- अभ्यास और वैराग्य। महर्षि पतंजलि ने भी योगदर्शन में यही उपाय बतलाए हैं। अतएव इसी का विचार करना है।

(१) भोगों से वैराग्य

जब तक संसार की वस्तुयें सुन्दर और सुखप्रद मालूम होती हैं तब तक मन उनमें जाता है, यदि यही सब पदार्थ दोषयुक्त और दु:खप्रद दिखने लगें (जैसे कि वह वास्तव में हैं) तो मन उनमें कदापि न लगेगा। यदि कभी इनकी ओर गया भी तो उसी समय वापस लौट आएगा। इसलिए संसार के सारे पदार्थो में (चाहे वह लौकिक हों या पारलौकिक) दु:ख और दोष की प्रत्यक्ष धारणा करना चाहिए। ऐसा दृढ़ विचार करना कि इन पदार्थों में क़ेवल दोष और दु:ख ही भरे हुए हैं। रमणीय और सुखरूप दिखने वाली वस्तुओं में ही मन लगता है, यदि यह रमणीयता और सुखरूपता विषयों से हटकर परमात्मा में दिखलाई देने लगे (जैसा कि वास्तव में है) तो यही मन तुरन्त विषयों से हटकर परमात्मा में लग जाएगा। यही वैराग्य का साध न है और वैराग्य ही एक मात्र मन जीतने का सर्वोत्तम उपाय है। सच्चा

वैराग्य तो ससांर के इस दिखने वाले स्वरूप का सर्वथा अभाव और उसकी जगह परमात्मा का नित्य भाव प्रतीत होने में ही है, परन्तु आरम्भ में नये साधक को मन अपने वश में करने के लिए इस लोक और परलोक के समस्त पदार्थों में दोष और दु:ख देखना चाहिए, जिसमें मन का अनुराग उनसे हटे। इस सम्बन्ध में भगवान् कृष्ण ने कहा है कि--

'इस लोक और परलोक के समस्त भोगों में वैराग्य, अहंकार का त्याग, इस शरीर में जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा और रोग आदि दु:ख और दोष देखना चाहिए।' (गीता १३/८)

इस प्रकार वैराग्य की भावना से मन वश में हो सकता है। यह तो वैराग्य का संक्षिप्त साधन हुआ, अब आगे अभ्यास दिए जाते हैं।

(२) नियम से रहना

मन को वश में करने के लिए नियम से रहने से बड़ी सहायता मिलती है। सब ठीक समय पर नियमानुसार करना चाहिए। दिन भर के कार्य की प्रात: काल उठते ही एक नियमित दिनचार्य बना लेना चाहिए जिससे जिस समय जो कार्य करना हो, मन अपने आप स्वभावत: ही उस समय उसी कार्य में लग जाय। अपने जिस इष्टदेव के ध्यान के लिए प्रतिदिन जिस स्थान, जिस आसन पर, जिस आसन से जिस समय और जितने समय बैठा जाय उसमें किसी दिन भी बिल्कुल ही असमर्थ न हो जाने के सिवाय चूकना न चाहिए। थोड़ी भी नियमित साधना अनियमित अधिक साधना से उत्तम है। अनियमित साधन से कभी सफलता नहीं मिल सकती। स्थान, आसन, समय, इष्ट और मंत्र को जहाँ तक हो सके बार-बार नहीं बदलना चाहिए। नियमितता से ही मन स्थिर होता है। बल्कि नियमों का पालन तो प्रतिदिन के कार्य, खाने, पीने, सोने आदि सभी कामों में अत्यन्त आवश्यक है। नियम अपनी सुविधा व शास्त्रानुसार बना लेना चाहिए।

(३) मन की क्रियाओं पर विचार

प्रतिदिन रात को सोते समय मन से प्रत्येक कार्य पर जो-जो आ सकें उसका विचार करना चाहिए और सात्विक विचारों व कार्यों के लिये उसकी प्रशंसा और राजसिक तथा तामसिक के लिये उसे धिक्कारना चाहिए। प्रतिदिन इस प्रकार के अभ्यास से मन पर सत्कार्य करने और असत्कार्य छोड़ने के संस्कार जमने लगेंगे व कुछ दिनों में मन बुराइयों से बचकर अच्छें कामों में लग जाएगा। इस तरह पहले वह भले कार्यवाला होने से उसे वश में करने में सुगमता होगी। विषय आदि चिन्तन करने वाले मन को एक साथ विषय रहित करना कठिन है, इसलिए पहले उसे बुरें विचारों से बचाना चाहिए, तब वह शुभ चिन्तन करने लगेगा और फिर उसको वश में करने में कठिनता न होगी।

(४) मन के कहने में चलना

मन जब तक अपने वश में न हो तब तक उसे अपना शत्रु समझना चाहिए और शत्रु की तरह उसके हर एक कार्य की कड़ी निगरानी रखना चाहिए। जब वह कोई अनुचित विचार व कार्य करने लगे उसी वक़्त उसे धिक्कारना चाहिए। उसकी ख़ातिर व लिहाज़ भूलकर भी नहीं करना चाहिए। यद्यपि यह बड़ा बलवान् है, कई बार इससे हारना पड़ेगा, परन्तु साहस नहीं छोड़ना चाहिए। जो साहस व दृढ़ निश्चय के साथ कोई कार्य करता है वह अपने उद्देश्य में अवश्य सफल होता है। यह मन बड़ा चतुर भी है अतएव कभी यह डरावेगा, लालच देगा, अनेक रंग बतलावेगा परन्तु कभी इसके धोखे में न आना चाहिए। इस प्रकार कुछ दिनों में उसका साहस टूट कर सीधा-साधा आपकी आज्ञा पालन करने वाला विश्वासी सेवक बन जाएगा।

(५) मन को सत्कार्य में संलग्न रखना

मन कभी बेकार नहीं रह सकता, उसको कुछ न कुछ काम

मिलना ही चाहिए, इसलिये उसे हमेशा काम में लगाए ही रहना चाहिए। बेकार रहने से ही ख़राब बातें सूझती है अतएव जब तक सो न जाय उस वक़्त तक अच्छे कार्यों व विचारों में इसे लगाए रखना चाहिए। जागृत समय के सत्कार्यों के चित्र ही स्वप्न में दिखलाई पड़ते हैं। इसलिए भी बराबर अच्छे विचार ही करते रहना चाहिए।

(६) मन को परमात्मा में लगाना

भगवान् ने कहा है कि --

'यह चंचल और अस्थिर मन जहाँ दौड़कर जाय वहाँ-वहाँ से इसे लौटाकर परमात्मा में ही लगाना चाहिए। (गीता ६/२६)

मन को वश में करने का अभ्यास करने पर पहले तो वह इतना ज़ोर दिखलाता है कि अपनी चंचलता व शक्ति से ऐसी पछाड़ लगाता है कि नया साधक घबड़ा उठता है, उसके हृदय में निराशा सी छा जाती है, परन्तु साधक को अधीर नहीं होना चाहिए बल्कि दृढ़ता और धैर्य रखना चाहिए। मन का यह स्वभाव ही है इसलिए घबड़ाना नहीं चाहिये। साहस और धैर्य रखने से वह धीरे-धीरे एक दिन वश में हो जाएगा। इस सम्बन्ध में भगवान् कृष्ण ने कहा है कि :-

धीरे-धीरे अभ्यास करता हुआ उपरामता को प्राप्त हो, धैर्ययुक्त बुद्धि से मन को परमात्मा में स्थिर करके और किसी भी विचार को मन में न आने दें। (गीता ६/२५)

इस प्रकार की दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेना चाहिए कि किसी प्रकार भी वृथा व अनुचित विचार तथा मिथ्या संकल्पों को मन में नहीं आने दिया जाएगा। बड़ी चेष्टाओं और दृढ़ता रखने पर भी मन साधक की चेष्टाओं को कई बार व्यर्थ कर देता है। साधक जब कोई साधना करना चाहता है उस वक़्त मन उसका अभ्यस्त न होने के कारण वह उन दृश्यों को जो कि संस्कार रूप से उस पर अंकित हैं सिनेमा की तरह क्षण-क्षण में एक के बाद दूसरी फिल्म उपस्थित करने लगता है। उस समय ऐसी-ऐसी बातें व दृश्य उपस्थित होते हैं जो सांसरिक

कार्यों के समय कभी याद नहीं आते थे, परन्तु इनसे चिन्तित नहीं होना चाहिए। जब अभ्यास का बल बढ़ेगा तब मन को संसार से फ़ुरसत मिलती है वह परमात्मा में लग जाएगा। जिस तरह वह अन्य बातों से हटाये नहीं हटता उसी तरह अभ्यास दृढ़ हो जाने पर वह परमात्मा के ध्यान से भी हटाये नहीं हटेगा। वास्तव में वह सुख चाहता है जब तक इसे विषयों में सुख मिलता है तब तक वह उनमें लगा रहता है परन्तु जब इसे विषयों में दु:ख और परमात्मा में सुख प्रतीत होने लगेगा तब वह स्वयं ही विषयों को छोड़कर परमात्मा की तरफ़ दौड़ेगा। अतएव जब तक ऐसा न हो उस वक़्त तक निरन्तर अभ्यास करते ही रहना चाहिए। जिस-जिस कारण से मन सांसरिक बातों में जाय उस-उस कारण से उसे रोककर परमात्मा में स्थिर करे। उसके पीछे ऐसा पहरा लगा दे कि वह भाग ही न सके। यदि किसी प्रकार भी न माने तो फिर उसे भागने की पूरी स्वतन्त्रता दे दें, परन्तु जहाँ कहीं वह जाय वहीं परमात्मा की भावना की जाय, वहीं इसे परमात्मा के स्वरूप में लगाया जाय, इस उपाय से भी वह स्थिर हो जाता है।

(७) एक तत्व का अभ्यास

महर्षि पतंजलि योगदर्शन में लिखते हैं कि चित्त का विक्षेप दूर करने के लिए पाँच तत्त्वों में से एक तत्त्व का अभ्यास करना चाहिए अथवा एक वस्तु या किसी एक मूर्ति की तरफ़ एक दृष्टि से उस वक़्त तक देखना चाहिए जब तक आँखों की पलकें न गिरें या आँखों में जल न आ जाय। धीरे-धीरे चिन्ह को छोटा करते जाना चाहिए ओर अन्त में उसे बिल्कुल ही हटा देना चाहिए और फिर बग़ैर चिन्ह के दृष्टि स्थिर करने का अभ्यास क़रना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन कम से कम आधा घंटा अभ्यास करने से दृष्टि स्थिर हो जाने पर मन की चंचलता जाती रहेगी। दोनों भ्रूमध्य के बीच में भी दृष्टि स्थिर करने का अभ्यास किया जा सकता है। इसको त्राटक कहते हैं।

(८) नाभि या नासिकाग्र में दृष्टि स्थापन

पद्मासन या सुखासन से बैठकर नाभि या नासिकाग्र पर इसी प्रकार एक मन से दृष्टि जमाकर उस वक़्त तक देखते रहने से जब तक पलक न गिरें या आँखों में पानी न आ जाय देखते रहने से भी मन स्थिर होता है व ज्योति के दर्शन भी होते हैं।

(९) नाद श्रवण

कानों में अँगुली देकर शब्द सुनने का अभ्यास करना चाहिए। इसमें पहले भँवरों की गुँजार, पक्षियों के चुहचुहाने के शब्द, फिर क्रमशः घुँघरू, शंख, घंटा, ताल, मुरली, भेरी, मृदंग, नफीरी और सिंह गर्जन के दृश्य शब्द सुनाई पड़ते हैं। इस प्रकार के शब्द सुनाई पड़ने के बाद दिव्य ॐ शब्द का श्रवण होता है जिससे साधक समाधि को प्राप्त हो जाता है। यह मन के स्थिर करने का उत्तम साधन है।

(१०) ध्यान या मानस पूजा

सब जगह भगवान् के किसी नाम को लिखा हुआ समझकर बारम्बार उस नाम के ध्यान में मन लगाना चाहिए अथवा भगवान् के किसी स्वरूप विशेष की अन्तरिक्ष में मन से कल्पना कर उसकी पूजा करना चाहिए। पहले भगवान् की मूर्ति के एक-एक अंग का अलग-अलग ध्यान करे फिर पूरी मूर्ति का ध्यान करना व उसी में मन को अच्छी तरह स्थिर करना चाहिए। मूर्ति के ध्यान में इतना तन्मय हो जाना चाहिए कि संसार का भान ही न रहे। फिर कल्पना रूपी सामग्रियों से भगवान् की मानसिक पूजा करना चाहिए। प्रेमपूर्वक नियमित रूप से इस मानसिक ध्यान व पूजा से मन को स्थिर करने में बड़ी सहायता मिलती है।

(११) मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षा का व्यवहार

महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन में मन को स्थिर करने के लिए आगे लिखे उपाय भी बतलाए है।

सुखी मनुष्यों से प्रेम, दुःखियों के प्रति दया, पुण्यात्माओं के प्रति प्रसन्नता और पापियों के प्रति उदासीनता की भावना से चित्त प्रसन्न होता है अतएव --

(१) ससांर के सारे सुखी जीवों के साथ प्रेम करने से चित्त का ईर्षामल दूर होता है व दाह की आग बुझती है, इससे दूसरों को सुखी देखकर जलन पैदा करने वाली वृत्ति का नाश होता जाएगा।

(२) दुःखी प्राणियों के प्रति दया करने से पर अपकार रूप चित्त मल नष्ट हो जाता है। दुःख पीड़ित लोगों के दुःख दूर करने के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने की प्रबल भावना से मन सदा प्रसन्न रह सकता है।

(३) धार्मिकों को देखकर हर्षित होने से दोषारोप नामक मन का असूया नामक मल नष्ट होता है व धाार्मिक पुरुष की भाँति चित्त में धार्मिक वृत्ति जागृत हो उठती है। असूया के नाश से चित्त शांत होता है।

(४) पापियों के प्रति उपेक्षा करने से चित्त का क्रोध रूप मल नष्ट होता है। पापों के चिन्तन न होने से उनके संस्कार अन्तःकरण पर नहीं पड़ते। किसी से भी घृणा न होने से चित्त शांत रहता है।

इस प्रकार इन चारों भावों के बारम्बार अनुशीलन से चित्त की राजस, तामस वृत्तियाँ नष्ट होकर सात्विक भावों का उदय होता है और चित्त प्रसन्न होकर शीघ्र ही एकाग्र होता है।

(१२) सद्ग्रन्थों का अध्ययन

भगवान् के उपदेश तथा चरित्र सम्बन्धी ग्रन्थों में अर्थात् उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत्, रामायण, आदि का अर्थ सहित अनुशीलन करने से वृत्तियाँ तदाकार होकर मन स्थिर हो जाता है।

(१३) प्राणायाम

मनु महाराज ने कहा है कि जिस प्रकार अग्नि से तपाये जाने पर धातु का मल जल जाता है उसी प्रकार प्राणवायु के निग्रह (प्राणायाम) से इन्द्रियों के सारे दोष दग्ध हो जाते हैं।

प्राणों को रोकने से ही मन रुकता है। मन सवार है तो प्राण वाहन है। मन को रोकने से दोनों रुक सकते हैं।

समाधि से भी मन रुकता है। प्राणायाम समाधि के साधनों का एक मुख्य अंग है।

(१४) श्वास के द्वारा नाम जप

मन को रोककर परमात्मा में लगाने का एक और भी अत्यंत सरल उपाय है जिसको सभी लोग कर सकते हैं। वह है श्वास प्रश्वास की गति पर ध्यान रखकर श्वास के द्वारा श्री भगवान् के नाम का जप करना। यह अभ्यास उठते, बैठते, खाते, पीते, चलते-फिरते प्रत्येक अवस्था में किया जा सकता है। श्वास के साथ जप करते समय चित्त में अत्यन्त प्रसन्नता व आनन्द होना चाहिए। इसके साथ ही भगवान् को अत्यन्त समीप जानकर उनके स्वरूप का ध्यान भी करते रहना चाहिए। इस भाव से संसार की सुध भुलाकर मन को परमात्मा में लगाना चाहिए।

(१५) मन के कार्यों को देखना

मन को वश में करने का एक बड़ा उत्तम साधान है मन से अलग होकर निरतंर मन के कार्यों को देखते रहना। जब तक हम मन के साथ मिले हुए हैं तभी तक मन में इतनी चंचलता है। जिस समय हम उसके दृष्टा बन जाते हैं उसी समय मन की चंचलता मिट जाती है। वास्तव में तो मन से हम सर्वथा भिन्न ही हैं। जिस समय मन में कोई नया संकल्प होता है, उसका पूरा पता हमें रहता है। यदि साधक अपने को

निरन्तर अलग रखकर मन की क्रियाओं का दृष्टा बनकर देखने का अभ्यास करे तो मन बहुत ही शीघ्र संकल्प रहित हो जाता है।

(१६) भगवन्नाम कीर्तन

भगवान् चैतन्यदेव ने बतलाया है कि मग्न होकर उच्च स्वर से परमात्मा का नाम और गुण कीर्तन करने से भी मन परमात्मा में स्थिर हो सकता है। भक्त जब प्रभु का नाम कीर्तन करते-करते गद्‌गद् कंठ, रोमांचित और अश्रुपूर्ण नेत्रों में प्रेमावेश में अपने आपको सर्वथा भुलाकर केवल प्रेमिक परमात्मा के रूप में तन्मयता प्राप्त कर लेता है तब भला मन को जीतने में और कौन-सी बात बाक़ी रह जाती है। अतएव भगवान् का प्रेमपूर्वक नाम कीर्तन करना मन पर विजय पाने का एक अत्युत्तम साधन है।

इस प्रकार मन को रोककर परमात्मा में लगाने के अनेक साधन और युक्तियाँ हैं। इनमें से या अन्य किसी भी युक्ति से किसी प्रकार से भी मन को विषयों से हटाकर परमात्मा में लगाने की पूरी चेष्टा करना चाहिए। मन को स्थिर किये बिना कोई भी साधन नहीं हो सकता। अतएव प्राणायम से मन को स्थिर करने का प्रयत्न करना चाहिए। अब तक जो इस मन को स्थिर कर सके हैं वे ही आत्मा व भगवान् श्याम सुन्दर के दर्शन कर अपना जन्म और जीवन सफल कर सके हैं।

यही योग साधन का चरम फल है अथवा यही परम योग है।

मनोलय

योगवाशिष्ठ के अनुसार मन ही संसार को उत्पन्न करने वाला व चलाने वाला है। मन के शांत हो जाने पर जीवन में परम शांति आ जाती है व संसार का समस्त अनुभव क्षीण हो जाता है। मन के शांत हो जाने पर जीवन ब्रह्म तत्त्व को प्राप्त हो जाता है और प्राणों का

स्पन्दन रुक जाता है। मन संसार रूपी माया चक्र की नाभि है। इस चक्र को बल और बुद्धि द्वारा रोक लेने पर सब कुछ जीत लिया जाता है। मन के लीन हो जाने पर द्वैत और अद्वैत दोनों भावनाओं का लय होकर परम शांत आत्म तत्त्व का ही अनुभव रह जाता है। संसार रूपी दुःख के मुक्त होने का उपाय केवल मन को निग्रह करना है।

मन ही स्थिर होकर परिमित जीव हो जाता है और मन सूक्ष्म व विस्तृत होकर ब्रह्म हो जाता है। जिन कारणों द्वारा मन स्थूलता को प्राप्त होकर दुःख भोगता है वह यह हैं। अनात्म वस्तु को आत्मभाव, स्थूल देह में आस्था, स्त्री पुत्र और कुटुम्ब में ममता, मेरा तेरापन, बुढ़ापे और मौत से डर, संसार से सुख की आशा, किसी वस्तु की प्राप्ति व त्याग का फल व भोगों की तृष्णा और विषय में आसक्ति आदि।

मन सूक्ष्म होकर जिन कारणों से ब्रह्म भाव को प्राप्त होता है वह यह हैं। भोगों में सुख की कल्पना को छोड़कर सांसारिक वासनाओं को त्याग कर परम शुद्ध आत्म तत्त्व की ओर लगाना, मन की असत्ता और आत्मा की सत्ता पर बार-बार विचार करना, संसार के पदार्थों की असत्का का दृढ़ निश्चय हो जाना, परम तत्त्व में चित्त सामान्य रूप से स्थिर करना।

महर्षि व्यास जी ने अपने पुत्र श्री शुकदेव जी को इस सम्बन्ध में उपदेश देते हुए कहा था कि बेटा ! जिसने मन को वश में कर लिया है, वही अजन्मा, पुरातन, अजर, अमर, सनातन, नित्य युक्त, अणु से भी अणु और महान् से भी महान् आत्मा का दर्शन कर सकता है। वेद का सार है सत्य, सत्य का सार है इन्द्रियों का संयम, इंद्रियों के संयम का सार है दान, दान का सार है तपस्या, तपस्या का सार त्याग, त्याग का सार सुख, सुख का सार मनोनिग्रह और मनोनिग्रह का सार है स्वर्ग। मनुष्य को संतोषपूर्वक रहकर शांति के उत्तम उपाय सत्वगुण को अपनाने का प्रयत्न करना चाहिए, सत्वगुण मन की तृष्णा, शोक और संकल्प को जला कर नष्ट करने वाला है।

योगवाशिष्ठ में

योगवाशिष्ठ आध्यात्मिक ग्रन्थों में बहुत ही उच्च कोटि का ग्रंथ है। इसमें वशिष्ठ जी द्वारा श्री रामचंद्र जी को दिए गए आध्यात्मिक उपदेशों का अत्यंत मनोहर वर्णन है। इसके दार्शनिक सिद्धांत बहुत ही सूक्ष्म और गहन हैं। अद्वैत वेदांत के अनेक पंडितों ने इन सिद्धातों का बहुत ही प्रतिपादन किया है।

योग शब्द का अर्थ

योगवाशिष्ठ में योग शब्द का अर्थ है, संसार सागर से पार होने की युक्ति।

योग का आदर्श

योग द्वारा मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप सच्चिदानंद का अनुभव कर लेता है। योग का ध्येय बहुतुरीय नामक परम आत्मा में स्थिति है जिसमें जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति किसी का भी भान न हो ओर न इसके आगामी अनुभव का बीज ही रहे व जिसमें परम आनंद का निरंतर अनुभव होता रहे।

योग की तीन रीतियाँ

योग साधन की तीन रीतियाँ हैं (१) एक तत्त्व की दृढ़भावनी (२) मन की शांति (३) प्राणों के स्पन्दन का निरोध। इन तीनों में से किसी एक की साधना से तीनों की सिद्धि हो जाती है। किसी को ज्ञान का अभ्यास, किसी को प्राण का निरोध और किसी को मन को शांत करना सरल होता है। प्राणों के निरोध की अपेक्षा मन को शांत करना अथवा एक तत्त्व का दृढ़ अभ्यास करना अधिक सरल है।

एक तत्त्व का अभ्यास

एक तत्त्व की दृढ़ भावना से मन शांत होकर विलीन हो जाता है और प्राणों का स्पन्दन स्वयं ही रुक जाता है। एक तत्त्व का अभ्यास तीन विधियों से होता है।

(१) ब्रह्म भावना

पहले विचार द्वारा यह निश्चय होना चाहिए कि संसार केवल एक ही अनन्त आत्म तत्त्व है और सब पदार्थ उसी तत्त्व के नाना नामरूप है। इसके पश्चात् मन को तन्मय करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रकार ब्रह्माभ्यास करने से मन ब्रह्माकार होकर विलीन हो जाता है और प्राणों की गति भी स्वयं रुक जाती है क्योंकि यह नियम है कि जो जिस विषय की दृढ़ भावना करता है वह उसमें तद्रूप हो जाता है। दूसरी विधि है।

(२) अभाव भावना

इसका अर्थ है समस्त पदार्थों को नितान्त असत् समझ कर उनमें पारमार्थिक अभाव की दृढ़ भावना करना। जब कि ब्रह्म (आत्मा) के अतिरिक्त इस जगत् में और कोई दूसरी वस्तु ही नहीं है और सब दृश्य पदार्थ वस्तुतः ब्रह्म ही हैं, तब उनको नाना नाम रूप और भिन्न सत्ता वाले समझना केवल भ्रम है। अतएव यह दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिए कि कोई पदार्थ है ही नहीं, केवल ब्रह्म ही ब्रह्म सर्वत्र है। इस निश्चय के अभ्यास का नाम ब्रह्म भावना है। ऐसा करने से मन शांत हो जाता है और अहंभाव व जगत् का अनुभव दोनों का लोप होकर आत्मभाव में स्थित हो जाता है।

(३) केवली भाव

केवली भाव उस निश्चय के अभ्यास का नाम है जिसमें केवल एक ही आत्मतत्त्व की स्थिति मानी जाय और समस्त दृश्य पदार्थों के

असत्य होने की दृढ़ भावना होने के कारण अपने दृष्टा होने को भी असत् समझा जाय और अपने उस आत्मस्वरूप में स्थित हो जाय जिसमें द्वैत का कोई भान नहीं है।

उपयोगी उपचार

सर्व प्रकार के साधन और तपस्या का मूल स्वस्थ शरीर है। यदि शरीर स्वस्थ न हुआ तो कोई भी कर्म, साधना या तपस्या नहीं हो सकती। इसीलिये हमारे ऋषियों मुनियों ने औषधियों का प्रयोग किए बग़ैर ही शरीर को स्वस्थ रखने के लिए ऐसे यम नियम व सरल उपचार बतलाए हैं जिसको प्रत्येक मनुष्य सरलता पूर्वक कर सकता है। इसी प्रकार के कुछ उपचार नीचे दिए जाते है।

पुराना अपचन

दूर करने के लिए रोज दस पन्द्रह मिनिट पद्मासन बैठकर नाभि पर दृष्टि स्थिर करने से अपचन शीघ्र ही दूर होता है।

दाँतो की बीमारियाँ

टट्टी व पेशाब करते समय दाँतों की दोनों पंक्तियों को एक दूसरे से ज़ोर से दबाने से दाँतों से सम्बन्ध रखने वाली बीमारियाँ दूर होकर दाँत मज़बूत होते है।

गर्मी व थकावट दूर करना

धूप की गर्मी व परिश्रम से उत्पन्न थकावट दूर करने के लिए दाहिनी करवट लेटने से लाभ होता है।

सिर के रोग

भोजन करने के पश्चात् बाल ओंछने से (रबड़ की कंघी से नहीं) सिर के रोग व वात रोग दूर होते हैं व बाल जल्दी नहीं पकते और बवासीर आदि नहीं होती। भोजन के बाद १५ मिनट वीरासन (दोनों पैर पीछे) मोड़कर बैठने से पुराना वात अच्छा हो जाता है। गहरी नींद आवेगी व स्वप्न दोष न होगा।

पेट सम्बन्धी रोग

पद्मासन से आधा घण्टा बैठकर दाँतों की जड़ों से जीभ का अग्र भाग जमाए रहने से पेट सम्बन्धी शिकायतें दूर होती है और कोई रोग न होकर स्वास्थ अच्छा रहता है।

कफ वायु निरोध

प्रातःकाल निद्रा त्याग के समय व भोजनोपरांत दोनों समय हाथ के अँगूठे के निचले भाग से दो तीन बार माथा घिसने से दमकाश्रित वायु और श्लेष्मा का दोष नष्ट होता है।

स्वप्न दोष निवारण

रोज़ाना आध घंटा सिद्धासन से बैठकर नाभि पर दृष्टि जमाए रखने से स्वप्नदोष सर्वथा नष्ट हो जाता है। छः मास तक लगातार अभ्यास करने से पुराना भयंकर स्वप्न दोष सर्वथा नष्ट हो जाता है।

अजीर्ण निवारण

जिनको अजीर्ण अधिक रहता हो वे प्रातः निहार मुँह पान के पत्ते में दस काली मिर्चे चबा-चबा कर खाएँ। कुछ दिनों में अजीर्ण सर्वथा दूर हो जाएगा। स्थिरता के साथ बैठकर नाभि मण्डल में दृष्टि जमाकर नाभिकंद का ध्यान करने से भी अजीर्ण आदि रोग दूर हो जाते है।

ख़ून की ख़राबी

ख़ून ख़राब होने अथवा ख़ून के विकार से फोड़ा फुंसी होने पर कुछ शीतली कुम्भक (प्राणायाम) करने से रक्त साफ़ होकर चर्म रोग नष्ट हो जावेंगे।

स्मरण शक्ति बढ़ाना

मस्तक पर एक लकड़ी की कील रखकर एक लकड़ी के ही छोटे टुकड़े से धीरे-धीरे ठोकने पर स्मरण शक्ति कुछ दिनों में बढ़ जाती है।

कुष्ठरोग व दीर्घ आयु

मस्तक के ऊपर पूर्ण चन्द्र के समान ज्योति का ध्यान करने से आयु बढ़ती है व कुष्ठादि रोग दूर होते हैं।

वृद्धावस्था रोकना

दृष्टि के आगे सदा पीतवर्ण उज्ज्वल ज्योति का ध्यान करने से सब तरह के रोग अच्छे होते हैं व मनुष्य वृद्धावस्था के लक्षणों से बच जाता है।

प्यास व शीतोष्ण निवारण

प्यास से व्याकुल होने पर जीभ के ऊपर खट्टी चीज़, शरीर में साधारण तथा गर्मी मालूम होने पर ठंडी चीज़ और शीत मालूम होने पर गर्म चीज़ का ध्यान करना चाहिए।

पुराना व भीतरी ज्वर

प्रातः काल और तीसरे पहर कागदी नीबू का पत्ता सूघने से पुराना और भीतरी ज्वर दूर होता है।

शरीर के विकार

प्रतिदिन एकाग्र, चित्त होकर श्वेत, कृष्ण व रक्त वर्णों का ध्यान करने से शरीर के सब विकार नष्ट हो जाते हैं। इसी कारण ब्रह्मा, विष्णु व महेश नित्य ध्येय हैं। हमारे पूर्वजों ने शरीर को स्वस्थ रखने के लिए ही सन्ध्या वन्दन करना परम आवश्यक बतलाया है क्योंकि उस समय श्वेत, रक्त व श्याम वर्णों का ध्यान करने से वायु, पित्त और कफ़ साम्य तथा शरीर स्वस्थ दीर्घजीवी होता है।

शरीर की स्वस्थता

प्रातः काल शिर स्थित श्वेत कमल में श्वेत वर्ण गुरुदेव और रक्त वर्ण उनकी शक्ति का ध्यान करने से शरीर स्वस्थ रहता है तथा विष्णु, शिव व गुरु और उनकी शक्ति व श्वेत, रक्त और श्याम वर्ण का ध्यान करने से आशातीत लाभ होता है। इसकी अवश्य परीक्षा कीजिए।

शरीर पुष्ट व रक्त शुद्ध

प्रतिदिन एक तोला घी में दस काली मिर्चे तलकर घी को पीने से शरीर पुष्ट व रक्त शुद्ध होता है।

बुखार

सिन्दूरवार की जड़ रोगी के हाथ में बाँध देने से सब प्रकार के बुखार जाते रहते हैं।

एकतरा

श्वेत अपराजिता अथवा पलाश के कुछ पत्तों को हाथ से मलकर कपड़े में एक पोटली बनाकर जिस दिन पारी हो उस दिन सबेरे ही उसे सूँघने से एकतरा चला जाएगा।

कफ़ाश्रित वायु व श्लेष्मा

प्रात: काल निद्रा त्याग व भोजनोपरान्त दोनों समय हाथ के अँगुष्ठ के निचले भाग से दो तीन बार कपाल घिसने से कफ़ाश्रित वायु व श्लेष्मा दोष नष्ट होते हैं। इसे कपालमाथी कहते हैं।

आधा सीसी

सिर में जिस तरफ़ दर्द होता हो उसी तरफ़ की कहुनी में ज़ोर से रस्सी बाँध देने से आराम हो जाएगा।

सिर दर्द

सुबह उठते ही नाक से ठंड़ा पानी पीने से मस्तक ठंडा रहेगा, सिर भारी नहीं होगा न सर्दी लगेगी।

नेत्र रोग

सुबह उठते ही मुँह में खूब पानी भर कर दूसरे पानी से आँखों में बीस बार छींटे मारें। भोजन के बाद हर मर्तबा सात-सात बार कम से कम आँखों में छीटे मारें। जितनी बार मुँह में पानी डाले उतनी ही बार आँखों और मुँह को धोना चाहिए। नहाते वक़्त पैर के अँगूठों के नाख़ूनों में तेल भर देना चाहिए। इन क्रियाए से नेत्र रोग दूर होकर दृष्टि तेज़ होती है आँखें स्निग्ध रहती हैं।

जल

भोजन करने के आधा घंटा पहले जल पीने से पेट और जठर धुलता है व पाचक रस निकलने लगता है जो अन्न को पचाने के काम आता है। भोजन करते समय जल न पीकर कम से कम आधा घन्टे बाद पीना चाहिए क्योंकि अन्न और जल एक हो जाने से पाचक रस कम और देर में निकलता है।

पाचन शक्ति बढ़ाना

सुबह उठकर नाभि के दाहिनी ओर से बायीं ओर आँतों के मालिश करने व उठने के पहले कुछ देर पेट के बल लेटने से पेट की पाचन सम्बन्धी शिकायतें दूर हो जाती हैं।

गर्मी व लू

कड़ी धूप में बाहर जाने पर कानों को बाँध लेने से गर्मी व लू न सतावेगी।

कर्ण रोग

प्रातः व संध्या समय तर्जनी-अँगुली कान में धसाने से कान के रोग नहीं होने पाते व नष्ट हो जाते हैं। इसे कर्णमाथी कहते हैं।

विभिन्न योग

योग का जन्म तथा जन्मदाता

योग के जन्मदाता तथा वक्ता हिरण्यगर्भ जी महाराज थे, जिनके सम्बन्ध में महाभारत (१२/३४२/९६) में लिखा है कि 'यह हिरण्यगर्भ द्युतिमान वही है जिसकी वेद में स्तुति की गई है। इनकी योगी लोग नित्य पूजा करते हैं और संसार में इनको विभु कहते हैं।' श्रीमद्‌भागवत् (५/१९/१३) में भी लिखा है कि 'हे योगेश्वर! यह योग कौशल वही है जिसे भगवान् हिरण्यगर्भ ने कहा था। वायु पुराण (४-७८) में लिखा है कि हिरण्यगर्भ महाराज चतुर्मुख रूप से प्रकट हुए। जिनकी वेदों ने स्तुति की है, जो योगीजनों से पूजित हैं। वेदों में जो विभु, विरंचि, अज, चतुर्मुख, जगदात्मा इत्यादि विशेषणों से उपश्लोकित हुए

हैं। बस इन्हीं की **'महानिति च योगेषु'** है। इसी की टीका करते हुए प्रसिद्ध टीकाकार श्री नीलकंठ जी कहते हैं- **'योगेषु एवं महा-निति प्रथमं कार्यम्'**। अर्थात् हिरण्यगर्भ महाराज की यही 'महान् निति' है। कि आपने वेदों से भी पहले योग विद्या (परा विद्या) का प्रादुर्भाव किया। (ऋ. वेद १०/१२१/(१) में लिखा है। 'हिरण्यगर्भ ही पहले उत्पन्न हुए जो समस्त भूतों के एक पति थे।। उन्होंने इस पृथ्वी और स्वर्गलोक को धारण किया। उन अनिर्वचनीय देव की हम पूजा करते हैं। वेदों के विकास के पहले योग विद्या तरुण हो चुकी थी बल्कि योग विद्या के गर्भ से ही वेद विद्या का जन्म हुआ है, मुण्डकोपनिषद् के प्रारम्भ में ही लिखा है कि **'ॐ ब्रह्मा देवानां प्रथमः संवभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता'**। अर्थात् देवताओं के पहले ब्रह्मा हुए जो विश्व के कर्ता व भुवन के गोप्ता हैं, परन्तु विश्व रचना के लिए उनके पास सामग्री न होने के कारण योगात्मा पूर्ण ब्रह्म का जो उपदेश मिला (श्रीमद्भा. २/९/६) अर्थात् (प्रलयकाल के) एक दिन जिस समय ब्रह्माजी सृष्टि रचने के सम्बन्ध में निमग्न थे उस समय दो अक्षरों वाले जिस शब्द का उच्चारण हुआ उसका पहला अक्षर 'त' व दूसरा 'प' था अर्थात् 'तप'।

योग काल का आरम्भ

चित्त की चंचलता, मन एकाग्रता और बुद्धि की स्थिरता करके जीवात्मा को परमात्मा में मिलाने की जो योग विधि है उसे वेदों द्वारा सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों (अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा) द्वारा प्रकट किया गया। ऋषियों मुनियों ने योग विद्या सीखी। उनसे महर्षि पतञ्जलि ने इसे पढ़कर व उसका अभ्यास करके **'योग दर्शन'** नाम से प्रसिद्ध किया जो सब ग्रन्थों में मान्य माना जाता है। कितने ही भाष्यकारों का मत है कि हिरण्यगर्भ महाराज के हेरण्य गर्भ सूत्रों का योगदर्शन में अनुशासन कर **'योग दर्शन'** का प्रादुर्भाव हुआ है। अतः यह निर्विवाद सिद्ध है कि महर्षि पतञ्जलि के योग दर्शन से

प्राचीन कोई भी इस विषय का दर्शन संसार में नहीं है।

योग क्या है?

युज धातु से योग शब्द सिद्ध होता है। योग के वैसे तो अनेक अर्थ हैं परन्तु मुख्य दो हैं। एक जोड़ना, दूसरा उपाय। अर्थात् योग के द्वारा साधक मन अन्तर्यामी के साथ जोड़ा जाता है। महर्षि पतंजलि के आदेशानुसार चित्त की वृत्तियों को रोक देने को योग कहते हैं। योग वाशिष्ठ के अनुसार योग के अर्थ हैं- संसार सागर से पार होने की युक्ति। योगदर्शन के भाष्यकार महर्षि व्यास जी ने **'योगस्समाधि'** कहकर योग को समाधि बतलाया है। जिसका भाव यह है कि जीवात्मा इस उपलब्ध समाधि द्वारा सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार व एकीकरण करना ही योग है। चित्त की एकाग्रता द्वारा अन्तःकरण और शरीर से पृथक हुए आत्मा का साक्षात्कार करना योग का लक्षण है। अद्वैत सिद्धांतानुसार उस ज्ञान या विज्ञान जिससे जीवात्मा को परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान व सम्मिलन हो उसे योग कहते हैं।

योग का उद्देश्य

महाराज वेदव्यास जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि योग का उद्देश्य **'कायाकल्प'** अर्थात् केवल शरीर को दृढ़ बनाना ही नहीं है बल्कि उसका मुख्य ध्येय परमात्मा में चित्त को स्थिर करना अर्थात भगवत् परायण होना है। जो लोग शरीर को दृढ़, उसका कल्प और विभूतियों अर्थात् सिद्धियाँ प्राप्त करने के लिए योगाभ्यास करते हैं उनका प्रयास एक न एक दिन विफल होगा क्योंकि यह शरीर नाशवान् है। श्रीमद् भागवत् के अनुसार योग साधन के सम्बन्ध में यही सिद्धांत निश्चित होता है कि ब्रह्म प्राप्ति के लिए योग मार्ग के सिवाय और कोई दूसरा उपाय ही नहीं है। क्योंकि साधन के द्वारा मनुष्य अपने असली स्वरूप सच्चिदानन्द का अनुभव कर लेता है। योग का ध्येय

है वह तुरीय नाम परम आत्मा में स्थित जिसमें जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति किसी का भी अनुभव न हो न इनके आगामी अनुभव का बीज ही रहे व सदा परमानन्द का निरन्तर अनुभव होता रहे।

जीवन और प्राणों की वृद्धि योगाभ्यास से ही की जा सकती है आहार विहार में यथा योग संयम करने से व स्वास्थ्य के साधारण नियमों का पालन करने से हमारी जीवन शक्ति बढ़ती है। इन क्रियाओं को सीखने के लिए गुरु की आवश्यकता अनिवार्य है।

योग का अर्थ

योग का यथार्थ अर्थ व अभिप्राय है 'श्री भगवान् के साथ युक्त हो जाना', भगवान् को प्राप्त कर लेना या भगवत् रूप हो जाना। यही जीव का परम ध्येय है। जब तक जीव इस स्थिति में नहीं पहुँच जाता है तब तक न तो उसका आवागमन बंद होगा और न किसी पूर्ण नित्य, सनातन, आनन्द रूप तत्त्व के संयोग की अतृप्ति और प्रच्छन्न आकांक्षा की पूर्ति और न तृप्ति होगी। इस पूर्ण के संयोग का नाम ही योग है। इस पूर्ण की प्राप्ति का प्रयत्न जिस क्रिया के साथ जुड़ता है वही योग बन जाता है। जैसे कर्म योग, ज्ञान-योग, राज-योग, लय-योग इत्यादि-इत्यादि, परन्तु यह याद रखो कि जो कर्म ज्ञान, भक्ति, ध्यान, सांख्य, मंत्र, लय या हठ की क्रिया भगवन्मुखी नही है वह योग नहीं है कुयोग है और उससे प्रायः पतन ही होता है।

इसके सिवाय यह भी ध्यान रहे कि जिन योगों में मन का संयोग होने पर भी (जैसे नेति, धौति, षटकर्म, बंध, मुद्रा, प्राणायाम, कुंडलिनी जागरण आदि) शारीरिक क्रियाओं की प्रधानता है अथवा मंत्र तन्त्रादि, से देव विशेष की पूजा पद्धति मुख्य है उनमें अज्ञान, अविधि, अव्यवस्था, अनियमितता होने से लाभ की अपेक्षा हानि होती है। भाँति-भाँति के कष्ट साध्य व असाध्य, शारीरिक व मानसिक रोग हो जाते हैं। अतएव ऐसे योगों की अपेक्षा भक्तियोग निष्काम कर्मयोग,

ज्ञान योग आदि उत्तम, अपेक्षाकृत और बहुत ही निरापद हैं। इनमें भी अनुभव शून्य लोगों की देखादेखी अविधि पूर्वक करने से हानि हो सकती है। अतएव अनुभवी गुरु की सभी योगों में अत्यंत आवश्यकता है।

सर्वचिन्ता परित्यागी निश्चिन्तो योग उच्यते

(योगशास्त्र)

अर्थात् जिस समय मनुष्य सब चिन्ताओं का परित्याग कर देता है, उस समय उसके मन की उस लयावस्था को योग कहते हैं। इसी सम्बन्ध में श्री पतंजलि जी ने अपने 'पातंजलि समाधिपाद २' में कहा है कि --

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः

अर्थात् 'चित्त की सभी वृत्तियों को रोकने का नाम योग है। कामना और वासना से लिप्त चित्त को वृत्ति कहा है। इस वृत्ति का प्रवाह जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति- इन तीनों अवस्थाओं में मनुष्य के हृदय पर प्रवाहित होता रहता है। चित्त सर्वदा ही अपनी स्वाभाविक अवस्था को पुनः प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करता रहता है, किन्तु इन्द्रियाँ उसे बाहर आकर्षित कर लेती हैं। उसको रोकना एवं उसकी बाहर निकलने की प्रवृत्ति को निवृत्त करके उसे फिर पीछे घुमाकर चिद्धन पुरुष के पास पहुँचने वाले पथ में ले जाने का नाम ही योग है। हम अपने हृदयस्थ चैतन्यघन पुरुष को क्यों नहीं देख पाते ? कारण यही है कि हमारा चित्त हिंसा आदि पापों से मैला और आशा आदि वृत्तियों से आन्दोलित हो रहा है। यम, नियम आदि की साधना से चित्त का मैल छुड़ाकर चित्त वृत्ति का नाम योग है।

पतंजलि योग का आदर्श है, वह चरम कोटि का मार्ग जिसमें मन और शरीर के समस्त व्यापार सर्वथा बन्द हो जाते हैं। योगी को इस प्रकार की

स्थिति में रहने का अभ्यास डालना चाहिए जिसमें वह बिना अन्न जल के एक दो नहीं बल्कि महीनों और वर्षों रह सके और सब प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक व्यापारों को बन्द रखे। अतएव समस्त कामनाओं और रोगों को निर्मूल करने का सतत प्रयत्न करना चाहिए व मन का कड़ा पहरा रखना चाहिए कि उसके अन्दर कोई नये ऐन्द्रिक विषय, प्रत्यक्षगोचर पदार्थ, कामनाऐं अथवा विचार अप्रत्यक्ष व प्रत्यक्ष रूप से न आने पावें। साथ ही चित्त को सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों पर एकाग्र व स्थिर करने का अभ्यास करना चाहिए, ऐसा करने से सूक्ष्म मन क्रमशः क्षीण होकर सर्वथा नष्ट हो जाएगा। इस प्रकार एक ओर तो मन को नये ऐन्द्रिक विषय, संकल्प, कामना आदि के रूप में भोजन न देकर सुखाना चाहिए और दूसरी ओर उसे सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों पर एकाग्र स्थिर करने के अभ्यास द्वारा अर्थात् धीरे-धीरे किन्तु दृढ़ता के साथ मन से सारे संकल्पों को निकाल बाहर करने से अल्प विषयक बनाना चाहिए। ऐसा करने से मन बिल्कुल खाली हो जाएगा और सूक्ष्म मन जिसमें पहले के ग्रहण किए हुए संस्कार जमा रहते हैं, सर्वथा नष्ट हो जाएँगे। इस प्रकार महर्षि पतंजलि द्वारा बतलाया हुआ योग का ध्येय प्राप्त हो जाता है।

पतंजलि योगदर्शन जो योग शास्त्रों में प्रधान ग्रन्थ माना जाता है उसके मतानुसार योग शब्द की परिभाषा जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है। **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'** अर्थात् चित्त वृत्ति के निरोध का नाम ही योग है अतएव चित्त के निरोध को जानने के लिये चित्त की पाँच अवस्थाओं का जानना आवश्यक है, क्यों कि योग के शास्त्रकार चित्त की निरुद्धावस्था को ही योग मानते हैं। योग भूमि में अन्य अवस्थाओं को अंगीकार नहीं किया गया है परन्तु योग साधन को जो चतुर्थ अवस्था अर्थात् एकाग्र अवस्था है केवल उसी को लिया गया है शेष साधन के योग्य न होने के कारण छोड़ दी गई हैं।

चित्तवृत्ति की पाँच अवस्थायें

(१) मूढ़ (२) क्षिप्त (३) विक्षिप्त (४) एकाग्र और (५)निरुद्ध।

(१) मूढ़ अवस्था का स्वरूप

तमोगुण प्रधान, पूर्वा पर, हानि लाभ के विचार से रहित, अपने तुच्छ भोग के लिए पर पीड़न और हिंसापूर्ण काम, क्रोध आदि दुराचार से पूर्णवृत्ति । यह स्वरूप नीच पापी पुरुषों का होता है।

(२) क्षिप्त अवस्था

रज और तम प्रधान केवल स्वार्थ भोग की वृत्ति जैसी साधारण भोगी संसारी पुरुषों की होती है।

(३) विक्षिप्त अवस्था

रजोगुण प्रधान संसारी पुरुषों का चित्त कभी विषयों की तरफ़ दौड़ता है तो कभी परमार्थ की तरफ़, चित्त अव्यवस्थित और चंचल रहता है। यह अवस्था जिज्ञासुओं की होती है।

(४) एकाग्र अवस्था

सत्वगुण प्रधान साधक पुरुषों की होती है, जिनकी चंचलता नष्ट हो गई है व साधन में चित्त लगा हुआ है।

(५) निरुद्ध अवस्था

सम्पूर्ण चित्त वृत्तियों का पूर्णतया शांत हो जाना, इस प्रकार की निरुद्धावस्था को 'योग' कहते हैं।

भगवान् कृष्ण ने गीता में भी कहा है कि 'सर्व संकल्पों का त्यागी पुरुष ही योगारूढ़ कहा जाता है, और चित्तवृत्ति के निरोध के बिना योग की प्राप्ति नहीं हो सकती'। मन को वश में न करने वाले पुरुष द्वारा योग दुष्प्राप्य है और स्वाधीन मन वाले प्रयत्नशील पुरुष द्वारा साध न करने से प्राप्त होना सहज है, यह मेरा मत है।

इसी हेतु के कारण, योग का अभिप्राय चित्तवृत्तियों का निरोध कहा है।

महर्षि व्यास जी ने अपने पुत्र श्री शुकदेव जी को योग के सम्बन्ध में उपदेश देते हुए कहा था, बेटा! सुनो-इन्द्रिय, मन और बुद्धि की वृत्तियों को रोककर व्यापक आत्मा के साथ उनकी एकता स्थापित करना ही योगशास्त्र के मत में उत्तम ज्ञान है। इसे प्राप्त करने के लिए योगी को शम, दम आदि साधनों से सम्पन्न होना चाहिए। अध्यात्म शास्त्र का चिन्तन करें, आत्मा में ही अनुराग रखें, शास्त्रों का तत्त्व जाने और शास्त्रविहित कर्मों का निष्काम भाव से अनुष्ठान करें। काम, क्रोध, लोभ, भय और स्वप्न यह योग के पाँच दोष है। इनका विच्छेद करके, अपने को अधिकारी बनावें व गुरु के मुख से ज्ञान का उपदेश ग्रहण करें।

उक्त पाँचों दोषों के जीतने का उपाय यह है कि मन को वश में करने से क्रोध को और संकल्प को त्याग करने से काम को जीता जा सकता है। सत्त्वगुण का आश्रय लेने से निद्रा पर विजय प्राप्त हो सकती है। धैर्य का सहारा लेकर विषयभोग और भोजन की चिन्ता दूर करना चाहिये। नेत्रों की सहायता से हाथ पैरों की, मन के द्वारा नेत्र और कानों की तथा कर्म के द्वारा मन और वाणी की रक्षा करना चाहिए। साधना के द्वारा भय का और विद्वानों की सेवा से दम्भ का परित्याग करना चाहिए।

साधक मन और इन्द्रियों को एकाग्र करके रात के पहले और पिछले पहर में ध्यानस्थ होकर मन को आत्मा में लगावे। जैसे पानी के बर्तन में एक जगह भी छेद हो जाने पर पानी बह जाता है, उसी प्रकार यदि पाँचों इन्द्रियों में से एक भी विषय की ओर प्रवृत्ति हुई तो साधक का सारा साधन व ज्ञान लुप्त हो जाता है। इसलिए पहले अपने मन को वश में करें उसके पश्चात् कान, आँख, जिह्वा व नासिका आदि इन्द्रियों का निग्रह करें। पाँचों इन्द्रियों को मन में स्थापित करके इन्द्रियों सहित मन को बुद्धि में लीन करें, इससे इन्द्रियों की मलिनता दूर होकर उनमें निर्मलता आ जाती है। साधक अपने अन्तःकरण में

धूम्र रहित अग्नि, दीप्तमान सूर्य तथा आकाश में चमकती हुई बिजली के समान आत्मा का दर्शन करता है। वह सब आत्मा में और सब में आत्मा को स्थित देखता है। जो योगी एकांत में बैठकर इन तीक्ष्ण नियमों का पालन करते हुए इस प्रकार योगाभ्यास करता है, वह थोड़े ही समय में अक्षर ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

योग साधन में अग्रसर होने पर मोह, भ्रम और आवर्त आदि विघ्न प्राप्त होते हैं, दिव्य सुगन्ध आती है, दिव्य रूपों के दर्शन होते हैं, नाना प्रकार के अद्‌भुत रस और स्पर्श का अनुभव होता है, इच्छानुकूल सर्दी और गर्मी अनुभव होती है, हवा की तरह आकाश में चलने-फिरने में शक्ति आ जाती है, प्रतिभा बढ़ जाती है और दिव्य पदार्थ अपने आप आकर उपस्थित होने लगते हैं, इन सब सिद्धियों को पाकर भी योगी उनकी उपेक्षा कर दे और मन को उनकी ओर से लौटाकर आत्मा में ही एकाग्र करे, नियम के साथ रहे और पहाड़ की चोटी, शून्य ग्रह या देव मन्दिर अथवा वृक्षों के आसपास बैठकर तीन समय प्रातःकाल, रात के पहले अथवा पिछले पहर में योगाभ्यास करे।

धन चाहने वाले मनुष्य को जिस तरह उसको प्राप्त करने की सदा चिन्ता लगी रहती है, उसी तरह योग के साधक इन्द्रियों का संयम करके हृदय-कमल में स्थित आत्मा का एकाग्रभाव से चिन्तन करे। मन की चंचलता को रोककर कभी उद्विग्न न हो और साधना से कभी विचलित न हो। साधक मन,वाणी या क्रिया से भी कहीं आसक्त न हो, सबकी ओर से उपेक्षा का भाव रखे। प्रशंसा व निन्दा, हानि लाभ में समान रहे। सब प्राणियों को समान समझे। वायु के समान सर्वत्र विचरता हुआ भी असंग रहे, जिसने अपने मन को वश में कर लिया है, वही अजन्मा, पुरातन, अजर, अमर, सनातन, नित्य युक्त अणु से भी अणु और महान् से भी महान् आत्मा का दर्शन कर सकता है।

इस प्रकार स्वस्थ चित्त और समदर्शी रहकर छः माह तक नित्य योगाभ्यास करने वाले साधक को ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है।

योगाभ्यास करने का संकल्प के समय सूर्य, चन्द्र आकाश, पृथ्वी, चराचर आदि सम्पूर्ण जगत् को साक्षी बना योग साधन का व्रत लेना चाहिए और उसके उपरांत अभ्यास आरम्भ करना चाहिए।

जो पुरुष द्रव्य के लिये अंधा, स्त्री के लिये निसंग व निंदा के लिए बहरा व मूक है वही योग का सच्चा साधक है।

सच्चा योगी सभी वस्तुओं में सर्वत्र आत्मा को और आत्मा में ही सब वस्तुओं को देखता है। इस प्रकार वह समस्त जगत् के नाम और मूल में 'एकाग्रता' परमतत्त्व को जान लेता है और इसी कारण वह समस्त अज्ञान से मुक्त हो जाता है।

प्राचीन भारत में जितने सम्प्रदाय थे उनमें जो लोग तप, साधन, स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान रूप क्रिया योग के द्वारा आत्म साक्षात्कार करते थे, उन्हीं लोगों का सम्प्रदाय योग सम्प्रदाय कहलाता था। इस योग के आदि वक्ता भगवान् हिरण्यगर्भ, ब्रह्माजी, शिवजी हैं। पतंजलि मुनि इस योग दर्शन के रचयिता हैं। समस्त दर्शन शास्त्रों में योग दर्शन प्राचीनतम ग्रन्थ है। इस योग के द्वारा समस्त तत्त्वों का ज्ञान जिस प्रकार सूक्ष्मतम रूप में स्फुटित होता है उसी प्रकार अन्य किसी साधना द्वारा सम्भव नहीं है, क्योंकि चित्त का संयम करने से जो एकाग्रता प्राप्त होती है, उस एकाग्रता का अभाव होने पर हम जगत् के किसी पदार्थ या विषय का भी ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। आत्म साक्षात्कार ही साधना का मुख्य उद्देश्य है, क्योंकि उसके अतिरिक्त दुःख निवृत्ति का कोई दूसरा सुगम उपाय ही नहीं है। योग के द्वारा आत्मदर्शन करना ही परम धर्म है।

हमारे समस्त दुःखों का मूल चित्त की अस्थिरता है। चित्त के स्थिर होने पर दुःख की निवृत्ति हो जाती है अन्यथा लाख पढ़े, विचार करें, श्रवण व मनन आदि करें उससे कुछ भी नहीं होता। इसी कारण समस्त देशों और सम्प्रदायों की साधन प्रणालियों में न्यूनाधिक मात्रा

में चित्त को स्थिर करने का उपदेश दिया गया है। वास्तव में चित्त को स्थिर किए बिना दु:ख से छुटकारा अथवा आत्म साक्षात्कार व मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती। इसीलिए चित्त के स्थिर करने का जो परम साधन समाधि है उसके बिना त्रिताप ज्वाला की पूर्ण शांति नहीं होती। इन्द्रिय जनित हमारा जो ज्ञान है वह शुद्ध ज्ञान नहीं है क्योंकि अस्थिर चित्त में जो ज्ञान प्राप्त है उससे आत्मदर्शन नहीं होता। समाधि जनित ज्ञान के बिना कोई आत्मज्ञान अथवा आत्म साक्षात्कार नहीं हो सकता कठोपनिषद् में कहा है कि :-

नाविरतों दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहिता।
नाशान्त मानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥

अर्थात् 'जो व्यक्ति पाप से निवृत्त नहीं हुआ है, अथवा जो इन्द्रिय परायण है एवं जो असमाहित अर्थात् एकाग्रतारहित, चंचल चित्त है, वह कभी आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकता, अथवा जो अशान्त मन वाला अर्थात् फल कामना में आसक्त चित्तवाला है, वह केवल विचार के द्वारा आत्मा को नहीं प्राप्त कर सकता।

उपनिषद् में आत्मा की प्राप्ति के विषय में कहा है।

एषः सर्वेषु भूतेषु गूढ़ात्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥

अर्थात् 'समस्त भूतों के अन्दर आत्म चैतन्य गुप्त रूप से निहित है, वह सबके सामने प्रकाशित नहीं होता, किन्तु स्थिर ध्यान सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा सूक्ष्म दर्शियों को यह आत्मा दिखाई देता है व उनके सामने प्रकट होता है।

आत्मदर्शन के लिए बुद्धि को अत्यंत सूक्ष्म करना पड़ता है। विषय व व्यापार में संलग्न चित्त अत्यंत स्थूल व चंचल होता है। स्थूल चित्त में सूक्ष्मतम आत्मा का दर्शन होना दुर्लभ है। इसलिए चित्त को इतना

स्थिर करना पड़ता है कि उसकी सारी चंचलता नष्ट हो जाय। इस अवस्था का वर्णन उपनिषद् में इस प्रकार लिखा है कि :-

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमागतिम्॥
ता योगपिभिमन्यन्ते स्थिरमिन्द्रियधारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगोहि प्रभवाप्ययो॥

अर्थात् जिस अवस्था में पंच ज्ञानेन्द्रिय मन के साथ स्थित रही हैं अर्थात् इन्द्रियाँ वहिर्विषयों को त्यागकर अन्तर्मुखी हो जाती हैं और बुद्धि भी चंचल नहीं रहती अर्थात् विषय चिन्तन का उसमें स्पर्श भी नहीं होता, योगी उस इन्द्रिय मनोबुद्धि की स्थिरता को आत्मज्ञान प्राप्त करने की श्रेष्ठ साधना कहते हैं। उसी स्थिर इन्द्रिय धारणा को अर्थात् स्थिरता को योग कहते हैं।

जिस वस्तु के प्रति चित्त का आकर्षण होता है उसी वस्तु की ओर चित्त की स्वाभाविक गति होती है। चित्त जब बार-बार उस वस्तु का भोग करता है तब उससे संस्कार उत्पन्न होते हैं। संस्कार से वासना का उदय होता है और वासना बढ़ते-बढ़ते संसार की रचना कर डालती है। यदि उन सब वासनाओं व भोगादि के परिणाम तथा निस्सारता का विचार किया जाय तो उनके पाने की अभिलाषा मन में रहती है तब तक उस चित्त को मलयुक्त कहते हैं और मलयुक्त चित्त भगवत् चिन्तन का बाधक होता है, इसीलिए साधकों ने सभी काल में भगवत् भावना के विरोधी विषय, वासना व भोगादि को हेय बतलाते हुए पूर्ण तिरस्कार करने के लिए विशेष आग्रह किया है।

बहुत कुछ सुनने समझने व अनुभव करने के उपरांत भी हमारे अन्दर वैराग्य बुद्धि का उदय क्यों नहीं होता। वैराग्य के उदय होने पर

विषय वासनाओं की ओर चित्त आकर्षित नहीं होता और मन सहज ही स्थिर होकर आत्मानुसंधान में प्रवृत्त हो जाता है। वैराग्य अनायास ही उत्पन्न नहीं होता। अन्तःकरण के अन्दर जो अंश चित्त के नाम से प्रसिद्ध है, उसमें जीव के जन्म जन्मातर के संस्कार एकत्रित रहते हैं, अतएव जब तक यह चित्त क्षीण नहीं हो जाता उस वक्त तक अनादि संसार वासना नष्ट नहीं होती। सैकड़ों जन्मों के संस्कारों से चित्त संलग्न रहता है, इसलिए चित्त को जीतना सरल नहीं है। चित्त के मूल दो कारण है :-

हेतुद्वयं तु चित्तस्य वासना व समीरणः।

अर्थात् 'चित्त के अन्दर वृत्ति प्रवाह के केवल दो हेतु हैं। एक तो वासना अर्थात् भावनामय संस्कार और दूसरा है 'प्राण प्रवाह'। प्राण के अन्दर वासना का बीज और संस्कार ग्रन्थित रहते हैं। प्राण के स्पन्दन से मन स्पन्दित होने पर वृत्ति प्रवाह रूप उत्ताल तरंगमाला उठना आरम्भ होती है। इसीलिए प्राण और मन के स्पन्दन का नाश करने की व्यवस्था योगशास्त्र में बार-बार दी गई है निरन्तर नाड़ियों से होकर प्राणधारा जीव शरीर में प्रवाहित हो रही है वही श्वास के रूप में स्थूलता दिखाई देती है। यह श्वास ही जीव का जीवन है, परन्तु श्वास की इस प्रकार की गति को योगी लोग संसार वासना का मूल कारण समझते हैं। इसीलिए योगियों के द्वारा श्वास के निरोध की चेष्टा की गई है। क्योंकि---

पवनो लीयते यत्र मनस्तत्र विलीयते।

अर्थात् 'प्राणवायु स्थिर होने पर मन स्थिर हो जाता है,' और मन स्थिर होने पर प्राण भी अवश्य ही स्थिर हो जाता है। इसीलिए योगियों के एक सम्प्रदाय ने प्राण का, दूसरे ने मन का निरोध करने की ओर विशेष ध्यान दिया है। इन्द्रिय विकारादि दोष समूह प्राण निग्रह के द्वारा

दूर होते हैं यह बात मनु महाराज ने भी कही है।

दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तपेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।

अर्थात् 'अग्नि के द्वारा उत्पन्न होने पर धातु के मल जिस प्रकार जल जाते है उसी प्रकार प्राणवायु के निग्रह के द्वारा इन्द्रियों के समस्त दोष दग्ध हो जाते हैं'।

योगदर्शन में लिखा है, महामोहमय इन्द्रजाल के द्वारा जब प्रकाशशील सत्व ढक जाता है तब अन्य गुण कार्यशील होकर अकार्य में नियुक्त करते हैं। उस प्रकाश को ढकने वाले कर्म प्राणायाम के द्वारा नष्ट होते हैं। जब तक रज-तम के कार्य होते रहते हैं तब तक बुद्धि का विकार नष्ट नहीं होता। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेशादि पंच क्लेश के कारण स्त्रोत को उत्पन्न कर कर्म विपाक की सृष्टि करते हैं। इसीलिए समाधि साधन द्वारा बुद्धि स्थिर करने और सब 'क्लेश' क्षीण करने के लिये योगी लोग क्रियायोग का अनुष्ठान करते है। क्योंकि जब तक सब 'क्लेश' क्षीण नहीं हो जाते तब तक वे अप्रसवधर्मा नहीं होते। 'क्लेश' की प्रबल अवस्था रहने पर अशुद्धि दूर नहीं होती, परन्तु क्रियायोग (प्राणायामादि क्रिया) के द्वारा अशुद्धि दूर होने पर सब क्लेश भी दूर हो जाते हैं। सब क्लेशों के क्षीण हुए बिना अशुद्ध वृत्तियों को नष्ट करना सम्भव नहीं। अतएव पहले सब 'क्लेश' क्षीण करने की आवश्यकता है। 'क्लेश' समूह के क्षीण हो जाने पर 'ऋतम्भरा' प्रज्ञा का उदय होता है और क्लेश समूह की फिर वृत्ति उत्पन्न नहीं होती।

साधारणतः हमारा चित्त जब संसारमुखी होता है तब श्वास भी बाहर की ओर विचरण करती है। इस श्वास की गति की ओर योगियों ने ध्यान दिया है। जब श्वास हमारी बायीं अथवा दाहिनी

नासिका से चलती है तब संसार वासना स्पन्दित होती है। सब जीवों का श्वास प्रवाह इन्हीं दो नासापुटों से प्रवाहित होता है, अतएव संसार वासना किसी तरह निवृत्त नहीं होती। इसी कारण योगी लोग यह चेष्टा करते है कि श्वास बाहर की ओर गमनागमन न करे। बाहर की ओर गमनागमन का पथ इड़ा ओर पिंगला नाड़ी है। इसीलिए योगी लोग इड़ा और पिंगला नाड़ियों का द्वार बन्द करके सुषुम्ना मार्ग से प्राण को चलाने की चेष्टा करते है, अन्यथा मनुष्य के अन्दर वास्तविक ज्ञान का उदय होना सम्भव नहीं। हमें समस्त ज्ञान नाड़ी पथ से होता है। ब्रह्म ज्ञान भी नाड़ी पथ से ही होता है। वह बह्म ज्ञान प्रवाहिका नाड़ी सुषुम्ना है। उसी से प्राण को चलाना होगा। योगशास्त्र मे कहा है।

विधिवत्प्राणसंभामैर्नाडी चक्रे विशोधिते।
सुषुम्नावदनं भित्वा सुखाद्विशति मारुतः॥
मारुते मध्यसंचारे मनः स्थैर्यं प्रजायते।
यो मनःसुस्थिरी भावः सैवावस्था मनोन्मनी॥

अर्थात् 'विधिवत् प्राण संयम के द्वारा नाड़ी चक्र के विशुद्ध होने पर सुषुम्ना का मुख खुल जाता है और उसके अन्दर प्राण वायु सहज ही प्रवेश कर जाती है। मध्य नाड़ी अर्थात् सुषुम्ना के अन्दर प्राण वायु संचालित होने पर मन को जो स्थिर भाव प्राप्त होता है उसी स्थिरावस्था का नाम 'उन्मनी' अवस्था है। इस उन्मनी अवस्था को प्राप्त योगी देवताओं को भी पूजनीय होते हैं। इस योगाभ्यास के द्वारा काल को भी जीता जा सकता है। बोधसार ग्रन्थ में लिखा है कि:-

गोरक्षचर्पटिप्राया हठयोगः प्रसादतः।
वंचयित्वा कालदण्डं ब्रह्माण्डेविचरन्ति हि॥

अर्थात् 'गोरक्षनाथ, चर्पट प्रभूति योगी हठयोग के अनुष्ठान द्वारा सिद्धि प्राप्त कर, मृत्यु को जीतकर ब्रह्माण्ड में विचरण करते हैं।

कितने ही लोग हठयोग से घृणा और राजयोग का आदर करते हैं, परन्तु योगशास्त्र में कहा है कि हठयोग के बिना राजयोग और राजयोग के बिना हठयोग किसी को भी वास्तविक सिद्धि नहीं दे सकता। वास्तव में सब योगों के अन्दर एक प्रकार की एकता और परस्पर सापेक्षता है। जो इस बात को नहीं जानता वह योगी नहीं है। बोधसार ग्रन्थ मे लिखा है कि :--

षये मन्त्रे हठे राज्ञि भक्तौ साङ्ख्ये हरेर्यते।
मतैक्यमस्ति सर्वेषां ये बुधा मोक्षमार्गगाः॥

'अपयोग, मंत्रयोग, हठयोग, राजयोग, सांख्ययोग और भक्तियोग, इन सब योगों के अन्दर मतैक्य है। जो मोक्षमार्गगामी है, उन सब बुधों ने देखा है कि सबका उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति है।'

हठिनामाधिकस्त्वेकः प्राणायाम परिश्रमः।

'हठयोग का मुख्य साधन है श्रमसाध्य प्राणायाम। यह अन्यान्य योगियों की साधना से अधिक है। प्राणायाम सिद्ध हो जाने पर चित्तस्थिर हो जाता है, यह कौन नहीं स्वीकार करेगा?

प्राण की क्रिया है निःश्वास और अपान की क्रिया है प्रश्वास, इन दोनों क्रियाओं के निरोध को कुम्भक कहते हैं। इस प्रकार निगृहीत प्राण वायु में समस्त इन्द्रियाँ लीन हो जाती हैं। जो विधिवत् प्राणायाम का अभ्यास करते हैं उनके श्वास की उर्ध्व व अधःगति का शेष हो जाता है। उस समय प्राण सुषुम्ना मध्य से होकर मस्तक में जाकर स्थित हो जाता है। प्राणायाम के द्वारा जब सुषम्ना में प्राण की गति होती है तब 'सहजावस्था' प्राप्त होती है और उसके बाद निर्विकार स्वरूप में स्थित हो जाती है इसीलिए योगियों ने चित्त की स्थिरता के लिए प्राणायाम को सर्वश्रेष्ठ बतलाया है।

गुरु गोरक्षनाथ जी का कहना है कि जब तक प्राण वायु सुषुम्ना में प्रवेश नहीं करता उस वक्त तक मौखिक ज्ञान की बात कहना दम्भ है। सुषुम्ना के अन्दर प्राण वेग संचारित होने पर मन शून्य के अन्दर प्रविष्ट हो जाता है अर्थात् निरालम्ब होकर स्थिर हो जाता है, उस समय योगी के सब कर्म निर्मूल हो जाते हैं। यद्यपि सुषुम्ना के अन्दर प्राण की स्थिति नित्य है, तथापि इड़ा पिंगला के अन्दर जो प्राण का प्रवाह चल रहा है, वह बन्द हुए बिना उसका अनुभव नहीं होता, इसीलिए इड़ा पिंगला के प्रवाह का अवरोध करने की आवश्यकता है। गुरु गोरक्षनाथ ने कहा है कि:-

सुषुम्नायां सदैवायं बहेत् प्राण समीरणः।

एतद्विज्ञान मात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

अर्थात् 'यह प्राणवासु सुषुम्ना नाड़ी में सर्वदा ही प्रवाहित होता है। जो योगी इसे जान सकते हैं वे समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं।

प्राण की चंचलता के कारण ही जीव संसार चक्र में भ्रमण करता है, अतएव सब प्रकार से इस प्राणों को ही स्थिर करना आवश्यक है। प्राण स्थिर हो जाने पर कामादि रिपुगण फिर नाड़ियों को दूषित नहीं कर पाते। पहले बतलाया जा चुका है कि हमें समस्त ज्ञान नाड़ियों द्वारा ही होता है अर्थात् मन में कोई विचार (अच्छा या बुरा) आने के पहले नाड़ी प्रवाहिका के अन्दर कम्पन होता है और वह वही संकल्प विकल्प आदि के रूप में ऊपर उठता है। उस अवस्था को ही मन कहते हैं। अतएव नाड़ी का शोधन अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिए गुरु गोरक्षनाथ जी कहते हैं कि:-

तेन संसारचक्रेऽस्मिन् भ्रमतीत्येव सर्वदा।
तदर्थं ये प्रवर्तन्ते योगिनः प्राण धारणे॥
तत एवाखिला नाड़ी विरुद्धा चाष्टवेष्टनम् ।
इयं कुण्डलिनी शक्ति रन्ध्रं त्यजति नान्यथा॥

अर्थात् 'प्राणवायु के कारण ही जीव समूह इस संसार चक्र में निरन्तर भ्रमण करता है। योगी लोग दीर्घ जीवन प्राप्त करने के लिए इस वायु को स्थिर करते हैं। इसके अभ्यास से नाड़ियाँ पुन: कामादि अष्ट दोष से दूषित नहीं हो पाती। नाड़ी विशुद्ध हो जाने पर कुण्डलिनी शक्ति अपने रंध्र को छोड़ देती है, अन्यथा नहीं छोड़ती।' वह रन्ध्रमूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक विद्यमान है, योगसाधन द्वारा कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्ना विवर से होकर जब ब्रह्मरन्ध्र में स्थित होती है उस वक़्त शिवशक्ति संयोग रूप परम योग प्राप्त होता है।

मूलाधार से सहस्रार पर्यन्त छ:पद्म हैं। इनमें से प्रत्येक के ध्यान से अतुल फल प्राप्त होता है। इन पद्मों का वर्णन अन्यत्र दिया गया है। केवल आज्ञा चक्र के ही ध्यान से योगी के समस्त कर्मबन्धन नष्ट हो सकते हैं। योग शास्त्र में कहा हैं।

यक्षराक्षसगन्धर्वा अप्सरोगण किन्नरा:।

सेवन्ते चरणं तस्य सर्वे तस्य वशानुगा:।।

अर्थात् जो इस आज्ञाचक्र का ध्यान करता है, उस साधक के चरण युगल की यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, अप्सरा और किन्नर अनवरत सेवा करते हैं और वे सब उस साधक के वश में रहते हैं।

महर्षि वशिष्ठ जी ने योग साधन विधि के सम्बन्ध में उपदेश देते हुए, राजा जनक से कहा था कि हे राजन! योग का मुख्य कर्तव्य है ध्यान और यही योगियों का परम बल है। योग के विद्वान् मन की एकाग्रता और प्राणायाम यह ध्यान के दो भेद बतलाते है। प्राणायाम भी सगुण और निर्गुण भेद से दो प्रकार का है। मल और मूत्र त्याग व भोजन इन तीन कालों को छोड़कर शेष समय में योगाभ्यास करना चाहिए। मन के द्वारा इन्द्रियों को विषयों से हटाकर शुद्ध भाव से परमात्मा का ध्यान करे। सब प्रकार की आसक्तियों का त्याग कर मिताहरी और जितेन्द्रिय होना चाहिए तथा रात्रि के पहले और पिछले

भाग में मन को आत्मा में एकाग्र करना चाहिए। जब साधक मन के द्वारा सम्पूर्ण इन्द्रियों को और बुद्धि के द्वारा मन को स्थिर करके पत्थर की भाँति अविचल हो जाय, सूखे काठ की भाँति निष्कम्प और पर्वत की भाँति स्थिर रहे तभी वह योगयुक्त कहलाता है। जिस समय उसे सुनने, सूँघने, स्वाद लेने, देखने और स्पर्श करने का ज्ञान नहीं रहता, जब मन में किसी प्रकार का संकल्प नहीं उठता तथा काष्ठ की भाँति स्थित होकर वह किसी भी वस्तु का भान या सुधबुध नहीं रखता, उसी दशा में उसे अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त एवं योग युक्त कहते हैं। उस अवस्था में वह वायु रहित स्थान में बिना हिले डुले जलने वाले दीपक की भाँति निश्चल भाव से प्रकाशित होता है। लिंग शरीर से उसका कोई सम्पर्क नहीं रहता। ऐसे योग सिद्ध पुरूष के ऊपर नीचे अथवा मध्य में कहीं भी गति नहीं होती। ध्यान निष्ठ योगी को अपने हृदय में धूम रहित अग्नि, किरण मालाओं से मंडित सूर्य और बिजली के समान तेजस्वी आत्मा का साक्षात्कार होता है। धैर्यवान्, मनीषी, वेदवेत्ता और महात्मा ब्राह्मण ही उस अजन्मा एवं अमृत स्वरूप ब्रह्म का दर्शन कर पाते हैं। यही योगियों का योग है। इसके सिवा योग का और भला क्या लक्षण हो सकता है। इस प्रकार साधना करने वाले योगी सबके दृष्टा, अजर, अमर परमात्मा के दर्शन करते हैं ।

योग के मुख्य दो मार्ग

वेद, उपनिषद्, पुराण व धर्मशास्त्रों के अनुसार साधना जगत् में साधक को मुक्ति प्रदान करने वाले दो मार्ग हैं। उनमें एक का नाम है पिपीलिका मार्ग व दूसरे का नाम है विहङ्गम् मार्ग। इसमें बालविरक्त आत्मज्ञानी शुकदेवजी द्वारा उपदिष्ट मार्ग को विहङ्गम् मार्ग व वामदेव जी द्वारा उपदिष्ट मार्ग को पिपीलिका मार्ग कहते हैं। दोनों ही मार्गो का अनुसरण करने से मुक्ति प्राप्त हो सकती है, परन्तु विहङ्गम् मार्ग का अनुसरण करने वाला सांख्ययोग समाधि द्वारा अपने हृदय कमल में चिरज्योतिष्मान् स्वरूप को जानकर ब्रह्मानंद, परमानंद परमपद मोक्ष

साम्राज्य को प्राप्त करता है और वामदेव मार्ग का अनुगामी यम, नियम, आसनादि, अष्टांग योग का अभ्यास कर अणिमादि अष्ट सिद्धियों को प्राप्त करता हुआ कभी ऊर्ध्वगामी, कभी अध:पतित होता हुआ नाना जीव सङ्कुल, मर्त्य धाम को पुन:लौटकर पार्थिव सुखैश्वर्य को प्राप्त होता है, अथवा अणिमादि अष्टसिद्धि रूप फल को बिना प्राप्त किए सत्कुल मे जन्म लेकर, पूर्वाभ्यास द्वारा पुन:योगाभ्यास करते-करते ज्ञानोदय होने पर मुक्ति प्राप्त करने में समर्थ होता है। अर्थात् वामदेव मार्ग का अनुसरण करने वाला जीव उत्थान-पतन में पड़कर अनेक जन्मों के अन्त में परमपद लाभ करने में समर्थ होता है, परन्तु शुकदेव जी के मार्ग द्वारा जीव केवल भक्तिरस में अपने हृदय को महावाक्य विचार द्वारा, सांख्ययोग अथवा अस्त अज्ञात समाधि में स्थित होकर मन को शांतकर, षड्रिपुओं का दमन, इन्द्रियों के मार्ग का अवरोध, मिथ्या आडम्बर को त्याग व निर्लिप्त चित्त होकर अपने हृदय कमल में भक्ति देवी के प्रसाद से मुक्ति लाभ करता है। अतएव दोनों ही मार्ग ब्रह्म प्राप्ति कराने वाले व मंगलजनक होते हुए भी इनमें विशेषता यह है कि शुकदेव मार्ग का अनुसरण करने वाला आत्म कल्याण में निरत होकर शीघ्र ही अभीष्ट लाभ करने में समर्थ होता है, और वामदेव मार्ग का अनुसरण करने वाला जीव एक जन्म में समर्थ नहीं होता बल्कि कई जन्मों में योगाभ्यास व ज्ञान के विकास से अभीष्ट लाभ करने में समर्थ होता है। यद्यपि दोनों मार्ग कल्याणप्रद हैं।

योग साधन

वेद तीन काण्डों में विभक्त है। (१)कर्मकाण्ड (२) उपासना काण्ड और (३) ज्ञानकाण्ड।

वेद के कर्मकाण्ड के अनुसार 'कर्म सुकौशलं' को योग कहते हैं। वेद के उपासना कांड के अनुसार चित्तवृत्ति के निरोध को योग कहते हैं और वेद के ज्ञान काण्ड के अनुसार जीवात्मा और परमात्मा के एकीकरण को योग कहते है ।

कर्मकाण्ड का अन्तिम लक्ष्य निष्काम होकर कर्म करना है । कर्म करते हुए कर्म बन्धन से मुक्त होना ही उसका स्वरूप है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में इसका विस्तृत वर्णन है।

उपासना काण्ड का अन्तिम लक्ष्य अन्तःकरण की वृत्तियों को साधन के द्वारा निरुद्ध कर परमात्मा के स्वरूप का अनुभव करना है। जिस तरह तरंग रहित जलाशय में मनुष्य अपना मुँह देख लेता है, उसी तरह चित्त की वृत्तियों का निरोध होते ही परमात्मा का स्वरूप अन्तःकरण में दिखाई देने लगता हैं।

ज्ञान काण्ड का अन्तिम लक्ष्य अविद्या जनित अज्ञान को विद्या द्वारा दूरकर आत्म ज्ञान को प्राप्त करते हुए परमात्मा और जीवात्मा के भेद का जो मिथ्या ज्ञान है, उसको हटाकर जीवात्मा और परमात्मा की अद्वैत सिद्धि करना है।

वेद के तीनों काण्डों के अनुसार योग के सिद्धान्तों का यही रहस्य है।

भगवान् की सान्निध्य प्राप्ति के साधनों को उपासना कहते हैं। उपासना का प्राण भक्ति है और शरीर योग है। शरीर में प्राण के न रहने से जैसे शरीर की कुछ भी उपयोगिता नहीं रहती, वैसे ही भगवद्‌भक्ति हीन योग खिलवाड़ मात्र हो जाता है। शरीर के अभाव में न तो प्राण के रहने का कोई स्थान ही है और न उसका अस्तित्व ही सम्भव रहता है। जब शरीर स्वस्थ और उसका अस्तित्व ही न रहेगा तब भला कोई साधन कैसे हो सकेगा? इसी सिद्धांत के अनुसार भक्ति और योग का उपासना काण्ड के सब साधनों में अन्योन्याश्रय बना रहना स्वाभाविक है। यही कारण है कि योग तत्त्व वेत्ताओं व पूज्यपाद

महर्षियों ने योग साधन की मंत्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग नामक चार श्रेणियों व यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार,धारणा, ध्यान और समाधि नामक योग की आठ पौढ़ियों के साधन का उपदेश दिया है। सूक्ष्म तथा त्रिकालदर्शी महर्षियों ने योग विज्ञान को उक्त चार श्रेणियों और आठ पौढ़ियों में इस प्रकार विभक्त किया है कि सब प्रकार के साधन मार्गो के सभी अंग और प्रत्यंग उनमें आ जाते हैं ।

(१) मंत्रयोग

मंत्रयोग का सिद्धान्त यह है कि यह संसार नामरूपात्मक है। नाम रूप से ही जीव अविद्या में फँसकर जकड़ा रहता है। मनुष्य जिस भूमि पर गिरता है उसी के अवलम्बन से वह उठ सकता है, अतएव नाम और रूप के अवलम्बन से ही जब वह फँसता है तो नाम रूप के अवलम्बन से ही तब वह मुक्त भी हो सकता है। मंत्रयोग के आचार्यों ने मंत्रयोग के साधना को सोलह अंगो में विभक्त किया है, जैसे मंत्र जप, न्यासादिक शुद्धि, स्थान शुद्धि, आदि।

मंत्रयोग के ध्यान को स्थूल ध्यान कहते हैं। यह ध्यान पंच सगुणोपासना और अवतारोपासना के अनुसार कई प्रकार का होता है, इसकी समाधि को महाभाव समाधि कहते हैं।

(२) हठयोग

हठयोग का सिद्धान्त यह है कि स्थूल और सूक्ष्म शरीर एक ही भाव में गुम्फित है व एक का प्रभाव दूसरे पर पूर्णरूप से बना रहता है। स्थूल शरीर को अपने अधीन कर सूक्ष्म शरीर को अधीन करते हुए योग की प्राप्ति करने को हठयोग कहते हैं। योगाचार्यो ने हठयोग को सात अंगों में विभक्त किया है। नेति, धौति आदि षट्कर्म व आसन, मुद्रा, प्राणायाम आदि। इसके ध्यान को ज्योतिर्ध्यान और प्राण के निरोध से होने वाली समाधि को महाबोध समाधि कहते हैं।

(३) लय योग

लय योग का सिद्धांत यह है कि ब्रह्माण्ड की प्रतिकृति मानव पिण्ड है! ब्रह्म और ब्रह्मशक्ति का विलास जैसा ब्रह्माण्ड में है वैसा ही मानव पिण्ड में भी है। ग्रह, नक्षत्र, चतुर्दश भुवन आदि के पीठ मानव पिण्ड में भी हैं। पंचकोषों का आवरण शिथिल होने पर पिण्ड जहाँ चाहे, उसी लोक से अपना सम्बन्ध स्थापित कर सकता है, इसी विज्ञान के अनुसार मनुष्य पिण्ड के आधार पद्म में कुल कुण्डलिनी नामक ब्रह्मशक्ति प्रसुप्त रहकर अविद्या के प्रभाव से सृष्टि क्रिया करती है। रजोबीर्य जनित वैसी सृष्टि उसका साक्षात् फल है। मनुष्य शरीरस्थ सप्तम चक्र मस्तक में स्थित सहस्रदल में जिस योग द्वारा कुल कुण्डलिनी शक्ति को ले जाकर ब्रह्मरूपी सदाशिव के साथ मिला दिया जाता है, उस शिव में शक्ति का लय कर मुक्ति प्राप्त करने के साधन का नाम लय योग है। इसके आठ अंग हैं। इसके ध्यान को बिन्दु ध्यान और इसकी समाधि को महालय समाधि कहते हैं।

(४) राजयोग

राजयोग उक्त तीन योगों की चरम सीमा है, उसका सिद्धांत यह है कि मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार से संचलित अन्तःकरण ही जीव के बन्धन और मुक्ति का भी कारण है। जैसे अशुद्ध मन जीव को नीचे गिराता है, शुद्ध मन ऊपर उठाता है, वैसे ही इन्द्रिय परायण बुद्धि जीव को बन्धन में जकड़ती है और ब्रह्म परायण बुद्धि जीव को मुक्ति भूमि में पहुँचा देती है। अतः शुद्ध बुद्धि की सहायता से तत्त्वज्ञान का लाभ करके अन्त में राजयोगी जीव और ब्रह्म के अभेद का कारण समझ कर ज्ञान से अज्ञान का नाश करते हुए जीव और ब्रह्म की अद्वैत सिद्धि के द्वारा मुक्त हो जाता है। राजयोग के सोलह अंग हैं। इसके ध्यान को ब्रह्म ध्यान और इसकी समाधि को निर्विकल्प समाधि कहते हैं। जिसका फल जीवन मुक्ति है।

इन चारों योग शैलियों का मूल भगवद्‌भक्ति युक्त अष्टांग योग का साधन क्रम है। अष्टांगयोग के आठों अंग ब्रह्मरूपी सर्वोच्च शिखर पर चढ़ने के लिए आठ सीढ़ियाँ हैं।

वहिरिन्द्रियों पर आधिपत्य जमाने के साधनों को यम, तथा अन्तरिन्द्रियों पर आधिपत्य जमाने के साधनों को नियम कहते हैं। स्थूल शरीर को योग के लिए उपयोगी बनाने को आसन और शरीरस्थ प्राण को योगोपयोगी बनाने के साधनो को प्राणायाम कहते हैं। यह चारों बहिरंग साधन हैं।

बहिर्मुख मन को अन्तमुर्ख करने के साधन को प्रत्याहार कहते हैं। इसीसे अन्तरंग का साधन आरम्भ होता है। अन्तर्जगत् में ले जाकर मन को एक स्थान में ले जाकर मन को एक स्थान में ठहराने के साधनों को धारणा कहते हैं। अन्तर्जगत् में ठहरने का अभ्यास प्राप्त करते हुए अपने इष्टदेव, चाहे सगुणरूप, चाहे ज्योतिर्मयरूप, चाहे बिन्दुमय रूप और चाहे निर्गुण सच्चिदानन्दमय रूप हों, केवल उसी इष्टदेव को ध्येय बनाकर जगत् को भूल जाने को ध्येय कहते हैं। अपने जीव भाव को परमात्मा में मिला देने को समाधि कहते हैं। समाधि ही सविकल्प और निर्विकल्प दो प्रकार की होती है। निर्विकल्प समाधि ही सब साधनों का अन्तिम लक्ष्य है। यही सर्वजीव हितकारी, सब सम्प्रदायों के अनुयायियों, सब प्रकार के उपासकों और सभी प्रकार के साधकों के लिये परम हितकर योग साधन का संक्षिप्त विवरण है।

योगी की पहचान

योगी की परख उसकी बातों से नहीं होती बल्कि उसकी परख होती है अन्तर्दृष्टि और ज्ञान से। वास्तविक बात यह है कि योगी बहुत कम बोलता है, वह तो सदा चैतन्य समाधि में स्थित रहता है। वही

सच्चा मुनि है जो मौनी है।(गीता१२,१६,१७,१९)। उसका मौन स्वाभाविक होता है। साधारण लोगों का मौन साधने का कारण कृत्रिम होता है।

गीता के दसवें अध्याय के श्लोक ३८ में कहा है कि ब्रह्म मौन है। उपनिषदों में कहा है **'निःशब्दं ब्रह्म उच्यते'** अर्थात् ब्रह्म निःशब्द मौन है। मौनी भक्त भगवान् की ओर खिंचता है और भगवान् उसकी ओर। जगत्गुरु शंकराचार्य ने ब्रह्मज्ञ पुरुष का जो वर्णन किया है उसका सर राधाकृष्णन ने 'इण्डियन फिलासाफी' नामक ग्रन्थ में अनुवाद करते हुए लिखा है कि जीवनमुक्त पुरुष ऐसे चलता है जैसे अंधा, गूँगा व बहरा हो और ज़िसे कोई ज्ञान न हो। गुह्य ज्ञानियों का कहना है कि ईश्वर का ध्यान करने वाले को मूक और बहरा रहना चाहिए। जैसे निर्वात स्थान में दीप शिखा स्थिर रहती है वैसे ही योग क्रिया करने वाले योगी की आत्मा शांत और स्थिर रहती है। उसका श्वास सुषुम्ना से सूक्ष्म रूप में चलता है। शास्त्र में लिखा है कि योगी की पलक नहीं गिरती, श्वास-प्रश्वास बाहर नहीं निकलता और उसका मन स्थिर रहता है।

आजकल देखने में आता है कि कुछ योगी योग का पूरा ज्ञान रखते हुए भी अध्यात्म विद्या व योग का प्रचार करते हुए लोगों को ठगते फ़िरते हैं। संघादि और चेले बनाकर उसके अधिष्ठाता बन जाते हैं। योगी लोग संघ नहीं बनाते क्योंकि इसमें अनधिकारी लोग घुस कर उसे बदनाम कर देते हैं और न वे कोई भक्तों या शिष्यों का संगठन करते हैं क्योंकि उससे भ्रष्टाचार का भय रहता है। ऐसी संस्था आदि से साम्प्रदायिकता व लोंगो से घनिष्टता बढ़ती है। सच्चे योगी न तो सार्वजनिक व्याख्यान देते फिरते हैं और न वे लेखादि लिखकर ही अपने को प्रसिद्ध करके पुजवाना चाहते हैं। वे न तो शिष्य बनाते फिरते हैं और न मठ आदि बनाकर एक स्थान पर ही रहते हैं। जिनको वे उपदेश का अधिकारी जान लेते हैं उन्हीं को उपदेश देते हैं और ऐसे

ही लोग उनके पास पहुँच सकते हैं। प्रसिद्धि से आध्यात्मिक उन्नति में बड़ी बाधा पहुँचती है व साधना नष्ट होती है अतएव वह एकांत में ही रहते हैं। यह सच्चे योगी के लक्षण हैं।

योगी कौन है?

जिस तरह दो वस्तुओं के परस्पर मिलने को योग कहते हैं उसी तरह उनके विच्छेद को वियोग कहते हैं। संसार इसी योग वियोग ही का रूप है। माता पिता का पुत्र के साथ,भाई का भाई व बहिन के साथ, स्त्री का पति के साथ धन सम्पत्ति आदि का मनुष्य के साथ जो योग है उसके साथ ही वियोग भी लगा हुआ है। जिस योग के पीछे वियोग लगा हुआ है,वह योग नहीं और जिस योग के पीछे वियोग नहीं रहता, जिस मिलन के पीछे विच्छेद नहीं रहता वास्तव में वही सच्चा योग व मिलन है। जो चीज़ क्षणिक है, जिसका मिलन व योग अस्थाई नहीं उसके साथ मिलन व योग भी क्षणिक ही होगा। उससे किसी न किसी दिन वियोग व विच्छेद होना ही है अर्थात् ऐसे योग के पीछे सदा वियोग लगा ही रहेगा परन्तु जो चिरस्थाई अर्थात् नश्वर नहीं है उसके साथ होने वाला योग व मिलन भी अस्थाई नहीं होता है। उसके साथ मिलन व योग होने पर वियोग या विच्छेद होने का भय व आशंका नहीं होती। इन बातों पर विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संसार में एक मात्र परमात्मा ही ऐसे हैं जो चिरस्थाई हैं और संसार की सभी वस्तुएँ क्षणिक हैं, अतएव भगवान् के साथ जीवन का जो मिलन होता है वही वास्तविक योग है। इसी योग का जो लोग अभ्यास व साधना करते हैं वे ही योगी कहलाते हैं। इसलिए यदि आप परमात्मा का मिलन चाहते हैं तो आप को भी योग मार्ग पर ही चलना पड़ेगा।

योग पथ कौन-सा है, उस पर किस प्रकार चलना चाहिए यह सब बातें अन्यत्र बतलाई गई हैं।

योग शक्ति

हमारे त्रिकालदर्शी महर्षियों द्वारा प्रकट होने वाले ईश्वर के ज्ञानरूप वेद को हम पूर्ण ग्रन्थ मानते हैं। जो वेदों में है वही न्यूनाधिक सर्वत्र मिलता है और जो उसमें नहीं है उसका अस्तित्व कहीं भी नहीं हैं। वेद में जो जड़ चेतन, लोक परलोक, स्वर्ग नर्क, पाप पुण्य, कर्म अकर्म आदि लौकिक अलौकिक विषयों का वर्णन किया गया है, उनके यथार्थ रूप को देखने वाला योगी ही है। गूढ़ वैदिक तत्त्वों को प्रत्यक्ष कराने वाला योगाभ्यास ही है।

हम योग से परमात्मा के वास्वविक स्वरूप का अवलोन कर सकते हैं, हम प्रकृति और उसके विकारों को यथार्थरूप में देखने योग्य बन सकते हैं। हम पहले क्या और कहाँ थे? आगे क्या और कहाँ होगें? आदि अनेक जन्मों का पता लगा सकते हैं। पाप और पुण्यजनक कर्मों का निश्चय कर सकते हैं। अभी तो हमें यही पता नहीं कि मनुष्य का कर्तव्य क्या है और उसमें क्या शक्ति है? इसका पता भी योग से ही लगता है। योगी सब वस्तुओं को यथार्थ रूप में देख लेता है। योग प्रकृति पुरुष के भेद को प्रत्यक्ष दिखलाकर माया के सारे बन्धनों को तोड़कर जीव या पुरुष को उससे मुक्त कर देता है। योग का प्रधान उद्देश्य यही है कि वह प्रत्येक वस्तु के यथार्थ रूप को प्रत्यक्ष कर दे।

मनुष्य, मनुष्य के ख़ून का प्यासा क्यों है? उसके लिए समान भाग में दी गई ईश्वर प्रदत्त भूमि, जल व इनसे उत्पन्न होने वाली वस्तुओं पर कुछ लोगों ने अपना अधिकार करके व दूसरों को उससे

वंचित करके मनुष्य क्यों अनधिकार चेष्टा किया करता है। मनुष्य के वस्तु स्थित अर्थात् पदार्थों के वास्तविक रूप को न जानने के कारण ही यह सब उपद्रव खड़े होते हैं। यदि उनके ठीक-ठीक व सत्य स्वरूप का प्रत्यक्ष करा दिया जाय तो सारे झंझट व बखेड़े खुदही मिट जायें और राजा, प्रजा, छोटे-बड़े ऊँच का विवाद फ़ौरन ही मिट जाय। इन भेदों व इन सब बातों के कारण होने वाले सर्वनाश का ज्ञान कराने वाला एक मात्र योग ही है। योगियों के आश्रमो में तो सिंह, मृग, वाघ, बकरी, बिल्ली, चूहों, तक का भेद मिट जाता है तब मनुष्य तो समझदार है।

यौगिक ज्ञान से भेद अभेद मिटकर आत्मानुभव होता है, अपने वास्तविक स्वरूप और शक्ति का ज्ञान होता है, विषय वासना नष्ट हो जाती है, कान्ति बढ़ जाती है, माया का अनुभव हो जाने से लोभ, मोह, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि पास नहीं आते, जीव मात्र के प्रति प्रेम और दया उत्पन्न होकर मनुष्य परमानन्द को प्राप्त हो जाता है ।

परन्तु बिना अधिकारी हुए किसी को कोई वस्तु नहीं मिलती, योग का अधिकारी वही हो सकता है जिसकी आत्मा, परलोक, शुभाशुभ कर्मों, वेद व आचार्यों आदि में दृढ़ विश्वास व श्रद्धा हो।

योगशास्त्र के अनुसार उसके चार विभाग मंत्र योग, लय योग, हठ योग और राज योग हैं। भगवद्गीता के अनुसार मंत्र योग, भक्ति योग, ज्ञान योग और हठ योग चार विभाग हैं। सम्मोहन तंत्र के अनुसार ज्ञान योग, राज योग, लय योग, हठ योग, व मंत्र योग पाँच हैं। इनके सिवाय और भी अन्य प्रकार के योग हैं, परन्तु विस्तार भय से उन सबका ब्योरा देना कठिन है अतएव हम उनमें से केवल मुख्य-मुख्य योगों का ही विवरण आगे दे रहे हैं।

(१) हठ योग (२) राज योग (३) अष्टांग योग (४) लय योग (५)ध्यान योग (६)कर्म योग (७) भक्ति योग (८) सांख्य योग (९) मंत्र योग (१०) ज्ञान योग ।

(१) हठ योग

'ह' से सूर्य और 'ठ' से चन्द्रमा अर्थात् दाहिने और बायें नासारंध्रो में बहने वाली इड़ा व पिंगला नाड़ी। इन दोनों के संयोग से सुषुम्ना नाड़ी के उत्थान तथा षट्चक्रों के भेदन करने को हठ योग कहते हैं। कुछ लोग हठ योग और राज योग को भिन्न-भिन्न मानते हैं परन्तु गीता, हठ योग प्रदीपिका व गोरक्ष सँहिता आदि में हठ योग को राज योग की नीव बतलाया है।

(२) राज योग

किसी स्थिर आसन व शाम्भवी आदि किसी मुद्रा द्वारा चित्त एकाग्र करके सुखपूर्वक आत्म सत्ता का अभाव होने व केवल एक परमात्मभाव के रह जाने तथा इसी अभ्यास से अर्थात् मनोनिरोध से प्राणों के निरोध होने को राज योग कहते हैं।

(३) अष्टांग योग

इन्द्रियों को रोककर,मन को हृदय में स्थिर कर,प्राणों को मस्तक में स्थापन करके योग धारणा में स्थित होना तथा अपान वायु में प्राण वायु, प्राण वायु में अपान वायु को हवन करते है और प्राण व अपान दोनों ही की गति को रोक कर प्राणायाम में पारायण होने को अष्टांग योग कहते हैं।

(४) लय योग

स्थिर आसन बैठकर षण्मुखी मुद्रा में मन को अनहद शब्द व नाद श्रवण, दिव्य प्रकाश या मूर्ति विशेष में लय करने अर्थात् प्राण शक्ति, कुण्डलिनी शक्ति, मन की वृत्तियाँ इन सब के लय को लय योग कहते हैं।

(५) ध्यान योग

एकाग्र चित्त द्वारा शुद्ध, पवित्र और एकाग्र स्थान में योग्य आसन पर बैठकर संसार के चिन्तन का सर्वथा अभाव करके एक मात्र ईश्वर का ही चिन्तन करना इसे ध्यान योग कहते हैं।

(६) कर्म योग

फल और आसक्ति को त्याग कर व कर्तव्य बुद्धि से समत्वभाव रखते हुए विहित कर्मों को करना अर्थात् निष्काम कर्म करने को कर्म योग कहते हैं।

(७) भक्ति योग

साकार भगवान् को स्वामी समझ कर अनन्य श्रद्धा से युक्त होकर चित्त को उनमें तन्मय करने को भक्ति योग कहते हैं।

(८) सांख्य योग

अहंता व ममता को नष्ट करके सर्वव्यापी परमात्मा में एकीभाव से स्थित होने को सांख्य योग कहते हैं।

(९) मंत्र योग

मंत्र जाप द्वारा मन के लय करने को मंत्र योग कहते हैं।

(१०) ज्ञान योग

यम, नियम, हठयोग राजयोग का साधन करते-करते समाधि द्वारा पूर्ण ज्ञान करने को ज्ञान योग कहते हैं।

कुछ महानुभाव हठ योग, लय योग और राज योग को कर्म योग, ज्ञान योग व भक्ति योग के ही अन्तर्गत समझते हैं। आसन, मुद्रा, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि इत्यादि अष्टांग योग एवं मंत्र योग,

जप योग आदि पावन योग प्रणाली इस त्रिविध योग के अन्तर्गत हैं। उपर्युक्त मुख्य-मुख्य योगों के सिवाय सिद्ध योग, जप योग व पूर्ण योग भी आगे दिये जाते हैं।

महर्षि पतञ्जलि कृत योग दर्शन, महर्षि भरद्राज कृत कर्म मीमांसा दर्शन, मंत्र योग संहिता, हठ योग संहिता, लय योग संहिता, राज योग संहिता, महर्षि वशिष्ठ कृत योग वाशिष्ठ, याज्ञवल्क्य संहिता तथा पुराणों व तंत्रो में योग साधन का रहस्य विस्तृत रूप से वर्णित है।

जो लोग हठ योग के अर्थ व उद्देश्य को नहीं जानते वे लोग हठ योग के मतलब को समझ लें हठपूर्वक किया जाने वाला योग और कुछ नामधारी साधुओं को कीलोंदार तख़्तों पर लेटे रहने, हाथ पैर उठाये रखकर उनकी मांस पेशियाँ सुखाने तथा इसी प्रकार की अन्य क्रियाओं के करने के कारण उनकी यह धारणा और भी पुष्ट हो जाती है परन्तु वास्तव में शरीर पर अधिकार हो जाने पर मन चंचल नहीं रह सकता अतएव पहले हठ योग का साधन आवश्यक है।

हठ योग के प्रवर्तक

हमारे आचार्यों का यह सिद्धान्त है कि सभी शास्त्रों की प्रथम प्रवृत्ति परमात्मा से होती है इसलिये हठ योग भी ईश्वर प्रोक्त है। हठयोगियों का कहना है कि आदिनाथ श्री शिवजी इसके आदि प्रवर्तक हैं और उनसे मार्कण्डेय ऋषि ने इसे प्राप्त किया था। मत्स्येन्द्र गोरक्षनाथ, चर्पटि, जलंधर, कनेडी, चतुरंगी, विचारनाथ आदि आचार्यों ने संसार में इसका प्रचार किया। इस सम्प्रदाय के इतिहास तथा शास्त्र के अवलोकन करने पर हठ विज्ञान की बहुत-सी आवश्यक व जानने योग्य बातें मालूम हो सकती है। गोरक्ष शतक, गोरक्ष संहिता, सिद्ध सिद्धान्त पद्धति, सिद्ध सिद्धान्त संग्रह, अमनस्क, योग बीज, हठ योग प्रदीपिका, हठ तत्त्व कौमुदी, घेरंड संहिता, निरंजन पुराण आदि इस विषय के बहुत से ग्रन्थ मिलते हैं।

हठ योग का उद्देश्य

नाड़ियों की शुद्धि व स्वास्थ्य की रक्षा हठ योग का अव्यवहित उद्देश्य है। धेंरड संहिता का मत है कि हठ शास्त्रोक्त देह शुद्धि धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि व कपाल भांति द्वारा होती है। हठयोगी शारीरिक क्रियाओं की ओर विशेष दृष्टि रखकर देह को बलिष्ठ, दृढ़ और स्थिर, आसन और मुद्रा के अभ्यास से करता है। प्रत्याहार, प्राणायाम, धारणा ध्यान और समाधि के द्वारा क्रमशः देहिकधीरता, लघुता, आत्मप्रत्यक्ष तथा निर्लेपता सुसम्पन्न होती है। आसन के विधिवत् अभ्यास से देह की स्थिरता, निरोगता तथा लघुता सम्पन्न होती है व दीर्घकाल तक के अभ्यास से रजोगुण जनित देह की चंचलता और मन की अस्थिरता दूर होती है व रोगों की निवृत्ति भी होती है। शरीर का भारीपन, तमोगुण दूर होकर देह हल्की होती है। सात्विक तेज़ की वृद्धि होती है, परन्तु नाड़ी चक्र नाना प्रकार से आच्छन्न होते रहने के कारण वायु सुषुम्ना मार्ग में प्रवेश नहीं कर पाती इसलिये प्राणायाम आरम्भ के पहले नाड़ी शोधन करना अत्यन्त आवश्क है। नाड़ी शुद्ध हुए बिना उन्मनी भाव व मनोनिवृत्ति की कोई आशा नहीं रहती। इसीलिए शांडिल्य उपनिषद् के मतानुसार नाड़ी शोधन प्राणायाम का अभ्यास कई महीने तक दिन में प्रातः व सायँकाल दो बार करना चाहिए। देह की कृशता, कांति, इच्छानुसार वायु धारण करने का सामर्थ्य, अग्नि वृद्धि, नारकी अभिव्यक्ति और आरोग्यता यह सब लक्षण जब क्रमशः आविर्भूत हो जायें तब समझना चाहिए कि सब नाड़ियाँ शुद्ध हो गई हैं। मुद्रा साधन से ब्रह्मद्वार या सुषुम्ना मुख से निद्रिता कुल कुंडलिनी जागृत होकर ऊपर उठती है, कुंडलिनी के जागने पर चक्रों व ग्रन्थियों आदि का भेदन होता है, प्राण अनायास सुषुम्ना में प्रवेश करता है। चित्त निरालम्ब होता है व मृत्यु भय छूट जाता है। आधार शक्ति कुण्डलिनी समस्त योगाभ्यास का मूल अवलम्ब है।

हठ योग का अर्थ

'ह' माने 'सूर्य' 'ठ' से चन्द्रमा अर्थात दाहिने और बाएँ नासाग्र में बहने वाली इडा व पिंगला नाड़ी। इनके संयोग से सुषुम्ना नाड़ी के उत्थान का साधन तथा मूलाधार स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत व आज्ञा आदि षट चक्रों का भेदन करने को हठ योग कहते हैं।

'ह' माने सूर्य-पिंगला दाहिनी ओर की वायु और 'ठ' माने चन्द्र इडा बाएँ ओर की वायु। वायु को अन्दर खींचना है 'ह' और बाहर छोड़ना 'ठ' सूर्य (दक्षिण स्वर) चन्द्र वाम स्वर दोनों की समता का नाम हठ योग है। नासिका के अग्रभाग से आता है, यह प्राण वायु बारह अँगुल पर्यंत बाहर जाता है पुनः लौटकर आता है, नाभि में की यह स्वाभाविक गति है। प्राणायाम के बल से साधक प्राण वायु की गति को एक-एक दो-दो अँगुल क्रमशः घटावे, जब द्वादश अँगुल बाहर की गति बन्द हो जाय और केवल नासिका के भीतर ही दोनों स्वर सम होकर सुषुम्ना नाड़ी में जिस अवस्था में प्राण चलें उस अवस्था का नाम हठ है, अर्थात् प्राण निरोध द्वारा मन का निरोध हठ योग है।

हठ योग के सात अंग

आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि हठ योग के यह सात अंग हैं। इन सब अंगों के क्रमानुसार साधन द्वारा क्या-क्या फल प्राप्त होते हैं उसका योगशास्त्र में इस प्रकार वर्णन है। हठ योग में खेचरी मुद्रा का बड़ा महत्त्व है। यथार्थ में खेचरी हठ योग की चीज़ है।

षट् कर्म द्वारा शरीर शोधन, आसन के द्वारा दृढ़ता, मुद्रा के द्वारा स्थिरता, प्रत्याहार के द्वारा धीरता, प्राणायाम द्वारा लाघव, ध्यान द्वारा आत्मा का प्रत्यक्ष, धारणा द्वारा चित्तवृत्तियों की स्थिरता और समाधि द्वारा निर्लिप्तता तथा मुक्ति लाभ अवश्य होता है। इन सब मानसिक

और आध्यात्मिक लाभों के सिवाय हठ योग के प्रत्येक अंग और उपांग के साधन द्वारा शरीरिक स्वास्थ्य विषयक विशेष लाभ भी होता है जो कि योगिराज गुरुदेव से जानने योग्य है।

धौति, बार्दत, नेति, नौलि, त्राटक और कपाल भाति यह छः क्रियायें षट् कर्म कहलाती हैं। हठ योग के अनुसार बैठकर साधन करने के कुल तैतीस आसन माने गए हैं तथा सूर्यभेदी, उज्जायी, शीतली, शीतकारी, मस्तिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और केवली आदि आठ प्रकार के प्राणायाम बतलाए गए हैं। इसी प्रकार हठ योग में पच्चीस मुद्रा साधन की विधि पाई जाती है। प्रत्याहार में भी यह मुद्रायें सहायता करती है तथा ध्यान सिद्धि और समाधि में भी सहायक होती हैं जो हठ योग का अन्तिम साधन है। त्रिशिखि ब्राह्मण उपनिषद् में लिखा है कि यम नियम व आसन सिद्ध हुए बिना प्राणायाम यथार्थ रूप से नहीं किया जा सकता। अतएव उस दिशा में नाड़ी शुद्धि की चेष्टा करना अनुचित है। हठ योगाचार्यो का कहना है कि वायु, पित्त, कफ़ इन तीनों दोषों में से एक या दो की अधिकता होने पर षट् कर्मों की सहायता लेना आवश्यक है। आचार्य याज्ञवल्क्य जी कहते हैं एक मात्र प्राणायाम के अभ्यास से ही समस्त मल की निवृत्ति हो जाती है तब षट् कर्म की विशेष आवश्यकता नहीं।

अष्टांग योग

जैसे मंत्र योग के साधनों में नाम रूप के अवलम्बन से साधन की विशेषता है, उसी प्रकार केवल स्थूल शरीर के अधिक अवलम्बन से चित्तवृत्ति निरोध करके योग्य साधन की प्रणाली हठ योग बतलाई गई हैं। महर्षि पतंजलि कृत योग दर्शन में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि द्वारा श्री भगवान् के निकट पहुँचने के लिए साधन की आठ पौढ़ियाँ बतलाई गई है। यह उत्तरोत्तर एक दूसरे से ऊँची हैं। बहिरिन्द्रियों पर प्रभाव रखने को 'यम' अन्तरिन्द्रियों पर प्रभाव रखने को नियम कहते हैं। योगसाधन के

योग्य शरीर बनाने को 'आसन' कहते हैं। प्राण व अपान वायु पर प्रभाव डालकर उनको साधनोपयोगी बनाने को 'प्राणायाम' कहते है। मन को बाहर से खींचकर भीतर की ओर लाने को ''प्रत्याहार'' कहते हैं। मन को भीतर ठहरा रखने को 'धारणा' कहते है। इष्टदेव या इष्ट ध्येय में मन लगाने को 'ध्यान' कहते हैं। और इष्ट में मन को लीन करके अपने आपको भूल जाने को समाधि कहते है। यही अष्टांग योग का सार है।

इसके चार अङ्ग. बाहर के है और चार भीतर के हैं। इन आठों का बहुत कुछ विस्तार है। उन विस्तारों में मंत्र, हठ, लय, और राज योग आदि इन चार श्रेणियों के साधनों में इन आठों अंगों में से किसी में किसी अंग पर अधिक ध्यान दिया है। शास्त्रों में लिखा है कि मार्कण्डेय, भरद्वाज, मरीचि, जैमिनि, पाराशर, भृगु, विश्वामित्र आदि की कृपा से इस कल्प में हठ योग का विस्तार हुआ है जब देखा जाता है कि सूक्ष्म शरीर के तीव्र संस्कार से उत्पन्न हुए कर्मों के भोग का आश्रयरूपी जीव का स्थूल शरीर बनता है अर्थात् सूक्ष्म शरीर के भाव के अनुरूप ही स्थूल शरीर का संगठन होता है तथा सूक्ष्म शरीर सम्बन्ध युक्त होकर रहते है।, तब इसमें क्या बाधा है कि स्थूल शरीर के कार्यों के द्वारा सूक्ष्म शरीर पर आधिपत्य नहीं किया जा सकता? फलतः अधिकारी विशेष के लिये स्थूल शरीर की क्रियाओं का साधन प्रथम अवस्था में स्थूल शरीर की क्रियाओं का साधन करता हुआ स्थूल शरीर पर सम्पूर्ण आधिपत्य कर लेता है और क्रमशः उस शक्ति को अन्तर्मुख करके उसके द्वारा सूक्ष्म शरीर को वश में लाकर चित्तवृत्ति निरोध के द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करने में समर्थ होता है। इसी प्रणाली को हठ योग कहते हैं।

मंत्र योग-जिस प्रकार भावपूर्ण स्थूल ध्यान की विधि है, हठ योग में वैसे ही ज्योतिः कल्पना रूप ज्योतिर्ध्यान करने की विधि रखी गई है। अन्तर्जगत् के पवित्र भावों को आश्रय करके जिस

प्रकार नाना देव देवियों के ध्यान के लिए मंत्र योग में उपदेश है उसी प्रकार परमात्मा को सब ज्योतियों का ज्योति स्वरूप जानकर उनके ज्योतिर्मय रूप की कल्पना करके ध्यान का अभ्यास करने की व्यवस्था हठ योग में है। मंत्र योग समाधि में नाना रूपों की सहायता से समाधि लाभ करने की साधन प्रणाली वर्णित है और हठ योग में वायु निरोध के द्वारा मन का निरोध करके समाधि लाभ की विधि है। मंत्र योग समाधि को 'महा भाव' और हठ योग समाधि को 'महा बोध' समाधि कहा जाता है।

हठ योग व राज योग

हठ योग का सम्बन्ध स्थूल शरीर व प्राण वायु के निग्रह से है। राज योग का सम्बन्ध मन से है। राज योग व हठ योग अन्योन्याश्रित हैं। वे एक दूसरे के आवश्यक व सहकारी अंग हैं। दोनों का पूर्ण अभ्यास जहाँ समाप्त होता है वहीं से राज योग प्रारम्भ होता है। हठ योग की साधना शरीर और प्राण से और राज योग की साधना मन से आरम्भ होती है, हठ योगी प्राण और अपान वायु को संयुक्त करके उनको भिन्न-भिन्न चक्रों में ले जाता है तब उसे सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। हठ योग का सिद्धान्त है कि राज योग ही हठ योग का लक्ष्य है व हठ योग के ग्रन्थ का कथन है कि हठ योग के बिना राज योग की प्राप्ति नहीं होती और हठ योग भी राज योग के बिना व्यर्थ है, परन्तु राज योग का सिद्धान्त है कि हठ योग राज योग की प्राप्ति के लिये आवश्यक नहीं बल्कि किंचित् बाधक है केवल हठ योग के अभ्यास में यह दोष है कि इसके सब साधनों के स्थूल शरीर से सम्बन्ध रखने के कारण स्थूल शरीर में जो अज्ञान के कारण आत्माभिमान है, उसकी कमी न होकर पुष्टि होती है, जो अध्यात्म पथ में बड़ा प्रतिबन्धक है। राज योग में तो स्थूल शरीर को केवल घोरमायिक मानकर और आवरण समझकर उसकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं

दिया जाता, उसकी अवहेलना करके केवल मनोमय कोष से अभ्यास आरम्भ किया जाता है। दूसरा दोष हठ योग में यह बतलाया जाता है कि इसके अधिकांश अभ्यास स्थूल शरीर सम्बन्धी होने के कारण इसका जो परिणाम होता है वह मृत्यु के समय स्थूल शरीर छोड़ देने पर बेकार हो जाता है और आगे उसका प्रभाव नहीं रहता, परन्तु राज योग की मानसिक क्रिया का परिणाम जन्म जन्मान्तर तक बना रहता है, क्योंकि मृत्यु के साथ अन्तःकरण का नाश नहीं होता, वह स्थूल शरीर के नाश हो जाने पर भी जीव रूप से वर्तमान रहता है।

हठ योगी का ज़ोर आसन, बंध, मुद्रा और प्राणायाम पर अधिक रहता है। उसे शरीर में निम्न भाग में स्थित मूलाधार चक्र के अन्दर सोई हुई कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर उसे शेष पाँच चक्रों के मार्ग से सहस्रार चक्र में ले जाने की उत्सुकता रहती है। यहाँ कुण्डलिनी शक्ति का शिव के साथ योग हो जाता है। तब योगी निर्विकल्प समाधि में स्थित होकर मुक्ति एवं भक्ति अर्थात् अध्यात्मिक आनन्द दोनों प्राप्त कर लेता है। प्राणायाम का अभ्यास करते समय उसे चार अवस्थाओं का अनुभव होता है जिन्हें (१)-'आरम्भावस्था' (२) घट-'अवस्था' (३) 'परिच्छाया-अवस्था' और (४) 'निष्पत्ति अवस्था' कहते है।

हठ योग की अपेक्षा राज योग सब प्रकार से श्रेष्ठ है। हठ योग से शरीर अवश्य दृढ़ रहता है परन्तु हठ योगी मृत्यु को नहीं जीत सकता। राज योगी समाधि में मृत्युञ्जय का सहयोग पाकर इच्छा मृत्यु होकर मृत्यु को जीत लेता है। हठ योगी नीरस और भक्ति शून्य हो सकता है परन्तु राज योगी आनन्दमय और भक्तिमान् होता है। हठ योगी अद्भुत शक्ति शारीरिक शक्ति द्वारा मनुष्यों को आश्चर्य चकित कर सकता है और राज योगी भक्ति द्वारा भगवान् तक को वशीभूत कर लेता है। फिर भी पहले हठ योग का अभ्यास कर लेने से राज योग

सफल होता है। राज योग को जीवन का उद्देश्य बनाकर ही जो हठ योग द्वारा राज योग प्राप्त करने के लिए अभ्यास करते हैं वे ही वास्तविक साधक हैं, परन्तु जो दोनों का साधन करते हैं उनके सामने मनुष्य ही नहीं बल्कि देवता भी नतमस्तक होते हैं।

हठ योगी व राज योगी की पहचान

हठ योगी व राज योगी की पहचान उनके शरीर देखने से ही हो जाती है। हठ योगी की देह कांतिहीन होती है और राज योगी की देह कान्तिमान् है। जगत् में भगवान् ही सबसे अधिक सुन्दर व दिव्य स्वरूप है। उन्हीं भगवान् का ध्यान करते-करते राज योगी का शरीर सुन्दर और लावण्यमय हो जाता है। जो जिसका सच्चे हृदय से ध्यान करता है उसे वही प्राप्त हो जाता है। राज योगी सदा आनन्द रूप भगवान् का ध्यान करता है इसलिए उसे वैसा ही रूप प्राप्त हो जाता है।

हठ योगियों को शरीर के संसर्ग में रहते-रहते उसमें आसक्ति आ जाती है अतएव वे ऐसे ही साधनों में लगे रहने के कारण जीवन के वास्तविक उद्देश्य की तरफ़ अधिक ध्यान नहीं देते। यद्यपि शरीर की उसी हद तक सेवा व साधना करना चाहिए जिसमें वह नैसर्गिक व्याधियों से मुक्त रहे परन्तु शरीर की स्वस्थता ही जीवन का लक्ष्य न बन जाना चाहिए। हठ योगी को हठ योग की क्रियाओं के सिवाय आध्यात्मिक साधन करते हुए सूक्ष्म जगत् से ऊपर उठकर निर्वाण व निर्विकल्प समाधि की अवस्था में पहुँचने का प्रयत्न करते रहना चाहिए जहाँ से मनुष्य फिर इस भौतिक जगत् में नहीं लौटता और वहाँ शाश्वत् शान्ति व सुख का उपभोग करता है। उसके जीवन का यही परम ध्येय होना चाहिए।

राज योग

राज योग का अधार भूत ग्रन्थ है पातंजलि य़ोग सूत्र। इसमें चार पाद् वर्णित है। (१) समाधि पाद् (२) साधन पाद् (३) सिद्धि पाद् और (४) कैवल्य पाद्। अष्टांग योग साधन करके शरीर के भिन्न-भिन्न स्थानों में मन को संयम करें। इस संयम से भुवन ज्ञान, ताराव्यूह ज्ञान, काम व्यूह ज्ञान, क्षुत्पिपासा निवृत्ति, सिद्ध दर्शन और अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य ईशित्व, वशित्व आदि आठ सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, परन्तु यह सिद्धियाँ आत्मस्थिति में अन्तराय हैं। इसलिए विवेक ख्याति करके निर्विकल्प, समाधि सुख लाभ करना चाहिए यही परम उद्देश्य है। राज योग प्राणायाम है इसमें जो प्राणायाम बतलाया गया है उसको करते हुए, पूरक के समय बाह्य जगत् को अपने भीतर आकर्षण करें और कुम्भक करने में उसे अपने अन्दर धारण करें व रेचक के समय मन की सब द्वैत कल्पनाओं को निकाल बाहर करें। राज योगी देहत्व और मनस्तत्व तथा आत्मत्व को सम्यक् रूप से जानकर स्वरूप प्रतिष्ठा, 'स्वेमहिम्नि अवस्थित होकर अन्तर्न्द्रिय, बहिन्द्रिय और देह के ऊपर अधिकार प्राप्त करके, इन सब मन्त्रों को अपने-अपने कार्य में, भगवद् इच्छा पूरी करने में नियुक्त कर मुक्त राजा के समान विराजमान् होते हैं।

हठ योगी मृत्यु को नहीं जीत सकता लेकिन राज योगी समाधि में मृत्युंजय का संग पाकर मृत्यु को जीतकर इच्छा मृत्यु हो जाता है। हठ योगी नीरस और भक्ति शून्य हो सकता है परन्तु राज योगी आनन्दमय और भक्तिमान् होता है। हठ योगी अद्‌भुत शक्ति के शारीरिक चमत्कारों द्वारा मनुष्यों को चकित कर सकता है लेकिन राज योगी भक्ति द्वारा त्रिभुवन की तो गिनती ही क्या भगवान् तक को वशीभूत कर सकता है। इस प्रकार हठ योग निकृष्ट होने पर भी हठ योग के अभ्यास से राज योग में सहायता मिलती है। राज योग को जीवन का उद्देश्य बनाकर उसकी सिद्धि के लिए जो हठ योग का

अभ्यास करते हैं वे धन्य हैं। इसके अभ्यासी को पथ-पथ पर बाधाएँ आती हैं क्योंकि यम नियम के अभ्यास से नाना प्रकार की विभूतियों का विकास होता है जो साधक के पतन का कारण बन जाती हैं और इसीलिए समाधि सिद्धि में बाधा पड़ती है।

स्मृति शास्त्र में राज योग और उसके साधन क्रम के विषय में ऐसा कहा गया है कि सृष्टि, स्थिति और लय का कारण अन्तःकरण ही है, उसकी सहायता से जिसका साधन किया जाता है उसको राज योग कहते हैं। (१) मन, (२) बुद्धि (३) चित्त और (४)अहंकार यह अन्तःकरण के चार भेद हैं। अन्तःकरण दृश्य और आत्मा दृष्टा है। अन्तःकरण रूपी कारण दृश्य से जगद्रूपी कार्य दृश्य का कार्य-कारण सम्बन्ध है। दृश्य से दृष्टा का सम्बन्ध स्थापित होने पर सृष्टि होती है। चित्तवृत्ति का चांचल्य ही इसका कारण है। वृतिजय पूर्वक स्वःस्वरूप का प्रकाश करना राज योग कहलाता है। राज योग साधन में विचार बुद्धि का प्राधान्य रहता है। विचार शक्ति की पूर्णता द्वारा राज योग का साधन होता है। राज योग के ध्यान को ब्रह्म ध्यान कहते हैं। राज योग की समाधि को निर्विकल्प समाधि कहते हैं। राज योग में सिद्धि प्राप्त महात्मा को 'जीवन मुक्त' कहते हैं।

महाभाव (मंत्र योग की समाधि) प्राप्त होगी, महाबोध (हठ योग की समाधि) प्राप्त होगी व महालय (लय योग की समाधि) प्राप्त होगी। तत्त्व ज्ञान की सहायता से राज योग-भूमि में अग्रसर होते हैं। भजन, कर्म और ध्यान इसके भेद हैं, भजन का अभिप्राय यह है कि मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक सप्तलोक व्याप्त प्रकाश रूप एक दंड है, उसमें जलज , उद्रिज, जारज, देव, दानव व मानव सब एक पर एक अपने तेजोरूप दंड में रहते हुए समाविष्ट हैं, इस प्रकार की भावना करें। कर्म का अभिप्राय है कि मैं ब्रह्म शक्ति सम्पन्न हूँ, ऐसा जप करें, ध्यान का अभिप्राय है।

शुद्धमात्मामखिलं शुद्ध ज्ञान तपोमयम्।
शुद्धेन्द्रिय गुणोपेतं परं तत्त्वं विभावये॥

यह कहते हुए भ्रूमध्य में शुभ कमल के मित्र परम पुरूष का ध्यान करें। राज योग सब साधनों में श्रेष्ठ है और साधन की चरम सीमा है इसीलिए ही इसे राज योग कहते है।

षोड़श कला से पूर्ण राज योग के षोड़श अङ्. है। राज योग के साधनों को शास्त्रों में सोलह अङ्गों में विभक्त करके वर्णन किया गया है जो कि आगे लिखे अनुसार है। सप्तज्ञान भूमिकाओं के अनुसार इसके सात अङ्ग है। यह सब विचार प्रधान हैं। उनके साधन अनेक प्रकार के हैं। धारणा के अङ्ग दो हैं। एक प्रकृति धारणा, दूसरी ब्रह्म धारणा। ध्यान के तीन अङ्ग हैं, विराट् ध्यान, ईश ध्यान और ब्रह्म ध्यान। ब्रह्म ध्यान में ही सबकी परिसमाप्ति है और समाधि के चार अङ्ग हैं। दो सविचार और दो निर्विचार । इस प्रकार राज योग षोड़श अङ्गों के साधन द्वारा राज योगी कृत कृत्य होता है। मंत्र योग, हठ योग, लय योग इन तीनों में सिद्धि लाभ के अनन्तर अथवा किसी एक में सिद्धि लाभ करने के पश्चात् साधक को राज योग का पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जाता है।

राज योग संहिता में लिखा है कि राज योग का साधन प्रथम अवस्था में धारणा और ध्यान भूमि से आरम्भ होता है और राज योग की साधन भूमि प्रधानतः समाधि भूमि ही है। समाधि में पहले वितर्क रहता है, तदनन्तर अग्रसर होने पर विचार रहता है। उसके आगे की अवस्था का नाम आनन्दानुगत अवस्था है और उससे भी आगे की अवस्था का नाम अस्मितानुगत अवस्था है। विशेष लिंग, अविशेष लिंग, लिंग और अलिंग। यह चार भेद दृश्य के हैं। अलिंग तक त्यागने योग्य हैं। मैं ब्रह्म हूँ यह भाव भी निर्विकल्प समाधि में नहीं रहता। जब कोई द्वैतभाव व कोई विकल्प शेष न रहे वही तुरीया अवस्था है।

समाधि भूमि का साधन क्रम शक्ति में ज्ञात नहीं हो सकता। जिनको अपरोक्षानुभूति हुई है ऐसे जीवन युक्त गुरु ही उसका भेद बतला सकते हैं।

राज योग के साधन क्रम की समालोचना करने से यही सिद्ध होता है कि प्रथम परम भाग्यवान् राज योगी, दर्शनोक्त सप्तज्ञान भूमि को, एक के बाद दूसरे को, इस तरह क्रमशः अतिक्रम करता हुआ जैसे मनुष्य सोपान द्वारा छत पर चढ़ जाता है, उसी प्रकार सप्तज्ञान भूमियों का रहस्य समझ जाता है। यही राज योग सोलह अङ्गों में से प्रथम सप्तांग का साधन क्रम है। उसके अनन्तर वह सौभाग्यवान् योगी सत् और चित् भावपूर्ण प्रकृति- पुरुषात्मक दो राज्य के दर्शन करके उनकी धारणा से अनन्तर रूपमय प्रपञ्च की विस्मृति सम्पादन करने में समर्थ होता है।

यही राज योग के अष्टम और नवम अङ्ग का साधन क्रम है, उसके अनन्तर वह योगिराज परिणामशील प्रकृति के स्वरूप को सम्पूर्ण रूप से जानकर ब्रह्म ईश या विराट् रूप में अद्वितीय ब्रह्म सत्ता का दर्शन करके ध्यान भूमि की पराकाष्ठा में पहुँच जाता है। यही राज योग सोलह अङ्गों में से दशम, एकादश, द्वादश अङ्ग का साधन क्रम है। उसके पश्चात् परम भाग्यवान् योगाचार्य यथाक्रम वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनंदानुगत और अस्मितानुगत इन चारों आत्मज्ञान युक्त (यह चारों समाधि की दशायें पूर्व कथित मंत्र, हठ व लय योग युक्त महाभाव, महाबोध, महालय समाधि से विभिन्न हैं) समाधि दशाओं का अतिक्रमण करते हुए स्व स्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं। इसी दशा को जीवन मुक्त दशा कहते हैं, यही सब प्रकार के योग साधनों का अन्तिम लक्ष्य है। यही उपासना राज योग की परिधि और यही वेदांत का चरम सिद्धान्त है।

मंत्र योग, लय योग व हठ योग का फल राज योग है। कर्म योग, भक्ति योग और ध्यान योग भी राज योग के अंग हैं। सब योग

साधनों में यह श्रेष्ठ है इसीलिए इसे सब योगों का राजा अर्थात् राज योग कहते हैं।

योग के क्रियात्मक भाग की सभी शाखाओं में 'राज योग' का सम्बन्ध केवल मनः शक्ति से है। इसे हम क्रियात्मक मनोविज्ञान कह सकते है। इसका उद्देश्य है सभी प्रकार की मानसिक बाधाओं को हटाकर मन को पूर्ण तथा स्वस्थ संयमी बनाना। इसके अभ्यास का अभिप्राय है इच्छा शक्ति को जगाना तथा उसे बलवती बनाना। इसके साथ ही धारणा शक्ति को जागृत करके राज योग के साधक को ध्यान और धारणा के द्वारा सभी धर्मों के चरम उद्देश्य की प्राप्ति करा देना। राज योग की शिक्षा यह है कि संसार की सर्वोपरि शक्ति मन है। यदि मन की शक्तियों को पूरी तरह समाहित करके किसी वस्तु विशेष पर केन्द्रीभूत कर दिया जाय तो उस वस्तु की वास्तविक सत्ता प्रकट हो जायेगी। यदि हम एक बिन्दु पर अपनी समग्र मनःशक्ति को एकाग्र कर सकें तो हम सहज ही उस वस्तु विशेष की, जिस पर हमने अपनी वृत्तियों को एकाग्र किया है, सारी विशेषताएँ जान जाएँगे चाहे वह वस्तु भौतिक, मानसिक या आध्यात्मिक हो। राज योग की साधना का उद्देश्य आत्मा के रहस्य का उद्घाटन करना व प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर छिपी हुई शक्तियों को जागृत करना है। राज योग के अभ्यास से वह शक्ति प्राप्त होती है जो संसार की अन्य सभी शक्तियों का नियंत्रण करने वाली है। राज योग का सारांश यह है कि जिसने अपने मन पर विजय प्राप्त कर ली वह प्रकृति के समस्त व्यापारों पर शासन कर सकता है। योग की इस साधन प्रणाली को राज योग अथवा सर्वश्रेष्ठ मार्ग कहते हैं। धारणा शक्ति और इच्छा शक्ति सभी प्रकार की भौतिक शक्तियों से श्रेष्ठ है। यही कारण है कि यूरोप के बड़े-बड़े विद्वानों ने भी इसकी प्रशंसा की है।

राज योगियों के चार प्रकार

योगी भी चार प्रकार के होते हैं (१) प्रथम कल्पित (२)मधु

भूमिक (३) प्रज्ञाज्योति: (४) अतिक्रान्तभणनीय।

(१) प्रथम कल्पित

यह बिल्कुल नौसिखुए होते हैं। इनमें प्रकाश की झलक मात्र दिखाई देती है। इनको सिद्धियाँ प्राप्त नहीं होती। ये लोग सवितर्क समाधि का अभ्यास करते हैं।

(२) मधु भूमिक

ये लोग निर्वितर्क समाधि में प्रवेश कर ऋतम्भरा प्रज्ञा को प्राप्त किये हुए रहते हैं। इस भूमिका को मधुमती भूमिका कहते हैं। इसके अन्दर वह ज्ञान प्राप्त होता है जो मधु के समान आनन्द दायक व तृप्तिकारी होता है।

(३) प्रज्ञाज्योति

ये पंच महभूतों और इन्द्रियों को जीते हुए रहते हैं। ये लोग देवताओं के प्रलोभन में भी नहीं आते। इस अवस्था का नाम मधु प्रतीक है।

(४) अतिक्रान्तभणनीय

यह योगी 'विशोका' और 'संस्कार शेषा' नामक भूमिकाओं पर आरूढ़ होते हैं। यह कैवल्यपद को प्राप्त होते हैं।

राज योगी बिना संयम किए ही प्रतिभा से सारी सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता है। उच्चतम ज्ञान का नाम 'प्रसंख्यान' है। जो विवेकख्याति अर्थात् प्रकृति और पुरुष के भेद ज्ञान से उत्पन्न होता है।

इस ज्ञान के प्राप्त हुए योगी के अन्दर अब 'धर्म मेघ' समाधि का उदय होता है। उस पर वैराग्य की प्राप्ति होती है। वह सब प्रकार की सिद्धियों से, यहाँ तक कि सर्वज्ञता एवं सर्वशक्तित्त्व आदि से भी मुँह मोड़ लेता है, क्योंकि वह जानता है कि यह सारी सिद्धियाँ

सर्वोच्च समाधि की प्राप्ति में अन्तराय रूप ही है। तब उसे असम्प्रज्ञात समाधि सिद्ध होती है, जिसमें जन्म मृत्यु के कारण भूत सारे संस्कार निःशेष रूप से दग्ध हो जाते हैं।

इस स्थिति को प्राप्त योगी बिना नेत्रों के देखता है, बिना जिह्वा के रस स्वाद करता है, बिना कानों के सुनता है, बिना नाक के सूँघता है और बिना त्वचा के स्पर्श करता है। वह संकल्प मात्र से अगणित चमत्कार कर सकता है। उसकी इच्छा मात्र ही से सब कुछ हो जाता है। इस स्थिति का वर्णन तैत्तिरीय आरण्यक (१/२५) में है।

मन के शांत होने पर प्राण भी शांत हो जाता है, परन्तु प्राण का निरोध करने पर भी मन की चंचलता पूर्ण रूप से दूर नहीं होती इसीलिये राज योग में प्राण का निग्रह न करके सीधे मन का निरोध किया जाता है जिससे प्राण का निरोध हठ के बिना ही हो जाता है। हठ योग का प्राणायाम रेचक, पूरक, कुम्भक है परन्तु राज योग प्राणायाम केवल कुम्भक है। हठ योग का प्राणायाम सर्वत्र प्रचलित है परन्तु राज योग के प्राणायाम का प्रचार नहीं है। हठ योग की समाधि जड़ कहलाती है और राज योग की चैतन्य । जड़ समाधि से विशेष लाभ नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता अ0 ६/४६ ४७ व अ. १८/५१, ५४ में राज योग का ही उपदेश दिया है।

लय योग

समस्त कामना, वासना, आसक्ति तथा संकल्प-विकल्प के जाल से मुक्त होकर, चित्त को वृत्ति शून्य बनाकर शांत अवस्था प्राप्त करने की चेष्टा करने को लय योग कहते हैं। लय योगियों का विश्वास है कि स्वयं प्रकाश,आत्मतत्त्व शुद्ध, शांत चित्त में स्वयं स्फुरित होता है।

सृष्टि के आरम्भ में स्वयं प्रकाश, अखंड, एक रस, एक ही अद्वैत ब्रह्म था, उसके सिवा दूसरा कोई भी न था, 'स्पन्दन' और 'अस्पन्दन' नामक दो शक्तियाँ शिवरूप इस बह्म में निगूढ़ थीं। प्राणियों के कर्मविपाक के द्वारा लय के बाद सृजन होता ही हैं। इस नियम के अनुसार ब्रह्मा में स्वभावत: संकल्प स्फुरित हुआ 'बहुस्यां प्रजायेय', बहुत होऊँ, सृष्टि करूँ। संकल्प की स्फुरणा मात्र से ही, ईक्षणा मात्र से ही, स्पन्दन और अस्पन्दन शक्तियों का संयोग हुआ और एक महाशक्ति उत्पन्न हुई, गुणत्रय की साम्यावस्था रूप जड़ चेतन विभागमयी वह महाशक्ति ही प्रकृति है। दर्पण में जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है वैसे ही चिदात्मा के प्रकृति में प्रतिबिम्ब होते ही, प्रकृति के दो रूप हो गए। स्पन्दनांशमय प्रकृति का जड़ अंश 'परा प्रकृति' कहलाया और अस्पन्दनांश चेतन अंश के रूप में 'परा प्रकृति' माना गया। शास्त्रीय परिभाषा में प्रकृति अस्पन्दनांश को 'पर प्रणव' और अस्पन्दनांश को 'अपर प्रणव' कहते हैं। पर प्रणव वाच्य और अपर प्रणव वाचक है। वाच्य प्रणव अपवाद रूप है और वाचक प्रणव अध्यारोप रूप है। इस वाच्य और वाचक प्रणव के संयोग से एक महाशक्ति उत्पन्न होती है जो विवृच्छक्ति कहलाती है।

यह विवृच्छक्ति जगत् की उत्पत्ति का कारण है। परब्रह्म की ईक्षणाशक्ति जगत् का महा कारण है। ईक्षणाशक्ति द्वारा ही विवृच्छक्ति प्रेरित होती है और सृष्टि संकल्प करती है। सृष्टि संकल्प की इस विधि का शास्त्रीय नाम पर्यालोचना है।

पर प्रणव की संज्ञामात्र से अर्थात् पर प्रकृति की सन्निधि से अपर प्रणव अर्थात् अपरा प्रकृति में संकल्पनिवृत्ति प्रारम्भ हुई और वह अकार, उकार और मकार के तीन रूपों में विभक्त हो गई।

सूर्य एक होते हुए भी अनेक स्थलों में प्रतिबिम्बित हो सकता है उसी प्रकार परब्रह्म अद्वय होते हुए भी प्रकृति जन्य विभक्ति के द्वारा

तीन महा शक्तियों के रूप में भासमान् होता है। ब्राह्मी, वैष्णवी और माहेश्वरी शक्ति के रूप में यह तीनों महा शक्तियाँ जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय का कारण बनीं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर यह इन तीनों शक्तियों के अधिष्ठाता देव हैं। यह तीनों महाशक्तियाँ 'सृष्टि संकल्प शक्तय:' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

इनमें से प्रत्येक शक्ति में परब्रह्म के ईक्षण द्वारा प्रवृत्त हुई विवृच्छक्ति की प्रेरणा से कितने ही विशिष्ट प्रकार के संक्षोभ होने लगे इस संक्षोभ के परिणाम से अकार में से एक सूक्ष्म शब्द उत्पन्न हुआ, उकार में से एक स्थूल शब्द उत्पन्न हुआ और मकार में से एक अत्यन्त स्थूल शब्द उत्पन्न हुआ। इस शब्द को यौगिक विज्ञान में 'नाद' नाम से पुकारा जाता है।

प्रवण के अ-उ-म् इन अङ्गों से उद्भूत इन महा शक्तियों से क्रमश: मनो बीच, प्राण बीच और अहं बीच रूप में सृष्टि, स्थिति और प्रलय के कारण बीज प्रकट हुए। सूक्ष्म शब्द शक्ति को सृष्टि बीच कहा जाता है और नादशास्त्र की परिभाषा में मनो बिन्दु कहते हैं। स्थूल शब्द प्राण बिन्दु है। प्राण बिन्दु ही सृष्टि का स्थित बीज है। अत्यन्त स्थूल शब्द को शास्त्र में अहं बिन्दु कहा है। अहं बिन्दु ही सृष्टि का लय बीज है।

सूक्ष्म शब्द ब्रह्म है, इस शब्द में रहने वाली सूक्ष्म नाद शक्ति ब्राह्मी शक्ति है। परब्रह्म की ईक्षणाशक्ति द्वारा विवृच्छक्ति में यह ब्राह्मी शक्ति सूक्ष्म नाद रूप में प्रकट होती है। यही शक्ति विश्व सृजन का कारण है।

स्थूल शब्द शक्ति में वैष्णवी शक्ति विराजमान है। उसका अधिष्ठाता विष्णु है। यही वैष्णवी शक्ति प्राण बिन्दु की उत्पति का आदि कारण है। प्राण को विष्णुयपदामृत कहा गया है। परब्रह्म की ईक्षणा शक्ति के प्रभाव से विवृत् शक्ति में जो स्थूल नाद उत्पन्न होता

है वही वैष्णवी शक्ति का प्राण है, यही शक्ति अखिल विश्व की स्थिति का कारण है।

अत्यन्त स्थूल शब्द में रहने वाली लय शक्ति का अभिमानी देवता महेश्वर हैं। परब्रह्म की ईक्षणा के परम प्रभाव से विवृच्छक्ति में जो अत्यन्त स्थूल नाद प्रकट होता है वही माहेश्वरी शक्ति का प्राण है। यही शक्ति विश्व प्रलय का महा कारण है।

मनो बीज, प्राण बीज और लय बीज प्रत्येक के आदि कारण रूप में निगूढ़ रहने वाली निनाद शक्ति का यौगिक विज्ञान में क्रमश: अ, उ, म् रूप सांकेतिक परिभाषा में वर्णन किया जाता है। इसी कारण प्रणव को परब्रह्म की सृष्टि संकल्प शक्तियों के समुच्चय के रूप में माना जाता है। परब्रह्म की इस त्रिमूर्ति रूप विभूति को ही ईश्वर कहते हैं, इसी कारण प्रणव को ईश्वर का वाचक कहा जाता है।

प्रणव का जप उसके अर्थ की भावना के साथ करना चाहिए। इस भावना में ध्यान की एकाग्रता आवश्यक है। यह एकाग्रता नादानुसन्धान से सहज ही सिद्ध हो सकती है।

जिस प्रकार वटवृक्ष के एक छोटे से बीज से वट का एक महावृक्ष उत्पन्न हो जाता है उसी प्रकार मनोबिन्दु रूपी सृष्टि गर्भ से अन्न और अन्नाद रूप में चित्र विचित्र नाम रूपात्मक स्वरूपों में विश्व की उत्पत्ति हुई है।

इस मनो बिन्दु अथवा सृष्टि बीज गर्भ को स्थूल शब्द या प्राण बीज अपनी शक्ति से अपने में आकर्षण कर उसी में तद्रूप होकर स्वयं ही पुनः स्वयं कल्पित सृष्टि के उपभोग द्वारा तत्त्व सम्बन्ध जन्य सुख दुःखादि का अनुभव करने लगा।

अत्यन्त स्थूल शब्द अथवा अहंबिन्दु सूक्ष्म शब्द जनित और स्थूल शब्द में प्रत्युत्पन्न इस प्रकार दोनों ही प्रकार की सृष्टि के साथ सूक्ष्म और स्थूल शब्द बीजों को अपने तेज़ से अपने में आकर्षित करके प्राण बिन्दु ज्योति में संलीन होकर उपभोग करने लगा।

प्राण बिन्दु को अपनी वृत्ति के साथ इस प्रकार उपभोग करता हुआ उसमें विराजमान जीवात्मा (चिदाभास) पर प्रणव के आश्रय से पूर्वानुभव के द्वारा ब्रह्म संस्पर्श का अनुभव करने जाता है, परन्तु वृत्ति के आवरण के कारण स्वरूप सत्य का भान उसे नहीं होता।

पूर्व जन्म के कर्मों का परिपाक पूर्ण हो जाने पर प्राण बिन्दु में रहने वाले स्थूल में क्षोभ उत्पन्न होता है अर्थात् वह अपने अंश रूप वृत्ति का संचालन कर उसको अपने में खींच लेता है, इस समय चिदाभास के साथ वर्तमान वृत्ति पुनः शब्द में प्रवेश करती है।

चिदाभास के सान्निध्य मात्र से वह शब्द स्थूल में से अति स्थूल और उसमें से सूक्ष्म स्वभाव को पूर्ववत् प्राप्त होता है। यही उन्मनी अवस्था का मार्ग है। यही जीवात्मा के मोक्ष का (स्वरूप स्थिति का) क्रम है। लय योग का यही रहस्य है।

अपने स्वरूप में स्थित होना ही लय योग का परम रहस्य है। लय योग का मार्ग हठ योग की अपेक्षा सहज और भय रहित है। नाद बिन्दु, अमृत बिन्दु (ब्रह्म बिन्दु), ध्यान बिन्दु, तेजो बिन्दु आदि वैष्णव, शैव शक्ति मतानुसारी अनेकों उपनिषदों में इस योग का महत्व बतलाया गया है। सब का सार यह है कि मनो बिन्दु, प्राण बिन्दु, अहं बिन्दु, प्रभृति बिन्दु मात्र का स्वरूपानुसंधान पूर्वक संहार कर अर्थात् 'नाद' मय सारी भूमिकाओं का त्याग कर स्वरूप में स्थित कर उसी में लीन हो जाना लय योग अर्थात् नाद और बिन्दु का रहस्य है तभी साधक अपनी महिमा में स्वयं स्थित होकर स्वयं प्रकाशित होता है।

चिदाकाश में 'एकोऽहं बहुस्याम्' रूप स्पन्द हुआ। स्पन्द से नाद उत्पन्न हुआ । नाद उत्पन्न होने के लिये गति को उत्पन्न होना पड़ता है। विद्युत्प्रकाश होने के समय विद्युत्कण विलक्षण वेग से घूमा करते हैं। उनकी गति का वेग यदि नियमित हो तो वे अणुत्व

को प्राप्त होते हैं। वक्रगति और सरल गति से घूमने वाले विद्युत्कण ही शब्द रूप गति हैं। यह शब्द सामान्य मनुष्य के श्रवणेन्द्रिय को गोचर नहीं होता। जिनकी दिव्य श्रवणशक्ति जाग्रत हो चुकी है वे उस शब्द को सुन सकते हैं। यही क्यों बल्कि हमारी यह ग्रहमाला जिस विशिष्ट गति से अपने चारों ओर तथा सूर्य के चारों ओर घूमती है, उस गति से उत्पन्न होने वाली सूक्ष्म ध्वनियाँ भी उस पुरूष को अनुभूत होती हैं जिसकी श्रवणशक्ति जाग उठी है।

ऐसी ध्वनियाँ दो प्रकार की होती है। एक अनाहत ध्वनि और दूसरी आहत ध्वनि। यों ही उत्पन्न होने वाली आहत ध्वनि से कोई अर्थोत्पत्ति नहीं होती। अनाहत ध्वनि का अर्थ है 'सोऽहम्' ध्वनि यह ध्वनि पहले अव्यक्त रूप से आज्ञा चक्र में मनोऽनुभूत हुई, अनन्तर अनाहत चक्र में जाकर श्रवणेन्द्रिय का द्योतक हुई, परन्तु मात्रोत्पत्ति अनाहत चक्र पर अवलम्बित नहीं है।

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के पूर्व स्फोट हुआ अर्थात् महानाद उत्पन्न हुआ। परब्रह्म की इच्छा शक्ति ही स्फोट है और महानाद उसकी क्रिया शक्ति है। नाद के उत्पन्न होने के लिए गति का होना आवश्यक है और गति के होते ही प्रकाश उत्पन्न होता है। उष्णता के बिना गति उत्पन्न नहीं होती । उष्णता, नाद, और गति तीनों परस्पर सावेक्ष हैं जहाँ उष्णता होगी वहीं गति होगी और जहाँ गति होगी वहीं नाद होगा। उष्णता का दृश्य रूप प्रकाश है। महा नाद के साथ अक्षरोत्पत्ति हुई। परम शिव के डमरू से 'अ इ उ ण्' उत्पन्न हुए। अक्षर ही मातृकाएँ है। जो ब्रह्माण्ड में हैं। वही पिण्ड में हैं। इस न्याय से जीव की उत्पत्ति के साथ नाद, अक्षर और प्रकाश उत्पन्न हुए। मातृकाओं अथवा अक्षरों के साथ प्रकाश का साहचर्य अनिवार्य है। **'पंच-पंच ऊषः'** काल में नियत मानस होकर मध्यमा वाणी से नाम स्मरण करके, जिस नाड़ी से

योगश्वास चल रहा हो उस ओर अर्धोन्मीलित दृष्टि से ध्यान लगाने या छः महीने अभ्यास करने वाले को अपनी श्वास गति के साथ आने वाली प्रकाश किरणों का साक्षात्कार होता है। इसका अनुभव अभ्यास व एकाग्रता साधे बिना नहीं होता। यह प्रकाश कहीं कोटि सूर्य और कहीं कोटि चन्द्र के प्रकाश के सामन होता है। दाहिने नासारंध्र अर्थात् इड़ा (सूर्य नाड़ी) या बायें नासारंध्र पिंगला (चन्द्र नाड़ी) जिससे भी साधक अभ्यास करेगा, वैसा ही उसे अनुभव होगा।

साधक नाड़ी शोधन व प्राणायाम के झंझट में न पड़कर नाद साधन विधि से ही आत्मलीन होने का प्रयत्न करें। यह मार्ग सबसे सरल तथा विपद् शून्य है। इससे भी सुगमता के साथ दिव्य ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। वैसे तो नाद साधन के कई प्रकार हैं परन्तु उनमें चार मुख्य हैं । (1) शाम्भवी मुद्रा से ध्यान लगाना (2) खेचरी मुद्रा से रस स्वादन करना (3) भ्रामरी मुद्रा से नाद सुनना और (4) योग मुद्रा से आनन्द भोग करना। इन चार प्रकार के उपायों से लय योग की सिद्धि होती है।

योगियों ने लय योग में नादानुसन्धान, आत्म ज्योति दर्शन और कुण्डलिनी उत्थापन इन्हीं तीन प्रकार की क्रियाओं को श्रेष्ठ और सुख साध्य बतलाया है। इसमें कुण्डलिनी उत्थापन कुछ कठिन है। क्रिया विशेष का अवलम्बन कर मूलाधार को सिकोड़ कर जागती हुई कुण्डलिनी शक्ति को ऊपर उठाया जाता है। यह विषय किसी योग्य गुरु से ही सीखना चाहिए। आत्म ज्योति दर्शन व नादानुसंधान बहुत सरल है। कमज़ोर दिमाग़ वाले को आत्म ज्योति दर्शन का अभ्यास नहीं करना चाहिए। नाद साधन ही सबसे सुगम और विपद् शून्य है। इसके आविष्कर्ता परम योगी जगदगुरु भगवान् शिव हैं। जप से सौगुना अधिक फल ध्यान में व ध्यान की अपेक्षा कई गुना फल योग से होता है।

लय योग की सरल विधि

साधक को नियम से शुरू होकर योग साधन के स्थान पर उत्तर की दिशा की ओर मुँह करके आसन जमा कर बैठना चाहिए। जिनको निर्वाण मुक्ति की इच्छा हो उनको पूर्व दिशा की ओर मुँह करना चाहिए। जिस-जिस आसन का अभ्यास हो उसे वही आसन लगाकर मस्तक, गर्दन, पीठ और उदर को बराबर सीधा रखकर अपने शरीर को सीधा करके बैठना चाहिए। तत्पश्चात् नाभि मंडल में दृष्टि जमाकर कुछ देर तक पलक नहीं मारना चाहिए। नाभि मंडल में दृष्टि व मन लगाने से निश्वास धीरे-धीरे जितना कम होता जाएगा मन भी उतना ही स्थिर होता जाएगा। मन को स्थिर करने का ऐसा सरल उपाय दूसरा नहीं है। त्राटक योग से भी मन स्थिर होता है परन्तु अनियम से आँखें ख़राब होने का भय रहता है।

ऊपर लिखी विधि के समय यदि थोड़ी-थोड़ी वायु भी धारण की जाय तो नाद ध्वनि शीघ्र ही सुनाई पड़ती है। नाद की साधना करने पर ध्वनि सुनाई पड़ेगी। ऐसी ध्वनियाँ सुनते-सुनते कभी रोमांच हो जाता है, कभी सिर में चक्कर आने लगता है कभी कंठकूप जल से पूर्ण हो जाता है लेकिन साधक को इस ओर ध्यान न देकर अपना क्रम जारी रखना चाहिए और नाद की ध्वनि में मोहित न होकर शब्द सुनते-सुनते चित्त को लय कर देना चाहिए।

आत्म ज्योति दर्शन

इस प्रकार अभ्यास करते- करते हृदय के भीतर से अभूत पूर्व शब्द और उससे द्रुत प्रति शब्द सुनाई देगा। उस समय साधक को आँख बन्द करके अनाहत पद्म में स्थित वाण लिंग शिव के मस्तक पर निर्यात निष्कम्प दीप शिखा की भाँति ज्योति का ध्यान करना चाहिए। इसी प्रकार ध्यान लगाते-लगाते अनाहत मध्यस्थ प्रति ध्वनि के भीतर ज्योति दर्शन होगा। उस लौ के आकार में ज्योतिर्मय ब्रह्म में

साधक का मन संयुक्त होकर ब्रह्म रूपी विष्णु के परम पद में लीन
हो जाएगा। उस समय शब्द बन्द हो जाएगा तथा मन आत्म तत्त्व में
डूब जाएगा। साधक सर्व व्याधि से मुक्त होकर तेजोयुक्त हो अतुल
आनन्द का उपभोग करेगा। उस समय का वह भाव अनिर्वचनीय,
अवर्णनीय व उल्लेखनीय है।

नित्य नियमित रूप से इसी तरह नाभि स्थान में वायु धारण करने
से अग्नि स्थान में गमन करती है उस समय अपान वायु द्वारा शरीरस्थ
अग्नि क्रमशः उद्दीप्त हो उठती है। जिसकी पाचन शक्ति कम हो गई
हो अगर वह इस क्रिया को ठीक विधि से करे तो कुछ ही दिन में
शरीर का शोधन होकर पाचन शक्ति बढ़ जायेगी और पेट भी साफ़
हो जाएगा। इस नाद ध्वनि की साधना करते-करते अन्त में जो ॐकार
ध्वनि सुनने में आती है वह ध्वनि जब तक साधक जीवन धारण
करता है कभी बन्द नहीं होती। सदा सर्वावस्था में अर्थात् जागृत, स्वप्न
और सुषुप्ति में भी नाद ध्वनि चलती ही रहती है। शिव सँहिता में भी
मन को लय करने के लिए उत्तमोत्तम साधन नाद ही कहा है।

मन को लय करने के अनेक साधन है परन्तु उनमें
नादानुसन्धान ही उत्तम है। यदि वायु प्रकृति वाला साधक परमात्मा के
नाम का सद्‌गुरु के बतलाए हुए मार्ग से साढ़े तीन करोड़ जप कर ले
तो अनहद नाद प्रकट हो जाता है। जिसकी पित्त की प्रकृति होती है
उसकी नाड़ियाँ शीघ्र शुरू होने के कारण सवा करोड़ जप करने से
नाद प्रकट हो जाता है। नाद दस प्रकार का होता है। अभ्यास
करते-करते जब दसवाँ नाद जो कि कुछ लोगों के मतानुसार बादल
की गर्जना के तुल्य होता है प्रकट हो तब नौ नादों को छोड़ कर दसवाँ
ही सुनते रहना चाहिए। दसवें नाद की कंप अवस्था में प्राण वायु और
मन दोनों ही लय हो जावेंगे। मन पवन के लय हो जाने पर शेष ब्रह्म
पद ही है। ब्रह्म नाड़ी जिसे सुषुम्ना कहते हैं उसके भीतर प्राण वायु
के प्रवेश होने पर नाद का प्रकट होना आरम्भ होता है। धीरे-धीरे

अनहद को सुरत के बल से दाहिने कान से सुनते जाना चाहिए। अभ्यास की कंप अवस्था में फल यह होगा कि कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होकर ब्रह्म ज्ञान भी करा देगी और अन्त में वह भी ब्रह्म में लय हो जाएगी। जीव दशा नष्ट होकर ब्रह्म पद प्राप्त होगा। कुण्डलिनी जाग कर ब्रह्मग्रन्थि, विष्णु ग्रन्थि और रूद्र ग्रन्थि को भेद कर अनेक प्रकार के चमत्कार दिखाती है। योगाभ्यासी को सद्‌गुरु की शरण लेकर ही कुण्डलिनी जाग्रत करना चाहिए।

सन्त समाज का एक बड़ा भारी भाग अनाहत या अनहद नाद का उपासक है, कबीरदास जी, रैदास जी, नानक जी और राधास्वामी जी ने केवल अनहद योग का प्रचार किया है।

विराट् में छत्तीस मंडल हैं और सबका एक-एक शब्द है, परन्तु केवल इसका शब्द प्रकट स्वर में चालू है और शेष छब्बीस के शब्द स्वरूप से गुप्त आवाज़ में चालू रहते हैं इसलिए उनका स्वर केवल अनुभव के कान से सुनाई पड़ता है।

(१) अगर मृत्यु के समय किसी नाद को पकड़ लिया जाय तो मृतक की आत्मा उसी मंडल में जा पहुँचेगी।

(२) नाद के साधक को यमदूत नहीं पकड़ सकते क्योंकि यह मंडल यमलोक से ऊँचे है।

(३) नाद के अभ्यासी की बुद्धि विकसित होती रहती है उसकी समझ में सत्य का प्रकाश आने लगता है।

(४) नाद के अभ्यासी को एकदम किसी न किसी स्वर्ग के मंडल में स्थान मिल जाता है। जिस स्वर को रूह पकड़ेगी उसी मंडल की सरकार में वह जा पहुँचेगी और पुण्य क्षीण होने पर पाप भोगने के लिए वह इसी भूमि पर उतार दिया जाएगा।

(५) नाद के अभ्यासी पर कामादि पाँचों शैतानी तत्त्व अपना प्रभाव कम डाल पाते हैं।

नाद का अभ्यास

प्रातः काल शौचादि से निवृत्त होकर किसी एकांत स्थान में चले जाओ। वहाँ शवासन में यानी सीधे लेट जाइए। हाथ के दोनों अँगूठों से दोनों कान पूरी तौर से बन्द करिए। अपने ही घर में शब्द सुनाई पड़ने लगेगा दाहिनी ओर के शब्द सुनना चाहिए बाईं ओर के शब्द माया के होने के कारण त्याज्य है।

अनाहद नाद

नं.	मंडल का नाम	स्वर है या शब्द	शब्द की उपमा
१	संहार देव का लोक	शब्द	पायजेब कैसी झंकार
२.	पालक देव का लोक	शब्द	सागर कैसी लहर
३.	सृजक देव का लोक	शब्द	मृदंग ध्वनि
४	सहस्रदल कमल	शब्द	शंख ध्वनि
५	आनन्द मंडल	शब्द	तुरही ध्वनि
६	चिदानंद मंडल	शब्द	मुरली ध्वनि
७	सच्चिदानंद मंडल	शब्द	बीन की ध्वनि
८	अखंड अर्द्ध मात्रा	शब्द	सिंह गर्जन ध्वनि
९	अगम मंडल	शब्द	नफीरी की ध्वनि
१०	अलख मंडल	शब्द	बुलबुल की ध्वनि

उपर्युक्त १० मंडल अपरा के और शेष २६ मंडल परा के इलाके में हैं।

कान बन्द कर लेने पर जो दस प्रकार के शब्द सुनाई पड़ते है, वे सूक्ष्म आकाश तरंगों के शब्द अथवा भुवलोक के शब्द हैं। यह भौतिक व भुवलौकिक हैं, यथार्थ अनाहत अथवा सार शब्द या परम नाद नहीं है। इन शब्दों के सुनने से किसी-किसी मस्तिष्क में गर्मी आ जाती है और किसी-किसी का अपने ऊपर से प्रभुत्व जाता रहता

है और वह भुवलोक के माया जाल में फँस जाता है। अतएव किसी अनुभवी पुरूष के तत्वावधान में इसका अभ्यास करना चाहिए।

अँगिरा, याज्ञवल्क्य, कपिल, पतंजलि, वशिष्ठ, कश्यप और वेद व्यास आदि महर्षियों की कृपा से परम मंगलकारी तथा मन और वाणी से अगोचर ब्रह्मपद प्राप्ति के कारण लय योग का सिद्धांत संसार में प्रकट हुआ।

प्रकृति पुरूष श्रृंगार से उत्पन्न हुए, ब्रह्मांड और पिंड दोनों एक ही हैं। समष्टि और व्यष्टि सम्बन्ध के ब्रह्मांड और पिंड एकत्व सम्बन्ध से युक्त हैं। अत: देवता, ऋषि, पितर, ग्रह, नक्षत्र, राशि, प्रकृति पुरूष सबका स्थान समान रूप से ब्रह्मांड और पिंड में है।

पिंड ज्ञान से ब्रह्मांड ज्ञान होता है। श्री गुरुदेव द्वारा शक्ति सहित पिंड का ज्ञान प्राप्त करने के अनन्तर सुकौशल पूर्ण क्रिया द्वारा प्रकृति को पुरूष में लय करने से लय योग कहलाता है। पुरुष का स्थान सहस्रार में है और कुल कुण्डलिनी नाभि महाशक्ति आधार पद्म में सुषुप्त हो रही है। उसके सुप्त रहने से ही वहिर्मुखी सृष्टि क्रिया होती है। योगाभ्यास द्वार उसको जाग्रत करके पुरुष के पास ले जाकर लय कर देने पर योगी कृतकृत्य होता है। इसी का नाम लय योग है।

योग तत्त्वज्ञ महर्षियों ने लय योग के नौ अंग बतलाये हैं। (१) यम (२) नियम (३) स्थूल क्रिया (४) सूक्ष्म क्रिया (५) लय क्रिया (६) प्रत्याहार (७) धारणा (८) ध्यान (९) समाधि।

स्थूल शरीर प्रधान क्रिया को 'स्थूल क्रिया' और वायु प्रधान क्रिया को 'सूक्ष्म क्रिया' कहते हैं। बिन्दुमय प्रकृति, पुरूषात्मक ध्यान को 'बिन्दु ध्यान' कहते हैं। यह ध्यान लय योग का परम सहायक है। लय योगानुकूल अति सूक्ष्म व सर्वोत्तम क्रिया, जो केवल जीवन मुक्त योगियों के ही उपदेश से प्राप्त होती है। वह 'लय क्रिया' कहलाती है। लय क्रिया के साधन द्वारा प्रसुप्त कुल कुंडलिनी नाम महाशक्ति

प्रबुद्ध होकर ब्रह्म में लीन होती है। इनकी सहायता से जीव शिवत्व को प्राप्त होता है। लय क्रिया की सिद्धि से महालय रूपी समाधि की उपलब्धि होती है, जिससे साधक कृतकृत्य हो जाता है।

बहिरिन्द्रियों को वश में करने के साधन को 'यम' व अन्तरिन्द्रियों को वश में करने के साधन को 'नियम' कहते हैं। हठ योग की तरह तैतीस आसनों में से कुछ आसनों, पच्चीस मुद्राओं में से कुछ मुद्राओं का साधन यह सब लय योग की 'स्थूल क्रिया' कहलाती है। इसी प्रकार हठ योग के आठ प्राणायामों में से कुछ प्राणायाम और स्वरोदय आदि की क्रियाएँ लय योग के अनुसार 'सूक्ष्म क्रिया' कहलाती है। सूक्ष्म क्रिया के साथ स्वरोदय साधन का, प्रत्याहार के साथ नादानुसंधान का और धारणा के साथ षट्चक्र भेदन का सम्बन्ध है।।

स्वरोदय के द्वारा बहुत सी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। लय योग का पंचम साधन प्रत्याहार है, जो केवल मन की सहायता से किया जाता है। प्रत्याहार की सिद्धि प्रारम्भ होते ही योगी नाद का सुनना प्रारम्भ कर देता है। लय योग के आठवें अङ्ग में योगी शरीर के अन्दर के षट्चक्रों को जानता है और उनकी सहायता से साधन का अभ्यास करता है, योगाचारियों का मत है कि मेरुदंड से लेकर मस्तक तक सात ऐसे स्थान हैं जिनकी सहायता से योगी प्रकृति शक्ति को नीचे से ले जाकर ऊपर सातवें सहस्र दल के स्थान में शिवशक्ति का संयोग करके मुक्ति प्राप्त करता है। यह साधन धारणा-साधन प्रारम्भ होकर समाधि सिद्ध तक सहायता करता है, लय योग के ध्यान का स्थान 'बिन्दु स्थान' है। इसका साधन करते-करते योगी प्रकृति के सूक्ष्म रूप का बिन्दु रूप में दर्शन करता है। उसी का ध्यान बढ़ाते-बढ़ाते और उसके साथ लय योग की कुछ और भी क्रियाएँ जो श्री गुरुमुख से प्राप्त होती है, उनका साधन करते-करते योगी अन्तिम क्रिया समाधि को प्राप्त कर लेता है। लय योग की समाधि को महालय कहते हैं। लय योग की विशेषता के सम्बन्ध में स्वरोदय की क्रियाएँ, षट्चक्र के भेदन की

क्रियाएँ और अन्यान्य क्रियाएँ जैसे व्योम जपी, सुरभि जपी, अज्या आदि हैं, जिनके विषय में लय योग सँहिता में निम्नलिखित वर्णन है।

जो सूक्ष्म योग क्रियाएँ ध्यान की सिद्धि कराकर साधक की समाधि सिद्धि में सहायक होती हैं, उन अलौकिक भावपूर्ण अति गोप्य और अति दुर्लभ उक्त क्रियाओं का महर्षियों ने लय क्रिया के नाम से वर्णन किया है। लय क्रिया ही लय योग का प्राण है और समाधि सिद्धि का कारण है। षट्चक्र, षोडश आधार से अतीत व्योम पंचम और उनचास पीठ इनको जानने से लय योग में सिद्धि प्राप्त होती है। लय क्रिया के द्वारा ध्यान सिद्धि, समाधि सिद्धि और आत्म साक्षात्कार होता है। मंत्र योग में जैसे रूप कल्पना द्वारा ध्यान किया जाता है लय योग में वैसी कल्पना नहीं की जाती। लय योग का योगी, योग साधन के द्वारा अन्तर्जगत् में एक अलौकिक बिन्दु का दर्शन करता है। उसी को स्थिर रखकर उसी में परमात्मा के ध्यान करने को 'बिन्दु ध्यान' कहते हैं। यही लय योग की विशेषता है। लय योग की दूसरी विशेषता यह है कि लय योगी यदि चाहे तो सारे ब्रह्मांड को अपने शरीर में देख सकता है क्योंकि लय योग सिद्धांत के अनुसार समष्टि रूपी ब्रह्मांड का व्यष्टि रूपी मनुष्य पिंड पूरा नमूना है। लय योग की सहायता से ही प्राचीन काल के महर्षिगण इस मृत्युलोक में बैठकर ब्रह्मांड का पता लगा लेते थे।

अनाहद शब्द

इसमें पद्मासन या सिद्धासन व सुखासन में बैठकर षण्मुखी (वैष्णवी) मुद्रा का साधन किया जाता है व दाहिने कान से अनाहत शब्द सुना जाता है। इन्द्रियों का स्वामी मन है, मन का स्वामी प्राण और प्राण का स्वामी मन का लय है। मन का लय नाद के श्रवण से होता है अर्थात् षण्मुखी मुद्रा में अपने दोनों अँगूठों से कान, दोनों

तर्जनियों से आँख, दोनों मध्यमाओं से नाक व बाकी अँगुलियों से मुँह बन्द करके आधी रात्रि के बाद आन्तट् शब्द में मन को लगाना मन को लय करना है। योगवाशिष्ट व हठ योग प्रदीपिका में लय योग का विस्तारपूर्वक वर्णन है।

कानों को उँगलियों या मोम से बन्द करके भी अनाहत शब्द सुनने का अभ्यास किया जाता है। अभ्यास करने पर पहले समुद्र व मेघ गर्जन व अग्नि जलने का शब्द सुनाई देगा, फिर आरती की घंटी। इस तरह दस प्रकार के शब्द सुनाई देंगे। फिर विराम अर्थात् ठहरो, फिर सिंह नाद, फिर धीमा और दूर पर बंशी नाद फिर समीप सुनाई देगा, किन्तु इस बंशी ध्वनि को अधिक नहीं सुनना चाहिए क्योंकि इसमें लय होने की सम्भावना है। पीछे सोऽहं शब्द बहुत धीमे फिर सी-सी जैसा शब्द और अन्त में ॐका शब्द सुनाई देगा। इसके बाद पवित्र ज्योति दिखलाई पड़ेगी जिसमें सिद्ध महात्मा गण दिखेंगे, फिर रक्त हंस दिखाई देगा, तत्पश्चात् आत्म दर्शन होगा। अन्त में शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास किया जाता है। इस अभ्यास को करने वाला साधक कुछ समय तक अभ्यास करने के बाद दस बारह घंटे तक बीमार पड़ेगा जिसमें ज्वर, दस्त व कम्प होते हैं इससे भय नहीं करें। बीमारी स्वयं चली जाती है।

पायु गुदा से दो अँगुल ऊपर और उपस्थ जननेन्द्रिय से दो अँगुल नीचे चतुर्ड़्.गुल विस्तृत समस्त नाड़ियों का मूल स्वरूप पक्षी के अंडे की तरह एक कंद है जिसे मूलाधार कहते हैं, विद्यमान है। जिसमें वे बहत्तर हज़ार नाड़ियाँ निकलकर सारे शरीर में व्याप्त हैं। जिसमें से इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना मुख्य हैं। मूल से उपस्थित इड़ा और पिंगला मेरुदंड के वाम और दक्षिण भाग में समस्त पद्मों को वेष्टन करके आज्ञाचक्र पर्यंत धनुषाकार से जाकर भ्रू मध्य से ऊपर ब्रह्मरंध्र मुख में संगत हो नासारंध्र में प्रवेश करती हैं। भ्रू मध्य में जहाँ इड़ा और पिंगला मिलती हैं वहीं पर मेरु मध्यस्थित सुषुम्ना भी जा मिलती है। इसीलिए यह स्थान त्रिवेणी कहलाता है क्योंकि शास्त्रों में इन तीनों नाड़ियों को

गंगा,यमुना और सरस्वती कहा है।

इड़ा भोगवती गंगा, पिंगला यमुना नदी।
इड़ा पिंगलयोर्मध्ये सुषुम्ना च सरस्वती॥

इस त्रिवेणी में योगबल से योगी अपनी आत्मा को स्नान करा सकता है।

त्रिवेणी योगःसा प्रोक्ता तत्र स्नानं महाफलं।

इस शास्त्रीय वचन के अनुसार उसको मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्रणवाकृति सुषुम्ना, धनुषाकार इड़ा और पिंगला के बीच में से मेरुदंड के अन्त तक जाकर उससे पृथक् हो चक्राकार को धारण करके भ्रू युगल के ऊपर इड़ा और पिंडला के साथ ब्रह्मरंध्र मुख में संगता हो ब्रह्मरंध पर्यंत आती है। पिंगला के समान सुषुम्ना भी मूलकंद से निर्गत हो ब्रह्मरंध्र पर्यंत गया है।

इस प्रकार मूलकंद से लेकर ब्रह्मरंध्र पर्यंत विस्तृत सुषुम्ना नाड़ी की छःग्रन्थियाँ हैं जो षट्चक्र कहलाती हैं। योग क्रिया द्वारा मूलाधार स्थित निद्रित कुल कुण्डलिनी को जागृत करके इन छः चक्रों के द्वारा सुषुम्ना पथ में प्रवाहित करके ब्रह्मरंध के ऊपर सहस्रदल कमल स्थित परम शिव में लय कर देना ही लय योग का उद्देश्य है।

इस सम्प्रदाय में यह बतलाया गया है कि सहस्रार चक्र में कामेश्वरी और कामेश्वर का ध्यान करें। यह आद्यगुरु हैं इसलिए इनका स्थान सहस्रार के अन्त में श्री गुरुपादुका ही बताया है। लय योग में कुण्डलिनी का जागना केवल गुरु कृपा से ही होता है। इसलिए इस सम्प्रदाय में गुरु ही मुख्य देवता माने गये हैं। श्री गुरु ही स्पर्श दीक्षा और फिर दिव्य दीक्षा शिष्य को देते हैं। दीक्षा होने पर एक क्षण में ही शिष्य की कुण्डलिनी जाग उठती है। उसके जागने पर मूलाधार से सहस्रार पर्यन्त सम्पूर्ण शरीर प्रकाशमय हो जाता है। विद्युत् रूप से

कुण्डलिनी जब ऊपर जाने लगती है तब प्रकाश का साक्षात्कार होता है।

ध्यान योग

कुछ साधकों ने ध्यान द्वारा ईश्वर साक्षात्कार करने के लिए एक साधना बतलाई है जो कि निम्न प्रकार है।

अपने सामने एक आदर्श या आइना रखें और उसके सामने एक घी का दिया इस तरह रखें कि उसकी ज्योति आइना के मघ्य भाग पर प्रतिबिम्बित हो। दर्पण के मध्य भाग में एक बूंद सुगन्धित तेल डाल दें। दर्पण के मुख्य भाग मे जहाँ ज्योति दिख रही हो, वहाँ उस ज्योति की शखांकृति पर दृष्टि स्थिर करने का अभ्यास करें। इस अभ्यास के समय मौन रहें। मन में कोई विचार न आने दें और केसर, इलायची व जायफल बराबर-बराबर लेकर उनको बारीक़ पीसने के बाद कपड़े से छान लें व रेशमी कपड़े के टुकड़े में रखकर उसकी पोटली बनाकर इस तरह सियें कि कानों में उसका डाट लगाया जा सके। डाट लगाने के बाद उस पर मोम लगा दे ताकि बाहर का कोई शब्द न सुनाई पड़े। यह कर्ण मुद्रा लगाने के बाद दर्पण में ज्योति के प्रतिबिम्ब की शंखाकृति पर दृष्टि स्थिर करें। आरम्भ में आँखों से गरम पानी आएगा, उसे आने दें और अभ्यास बन्द न करें। अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाते जाए लगभग एक सप्ताह में आँख में पानी आना बन्द हो जाएगा। पानी से अगर आँखें बीच में ही बन्द हो जाये तो उनको पोंछकर अभ्यास करते रहे। चित्तवृत्ति को स्थिर करके, बिना पलक गिराये जितनी अधिक देर तक अभ्यास किया जा सके उतना ही अधिक लाभप्रद है। पहले दिन दस या पन्द्रह मिनट ही अभ्यास करें बाद मे क्रमश:धीरे -धीरे घंटा सवा घंटा तक बढ़ाते ले जाय । जब आध घंटे तक चित्त को स्थिर रखकर बिना पलक गिराये एकाग्र दृष्टि

से देखने का अभ्यास हो जाता है तब इष्ट देवता के दर्शन होते हैं। उनसे सम्भाषण होता है और भूत,भविष्य वर्तमान का ज्ञान आदि अनेक विविध चमत्कार दिखाई पड़ते हैं, परन्तु इन चमत्कारों में न फँसकर साधक भगवत्स्वरूप की भावना को दृढ़ रखकर उसका प्रत्यक्ष होते ही उससे तन्मय हो जाय और इस प्रकार कृतार्थ लाभ करें।

जिसकी आँखों में किसी तरह की कोई शिकायत हो या दृष्टि कमजोर हो उनको इतने समय तक दृष्टि स्थिर रखने के सम्बन्ध में किसी योग्य डाक्टर से परामर्श कर लेना चाहिए।

ध्यान योग के सम्बन्ध में श्री शुकदेव जी को उपदेश देते हुए महर्षि व्यास जी ने बतलाया था कि ध्यान योग के साधक को चाहिए कि वह हृदय के दोषों को दूर कर पापों से मुक्त हो योग में सहायता पहुँचाने वाले देश, कर्म, अनुराग, अर्थ, उपाय, अपाय, निश्चय, चक्षुष्, आहार, संहार, मन और दर्शन इन बारह उपायों का आश्रय लें।

ध्यान योग के साधक को ऐसे स्थान पर आसन लगाना चाहिए जो समतल और पवित्र हो। जहाँ रेत, कंकड़ पत्थर और आग आदि न हों, कानों में किसी तरह की आवाज़ न आती हो, दूसरों के रहने का घर, सार्वजनिक कुआँ, तालाब, बावड़ी व नदी घाट आदि न हो। जो नेत्रों को भला मालूम हो, जहाँ मन लगे और हवा का ज़ोर न हो। गुफा या ऐसा ही कोई एकांत स्थान ही ध्यान के लिये उपयोगी होता है। ऐसे स्थान पर आसन लगाने को देश योग कहते हैं। आहार, विहार, चेष्टा, सोना और जागना यह सब परिमित व नियमानुकूल होना चाहिए। यह कर्म योग है। सदाचारी शिष्य को अपनी सेवा और सहायता के लिए रखना अनुराग योग कहलाता है। आवश्यक सामग्री संग्रह को अर्थ योग कहते हैं। ध्यानोपयोगी आसन से बैठना उपाय योग है। संसार के विषयों और सगे सम्बन्धियों से आसक्ति तथा ममता हटा लेने को अपाय योग कहते हैं। गुरु और वेदशास्त्र के वचनों पर विश्वास रखने का नाम निश्चय योग है। चक्षु आदि इन्द्रियों को वश में रखना

चक्षु:योग है। शुद्ध सात्विक भोजन का नाम आहार योग है। विषयों की ओर होने वाली स्वाभाविक प्रवृत्ति को रोकना संहार योग है। मन के संकल्प, विकल्प को शांत करने का प्रयत्न मनोयोग है। जन्म, मृत्यु, जरा और रोगादि होने के समय जो महान दु:ख होता है उस पर विचार करके संसार से विरक्त होने का नाम दर्शन योग है। जिसे योग के द्वारा सिद्धि प्राप्त करना हो, उसे इन बारह योगों को अवश्य सिद्ध कर लेना चाहिए।

प्रसिद्ध योगी स्वामी नारायण ने एक ऐसी युक्ति बतलाई है जिस ध्यान से साधक सिद्ध दशा को प्राप्त हो गए। इसके समान और कोई ध्यान नहीं है। साधक अपने दाहिने नेत्र में सूर्य का ध्यान करे ओर बायें नेत्र में चन्द्रमा का। इस प्रकार ध्यान करते- करते सूर्य व चन्द्रमा आकाश की तरह जब नेत्रो में ध्यान करें दिखने लगें तब दाहिना नेत्र तपने लगेगा व बायाँ नेत्र शीतल होने लगेगा। इसके बाद सूर्य की धारणा बाएँ में और चन्द्रमा की दाहिने में करें। इस प्रकार धारणा करके सूर्य और चन्द्रमा को आन्तर दृष्टि करे हृदयाकाश में देखते रहना और दृष्टा जो जीव है उसके स्वरूप को भी देखना और जीव के स्वरूप में परमात्मा का ध्यान करना। इसके पश्चात् ध्याता का जो वासना युक्त लिंग देह है वह चक्र के समान आकाश में घूमता हुआ भास होने लगेगा। पश्चात् ध्यान करते- करते उसको भगवान् के विश्व रूप का दर्शन होता है। उसमें चौदह लोकों की रचना दिखाई पड़ती है तथा समग्र ब्रह्मांडादि पदार्थ दिखाई पड़ते हैं। तत्पश्चात् अणिमादि सिद्धियाँ भी प्राप्त हो जाती हैं और सूर्य चन्द्र की किरणें जहाँ तक पहुँचती हैं वहाँ तक उस ध्याता की दृष्टि पहुँचती है। सिद्धियाँ मिलने पर भी भगवद्‌भक्त साधक उन सिद्धियों का उपयोग नहीं करता तब वह ध्याता नारद, सनकादि, शुकदेव जी के समान सिद्ध दशा को प्राप्त होता है। सिद्ध दशा को प्राप्त करने का यह बहुत ही उत्तम उपाय है।

ध्यान में विघ्न

ध्यान में बाधा डालने वाले चार प्रकार के विध्न तथा उनसे बचने के उपाय इस प्रकार हैं।

(१) लय (२) विक्षेप (३) कषाय और (४) रसास्वाद।

(१) लय

आलस और निद्रा से वृत्ति के अभाव को लय कहते हैं। निद्रा व आलस्य को आँखो में जल कपूर लगाकर रोके।

(२)विक्षेप

वृत्ति के बहिर्मुख होकर पुनः अनात्म पदार्थो में लग जाने को विक्षेप कहते हैं। अत:वृत्ति के अन्तर्मुख होने पर जब तक वृत्ति ब्रह्माकार न होवे उस वक़्त तक बाह्य पदार्थों में दोष भावना करता रहे, वृत्ति को बहिर्मुख न होने दें किन्तु अन्तर्मुखता का ही ध्यान करें।

(३) कषाय

रागद्वेषादि के संस्कारों को कषाय कहते हैं। इसके दो प्रकार हैं। एक बाह्य दूसरा आन्तर् । पुत्र धनादि के प्रति, रागद्वेष, मोहादिक बाह्य हैं। भूत और भविष्य का चिन्तन रूप मनोराज्य आन्तर् है। सत्य संकल्प से इनका निरोध करना चाहिए।

(४) रसास्वाद

सविकल्प समाधि से होने वाले आनन्द को रसास्वाद कहते हैं। यदि साधक सविकल्प समाधि से होने वाले आनन्द में ही अलंबुद्धि कर ले तो वह निर्विकल्प समाधि के आनन्द से वंचित रह जाएगा। अत: रसास्वाद में ही साधक अपने को कृतकृत्य न मान ले वरन् असंग होकर वैराग्य के अभ्यास से निर्विकल्प समाधि के लिए अवश्य

प्रयत्न करें।

कर्मयोग

जो हठ योग व राज योग का अभ्यास नहीं कर सकता उसके लिए गीता में दिए हुए उपदेश के अनुसार भगवान् कृष्ण ने कर्म योग की व्यवस्था की है। भगवान् ने ऐसे साधकों व भक्तों के लिए 'निष्काम कर्म' का आदेश दिया है। योगत्रयानन्द श्री शिवराम किंकर जी ने उसकी इस प्रकार व्याख्या की है। निष्काम शब्द का अर्थ हैं 'निर्गत हुई विषय कामना जिससे अर्थात् जिस काम में विषय वासना नहीं है। केवल भगवत् चरण प्राप्त करने की कामना है उसी कर्म को यहाँ निष्काम कर्म कहा गया है। यह निष्काम कर्म है भगवान् के साथ युक्त होने के लिए एक प्रकार का योगाभ्यास । प्रातःकाल से सायँकाल और सायँकाल से प्रातःकाल तक जो कुछ भी कर्म करें वह सब इस भाव से करना चाहिए कि हे! विश्वपति, यह सारा विश्व ब्रह्मांड आपका एक भारी कारख़ाना है और मै उसमें एक क्षुद्र कर्मचारी हूँ, अतएव मैं जो कुछ काम करता हूँ वह आप ही का काम करता हूँ। मैं इसके द्वारा आप ही की सेवा करता हूँ। हे दयामय ! आप इस काम के द्वारा मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। इस प्रकार कर्म करते-करते वह कर्म द्वारा ही भगवान् की प्रसन्नता प्राप्त कर सकता है। भगवान् जब प्रसन्न रहेंगे तब वह वेद विहित कर्म के लिए सुमति, ज्ञान, भक्ति और दर्शन देंगे। इसलिए कर्म योग ही ज्ञान और भक्ति का मूल है। बुद्धिमान् मनुष्य एक ही जन्म में ज्ञानी और भक्त बनकर भगवान् के साथ युक्त हो कर जीवन सफल कर सकता है। इसलिए ज्ञान योग, कर्म योग और भक्ति योग में कर्म योग ही प्रधान है।

पूर्व लिखे ज्ञान के आधार पर शरीर के प्रति अहंता और पदार्थों के प्रति ममता का त्याग कर सब प्रकार के कर्मो को श्री भगवान् व

इष्टदेव के कर्म समझकर केवल उन्हीं के निमित्त निःस्वार्थ व निष्काम भाव से कर्म करना चाहिए और उन कर्मों को भगवान् श्री कृष्ण के गीता में दिए हुए उपदेशानुसार भगवान् के ही चरणों पर अर्पित कर देना चाहिए। काम करते हुए यह ध्यान में रखना चाहिए कि केवल ईश्वरानुकूल ही कर्म हों,कोई ऐसा कर्म कदापि न हो जो भगवान् के गुण, वचन व इच्छा के विरूद्ध हो। अपने सांसरिक व्यवहारिक कर्म भी भगवान् व इष्टदेव के कार्य समझकर उन्हीं के निमित्त निष्काम भाव से करना चाहिए।

उपर्युक्त कहे गये ज्ञान, भाव और कर्म के द्वारा इन्द्रियों का निग्रह और शुद्धि, मन का संयम तथा चित्त की शुद्धि करके अहंकार, ममता और स्वार्थ को भली-भाँति त्याग देना चाहिए, दूसरों के द्वारा किए गए अपमान, अपकारादि को धैर्यपूर्वक सहते हुए जन जनार्दन अर्थात् सब प्राणियों को भगवद्रूप जानकर उनके हित साधन को ही निष्काम भाव से करना चाहिए ओर विशेषकर सदाचार, ज्ञान और भक्ति भाव का सब प्रकार से अपने आचरण द्वारा प्रचार करना चाहिए।

भगवान् के जिस सगुण व साकार भाव के प्रति हृदय का स्वाभाविक झुकाव हो, उसी के प्रति अनुरक्त होकर उसके सशक्तिक दिव्य रूप का कीर्तन, स्मरण, अर्चन, वन्दन, स्तोत्रपाठ, जप आदि के द्वारा निस्वार्थ प्रेम के साथ नित्य उपासना करना चाहिए और उसी में चित्त को निरंतर लगाना चाहिए। परमात्मा के उसी दिव्य नाम का निरंतर मानसिक जप करते हुए शरीर से अन्य काम भी करते रहना चाहिए।

कुछ लोग कर्म योग को छोटा समझते हैं परन्तु ऐसी बात नहीं है। अनेक जन्मों में कर्म करते-करते लोगों में भगवान् के प्रति भक्ति उत्पन्न होती है। ज्ञान और भक्ति उत्पन्न होने पर मनुष्य ज्ञानी और भक्त बनकर भगवान् के साथ युक्त होकर मनुष्य जीवन सफल कर सकता है। अतएव कर्म योग को साधारण योग न समझकर मुख्य योग

समझना चाहिए। निष्काम कर्म करते हुए किसी साधन के करने पर ही वास्तविक सफलता प्राप्त होती है। भगवान् श्री कृष्ण ने भी गीता के तीसरे अध्याय में कर्म योग का ही उपदेश दिया है।

भक्तियोग

जो भक्त श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन रूप आगे लिखी हुई नवधा भक्ति का अभ्यास करता है, वह अपनी रूचि, प्रकृति साधन की योग्यता तथा स्थिति के अनुसार शान्त, हास्य, सख्य वात्सल्य और माधुर्य इन पाँच भावों में से किसी एक भाव का साधन करता है और सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करता है। भक्त आत्म समर्पण के द्वारा भगवद् कृपा को प्राप्त कर सारे ऐश्वर्यों का स्वामी बन जाता है।

उसकी इस प्रकार की मुक्ति क्रम मुक्ति कहलाती है। इस क्रम मुक्ति को प्राप्त भक्त ब्रह्मलोक में जाकर वहाँ महा प्रलय तक ब्रह्मा के समीप रहता है और पश्चात् ईश्वर के साथ ही निर्गुण ब्रह्म में लीन हो जाता है।

संसार में मनुष्य जन्म का प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है। यह पूर्व जन्म के संचित कर्मों द्वारा सौभाग्य से प्राप्त होता है। अतएव ईश्वर भक्ति द्वारा इसी योनि से ही मनुष्य भवसागर से पार होकर आवागमन से रहित तथा मुक्ति प्राप्त कर सकता है। स्वयं भगवान् श्री कृष्ण ने कहा है कि:-

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं, प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं, पुमान् भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा ॥

(श्रीमद्भा११।२०।१७)

अर्थात् निरतिशय श्रेय: साधन के उपयुक्त और अत्यन्त दुर्लभ दृढ़

नौकारूप मनुष्य शरीर पाकर, जिसका कर्णधार सद्गुरु है और जो अनुकूल पवन रूप मुक्त संचालित नहीं करता है वह आत्मघाती है।

सांख्य योग, ज्ञान योग आदि विभिन्न होने पर भी किसी एक का भी पूर्ण रूप से यथावत् साधन करने से साध्य पदार्थ की प्राप्ति हो सकती है किन्तु सभी साधन अत्यन्त गहन होने के कारण कठिन और दु:साध्य हैं। इनके सिवा भगवत् भक्ति एक ऐसा साधन है जिसकी साधना अन्य साधनों की अपेक्षा बहुत ही सुगम होते हुए भी लगभग उतनी ही फल प्रद है और इसके उदाहरण कितने ही भक्त हैं?

पानेन ते देव कथा सुधायाः, प्रबुद्ध भक्त्या विशदाशया ये।
वैराग्य सारं प्रतिलभ्य बोधं, यथाज्जसान्वीयुरकुण्ठधिष्ण्यम्॥
तथापरे चात्मसमाधियोगवलेन, जित्वा प्रकृति वलिष्ठाम्।
त्वामेव धीराः पुरूषं विशन्ति, तेषां श्रमः स्यान्न तु सेव्या ते॥

(श्रीमद्भाग0 ३/६/४५/४६)

हिरण्यकशिपु के पूछने पर कि प्रह्लाद गुरु ने क्या सिखाया-प्रह्लाद ने उत्तर दिया कि :-

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

(श्रीमद्भाग0 ७/५५/२३)

अर्थात् (१)श्रवण (२)कीर्तन (३)स्मरण (४) पाद सेवन (५) अर्चन (६)वन्दन (७)दास्य (८)सख्य और (९)आत्म निवेदन ये ही नवधा भक्ति है।

(१) श्रवण भक्ति

भगवान् की अलौकिक लीलाओं को श्रद्रा और प्रेम के साथ सुनना। जब तक भगवान् के चरित्रों की कथाओं को श्रवण नहीं किया

जांता तब तक मनुष्य के हृदय में भगवान् के चरण कमलों के प्रति प्रेम और भक्ति का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता।

अर्थात्-- 'हे देव! आपके कथामृत के पान से बढ़ी हुई भक्ति द्वारा शुद्धान्त:करण हो जाने वालों को जिस प्रकार वैराग्य का सार भूत ज्ञान प्राप्त होकर अनायास वैकुण्ठ पद प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार यद्यपि समाधि जन्य योगबल से बलवती प्रकृति को जीतने वालों को भी आपकी प्राप्ति होती है किन्तु इन दोनों में यह बड़ा भरी भेद है कि योगिजनों को जो स्थान घोर परिश्रम से प्राप्त हो सकता है वह आपके भक्त को केवल श्रवण भक्ति द्वारा अनायास ही मिल जाता है।

श्रवण भक्ति का मूल एक मात्र सत्संग है। अतएव श्रवण भक्ति को प्रथम कथन का तात्पर्य 'सत्संग' का सर्वोपरि महत्व प्रदर्शित करना भी है। सत्संग के बिना श्रवण भक्ति का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

राजा परीक्षित को सम्पूर्ण भागवत सुनाने के बाद श्री शुकदेव जी ने अन्त में निष्कर्ष रूप में कहा -

'अनेक प्रकार के दु:खरूप दावानल से तापित होकर संसार समुद्र से उत्तीर्ण होने की इच्छा वाले पुरूष को भगवान् पुरुषोत्तम की लीलाओं के कथामृत सेवन के सिवा अन्य कोई पार उतारने की नौका नहीं है।'

(२) कीर्तन भक्ति

भगवान् की मंगलमय लीलाओं के महत्वसूचक चरित्रों का कीर्तन, भगवत्चरित्रों की कथाओं का पाठ अथवा भगवान् के नामों का कीर्तन और जप आदि 'कीर्तन भक्ति' है।

भक्ति के अंगो में श्रवण, कीर्तन और स्मरण यह तीन अंग मुख्य हैं।

इन तीनों में भी कीर्तन प्रधान है। इसका तात्पर्य श्रवण और स्मरण

की न्यूनता बताने का नहीं है किन्तु बात यह है कि श्रवण और स्मरण में चित्त की एकाग्रता होना परम आवश्यक है। चित्त की एकाग्रता के बिना श्रवण और स्मरण(ध्यान) यथावत् नहीं हो सकता परन्तु नाम कीर्तन के सम्बन्ध में तो यहाँ तक कहा गया है कि :-

जान में या अनजान में उत्तम श्लोक, भगवान् का नाम कीर्तन करने वाले पुरूष के पाप तत्काल वैसे ही नष्ट हो जाते है जैसे अग्नि में ईंध न। इसी से कीर्तन भक्ति को प्रधानता दी जाती है। कीर्तन द्वारा भक्ति प्राप्त होती है। (श्रीमद्भाग0 ६/२/१८)

कीर्तन भक्ति के भी तीन भेद है। भगवान् की लीलाओं का, गुणों का और नामों का कीर्तन। इन तीनों में नाम कीर्तन मुख्य है।

ब्रह्मा जी ने देवर्षि नारद जी से कहा है।

जो मनुष्य प्राणांत के समय विवश होकर भी भगवान् के नाम का उच्चारण करता है उनके जन्म-जन्मान्तरों के पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। वे मोक्षद्वार में सीधे चले जाते है। (श्रीमद्भाग0 ३/९/१५)

कलियुग में तो विशेषकर भगवन्नाम कीर्तन से ही बेड़ा पार हो सकता है। (श्रीमद्भाग0 १२/३/५१-५२)

कलियुग में नारदीय भक्ति ही सार है। ईश्वर का गुणगान करने ओर व्याकुल चित्त से प्रार्थना करने पर परमात्मा की अवश्य प्राप्ति होती है। (श्री राम कृष्ण परमहंस)

भगवान् ने एक मर्तबा देवर्षि नारद के पूछने पर अपने मिलने का पता बताते हुए कहा था कि :-

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

अर्थत् 'वैकुण्ठ में चाहे मैं न रहूँ, योगियों के हृदय में चाहे मेरा

पता न लगे परन्तु जहाँ पर मेरे प्रेमी भक्त मेरे गुणों का गान करते हैं, वहाँ तो मैं अवश्य ही मिलता हूँ।

(३) स्मरण भक्ति

भगवान् के प्रभावशाली नाम, रूप, गुण और लीला आदि के किए गए कथामृत के श्रवण अथवा कीर्तन का मनन करना और भगवान् की लोकोत्तर लावण्यमयी श्री मूर्ति का ध्यान करना स्मरण भक्ति है। स्मरण भक्ति को भी पराभक्ति का साधन बताया गया है। 'भगवान् श्री कृष्ण के चरणारविन्दों का स्मरण(ध्यान) समग्र अमंगलों का नाश और शांति का विस्तार करता है, एवं सत्व की शुद्धि, परमात्मा की भक्ति और वैराग्य सहित विज्ञान का विस्तार करता है। (श्रीमद्भाग0 १२।१२।५४)

श्री शुकदेव जी ने कहा कि अन्तःकरण की शुद्धि का सर्वोपरि साधन भगवत् स्मरण (ध्यान) ही है।

'विद्या(शास्त्राध्ययन), तप(अनशन आदि), प्राणायामादि योग क्रिया, मैत्री (अहिंसा आदि), तीर्थ स्थान,व्रत (एकादशी) आदि दान, जप आदि से अन्तःकरण की वैसी शुद्धि नहीं होती जैसी अनंत भगवान् हरि को हृदय में स्थापित करने से होती है।

(श्रीमद्भाग0 १२।३।४८)

गीता में स्वयं भगवान् श्री कृष्ण जी कहते है कि:-

ज्ञानी जनों की अव्यक्तोपासना को अधिक दुःसाध्य बतलाकर भगवान् कहते हैं कि 'हे पार्थ! जो मेरे परायण रहने वाले सगुणोपासक भक्तजन अपने सम्पूर्ण कर्मों को युक्त सुगुणरूप वासुदेव को अर्पण करके अनन्यभक्ति योग के द्वारा मेरा ध्यान करते हैं उन, मुझ में चित्त लगाने वाले भक्तों को मैं शीघ्र ही मृत्यु रूप संसार- समुद्र से पार करता हूँ।(श्रीमद्भाग0 १२।६-७)

(४) पाद सेवन

पाद सेवन भक्ति एक तो भगवान् की साक्षात् पाद सेवा है और दूसरा भगवान् के पाद-पद्मों का भजन। इसमें प्रथम प्रकार की पाद सेवा बड़ी दुर्लभ है जिसके लिए ब्रह्मा जी भी लालायित होकर भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि :-

'हे नाथ। इस जन्म में अथवा आगे जहाँ कही भी कर्मवश प्राप्त होने वाले पशु पक्षी आदि किसी भी तिर्यक् योनि के जन्म में मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हो जिसमें मैं भी आपके भक्तजनों में से एक होकर आपके पाद पल्लवों की सेवा करूँ।

ब्रह्मा जी ने भगवान् के साक्षात् पाद सेवन की प्राप्ति को अति दुर्लभ समझकर फिर भगवान् से प्रिय ब्रजवासियों के चरण- रज की प्राप्ति के लिये प्रार्थना की है कि :-

'यह मेरा परम सौभाग्य होगा कि यदि मनुष्य लोक में विशेषतया गोकुल या ब्रज के किसी वन में, किसी भी पशु, पक्षी,कीट, पतंग और वृक्ष आदि योनि में मेरा जन्म हो, जिससे भगवान् मुकुन्द ही जिनके सर्वस्व हैं ऐसे ब्रजवासियों की चरण रज का मेरे माथे पर अभिषेक होता रहे, जिस चरण रज को श्रुति भी अनादि काल से ढूँढ रही है किन्तु प्राप्त न कर सकी।' (श्रीमद्भाग0 १०।१४।३४)

साक्षात् पाद सेवन भक्ति तो भगवान् के निरन्तर समीपवर्ती श्री सीता जी, लक्ष्मी जी, रूक्मिणी जी, राधिका जी आदि तथा ब्रज के बाल गोपालों और ब्रजांगनाओं को तथा उद्धव जी आदि अनन्य भक्तों को ही प्राप्त हुई है फिर भी वे भगवान् के पाद सेवन की सदा अभिलाषा करते ही रहते हैं।

श्री रुक्मिणी जी भगवान् से कहती हैं कि:-

'आप तो निजानन्द में रमण करने वाले हैं, अत: आप मुझ पर उपेक्षा दृष्टि रखते हैं। मेरी तो यही प्रार्थना है कि मुझे आपके चरणों

में अनुराग (पाद सेवा)प्राप्त हो'। (श्रीमद्भाग0 १०।६०।४६)

भगवान् की साक्षात् पाद सेवन भक्ति तो साध्य भक्ति के अन्तर्गत ही कही जा सकती है। साधन भक्ति के अन्तर्गत तो भगवान् के पादपद्मों के भजन रूप पाद सेवन भक्ति ही है।

इस प्रकार भगवान् के चरण कमलों की सेवा करने वाले भक्त को भगवद्भक्ति, वैराग्य और भगवद् विषयक ज्ञान - वह सब एक साथ ही प्राप्त हो जाता है और उसके बाद वह आत्यन्तिक क्षेत्र को प्राप्त हो जाता है। यहाँ पाद सेवन भक्ति को पराभक्ति का साधन कहा है।

(५) अर्चन भक्ति

बाह्य सामग्रियों के द्वारा अथवा मन के द्वारा कल्पित सामग्रियों से भगवान् का श्रद्धापूर्वक पूजन करना 'अर्चन' भक्ति है।

स्वयं भगवान् ने अपने पूजन के अधिष्ठान (आश्रय) प्रतिमा, स्थण्डिल, अग्नि, सूर्य, जल,हृदय, गौ और ब्राह्मण आदि बतलाए है।

इसमें पूर्व की अशक्यता में उत्तरोत्तर का विधान है।
प्रतिमा आठ प्रकार की बतलाई गई है।

'पाषाणमयी, काष्ठमयी, सुवर्ण आदि धातुमयी, चंदन आदि द्वारा लेपन की हुई, चित्रमयी, मृत्तिकामयी, मनोमयी (मन द्वारा कल्पित) और रत्नमयी। इनकी पूजा के उपचार अधिष्ठानभेद से भिन्न-भिन्न हैं।

भगवान् की पूजन विधि श्रीमद्भागवत में कई प्रसंगो मे वर्णन की गई है, परन्तु, भगवान् के अर्चन में श्रद्धा ही मुख्य है। स्वयं भगवान् ने कहा:-

'श्रद्धापूर्वक यदि जल भी अर्पण किया जाय तो वह मुझे अत्यन्त प्रिय है, श्रद्धा रहित अर्पण हुई अमूल्य वस्तु भी मेरे लिए सन्तोषप्रद नहीं हो सकती।(श्रीमद्भाग0 ११।२७।१७।१८)

अर्चन भक्ति भी परा भक्ति का साधन स्वयं भगवान् ने कहा है: (श्रीमद्भाग0 ११।२७।५३)

गृहस्थों के लिए तो विशेषकर अर्चन भक्ति ही साधन और कर्तव्य है, किन्तु जो मनुष्य भगवान् की अर्चन भक्ति सांसारिक कामनाओं के लिए करते हैं उनके विषय में ध्रुव जी ने कहा है कि:-

'निश्चय ही उन लोगों की बुद्धि आपकी माया से मोहित है,जो जन्म मरण से छुटकारा करने वाले कल्पवृक्ष रूप आपकी पूजा तुच्छ सांसारिक विषय भोगादि के लिए करते हैं, जो नारकीय जनों को भी प्राप्त है। ((श्रीमद्भाग ४।९।९)

(६) वन्दन भक्ति

वन्दन का अर्थ है प्रणाम दंडवत। भगवान् के श्री चरणों में श्रद्धाभक्ति पूर्वक अनन्यभाव से प्रणाम करना वन्दन भक्ति है।

प्रणाम करने की विधि स्वयं भगवान् ने इस प्रकार बतलाई है।

अनेक प्रकार के वेदोक्त, पुराणोक्त, तंत्रोक्त और प्राकृत स्तोत्रों से स्तुति करके यह निवेदन करें कि 'हे भगवान् ! आप प्रसन्न हों। पृथ्वी पर दंड की भाँति गिरकर इस प्रकार प्रणाम करें, सिर को मेरे चरणों में रखकर दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करें कि- हे प्रभो! इस संसार सागर के मृत्युरूप ग्रह से मुझे उबारिए'।

(श्रीमद्भाग११।२७।४५-४६)

ब्रह्माजी ने श्रीमद्भागवत् में कहा है कि :-

'इस प्रकार प्रतीक्षा करते हुए अपने कर्मों के फल को भोगते हुए एवं शरीर,वाणी और मन से आपकी वन्दन भक्ति करते हुए जो जीवित रहते हैं, वे मुक्ति पद के अधिकारी हो जाते है, अर्थात् उनकी मुक्ति सुलभ हो जाती है। (श्रीमद्भाग० १०।१४।८)

(७) दास्य भक्ति

भगवान् की श्रद्धा और प्रेमपूर्वक दास्यभाव से सेवा करना दास्य भक्ति है, दास भक्ति के लिए भगवान् ने स्वयं आज्ञा दी है कि :-

भगवान् के मन्दिर का मार्जन, लेपन, सिंचन, मंडल आदि की रचना (चौक पूरना, स्वास्तिक बनाना आदि) निष्कपट भाव से दास की भाँति करना चाहिए।

भगवान् का दास्य भाव प्राप्त होना बड़ा दुर्लभ है, भगवान् के पूर्ण कृपापात्र भक्त भी दास्य सेवा के लिए उत्कंठित रहते हैं। भक्त प्रह्लाद जी ने भगवान् श्री नृसिंहजी से प्रार्थना की थी कि:-

'हे भूमन्! प्रिय और अप्रिय पदार्थो के संयोग और वियोग से उत्पन्न होने वाले अग्नि से सब योनियों में तापित होकर मैंने जो-जो औषधि की, उससे शान्ति न मिलकर यद्यपि उल्टा दु:ख ही मिलता रहा है, परन्तु उनको मैं दु:ख न समझकर भ्रम में सुख समझकर इस संसार में भ्रमता रहा हूँ। अतएव अब आप अपनी दास्ययोग रूप अमोघ औषधि मुझे प्रदान कीजिए जिससे सदा के लिए उस ताप का नाश होकर मुझे शांति प्राप्त हो। (श्रीमद्भाग ७/९/१७)

जो मनुष्य भगवान् की सेवा स्वार्थ सिद्धि के लिए करता है उसमें वह दास्यभाव नहीं हो सकता। वह तो लेन देन करने वाले व्यापारी के समान है। (श्रीमद्भाग० ७/१०/४)

(८) सख्य भक्ति

भगवान् में मित्र भाव से प्रेम करना सख्य भक्ति है। भगवान् में सख्य भाव भगवान् की पूर्ण कृपा द्वारा हो सकता है। अत:सख्य भक्ति का अधिकार तो भगवान् की इच्छा पर ही निर्भर है। यह सौभाग्य तो श्री रामावतार में कपिराज सुग्रीव, विभीषण तथा कृष्णावतार में ब्रज के गोपी -गोपिकाओं, उद्धव एवं अर्जुन आदि सौभाग्यशालियों को ही प्राप्त हो सका है।

सख्य -भक्ति प्राप्त भक्तों को भगवान् में अनन्य श्रद्धा एवं पूज्यभाव रखते हुए भी वे भगवान् के साथ मित्रों के समान व्यवहार करते हैं और उनके प्रति कठोर शब्द भी कह उठते हैं।

भगवान् ने सख्य भाव यहाँ तक निभाया है कि ब्रजवासियों को अपनी पीठ और कंधों पर तक चढ़ाया है।

'अहो! नन्दादि ब्रजवासी गोपों के धन्य भाग्य हैं जिनके सुहृद् परमानन्द पूर्ण ब्रह्म आप हैं।

(९) आत्म निवेदन

अहंकार रहित अपने तन, मन, धन और परिजन सहित अपने आपको तथा सर्वस्व को अत्यन्त श्रद्धा और प्रेमपूर्वक भगवान् को समर्पण कर देना आत्म निवेदन भक्ति है। श्री निमि योगेश्वर ने कहा है कि:-

'यज्ञ,दान,तप,जप,अनुष्ठान,स्त्री,पुत्र,घर और प्राणादि सर्वस्व भगवान् को अर्पण करें। श्रीमद्भाग(११/३/२८)

आत्म निवेदन करने वाले भगवान् के अनन्य भक्त होते हैं। वे केवल चक्रवर्ती व रसातल का राज्य, योग द्वारा प्राप्त सिद्धियाँ ही नहीं, ब्रह्मपद, इन्द्रपद ही नहीं किन्तु भगवान् के सिवा वे कैवल्य मोक्ष तक की इच्छा नहीं करते क्योंकि ऐसे भक्तों को कुछ भी प्राप्तव्य शेष नहीं रह जाता। इस सम्बन्ध में रूक्मिणी जी का उदाहारण हमारे सामने है। वह भगवान् कृष्ण को अपना पतिवरण करते हुए पत्र में लिखती हैं कि हे कमल लोचन! यदि आपकी कृपा मुझ पर न होगी तो मैं इन प्राणों को त्याग दूँगी यह प्राण पहले ही 'व्रतकृशान' है। आपकी प्राप्ति के लिए जो नाना व्रत किए हैं उनके कारण वह पहले ही इतने दुर्बल हो गए हैं कि उनके जाने में देर ही क्या लगेगी। आप यह न समझें कि मेरा यह हृदय समर्पण केवल इसी जन्म के लिए ही है। नहीं! नहीं! यदि आपका अनुग्रह इस जन्म में न हुआ तो दूसरे

जन्म में भी आपके अनुग्रह की लालसा निरंतर यों ही बनी रहेगी। इस प्रकार चाहे मेरे अनन्त जन्म ही क्यों न व्यतीत हो जाएँ परन्तु मैं आपका अनुग्रह प्राप्त किए बिना नहीं रह सकती। इसको सच्चा आत्म निवेदन कहते हैं।

शरणागत भक्त के रक्षक स्वयं भगवान् ही होते हैं। राजा अम्बरीष के प्रसंग में महर्षि दुर्वासा से भगवान् ने कहा है कि :-

'जो स्त्री,पुत्र,घर, कुटुम्ब, धन सबसे अधिक प्राण, यह लोक और परलोक सभी को त्यागकर मेरी शरण में आ गए हैं, उनकी उपेक्षा भला मैं किस प्रकार कर सकता हूँ। श्रीमद्भाग ९/४/६५

शरणागत के विषय में भगवान् रामचन्द्रजी ने भी प्रतिज्ञा के रूप मे ऐसा ही कहा है कि :-

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्वृतन्ृ मम॥

(वाल्मीकि रामायाण)

अर्थात् 'जो एक बार भी मेरी शरण मे आ जाता है और 'मैं तुम्हारा हूँ' इस प्रकार की प्रार्थना करता है, उसको मैं अभयदान देता हूँ, यह मेरी प्रतिज्ञा है'।

फिर भला अनन्य भाव से जो भक्त शरणागत होता है उसकी तो बात ही क्या है। यदि कोई यह शंका करें कि शरण में आया हुआ दूषित और पापी हो तो फिर भगवान् उसे कैसे शरण मे लेगें, परन्तु नहीं, भगवान् इस शंका का स्वयं निवारण करते हैं।

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन ।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतायेन दडार्हितम् ॥
आनमैनं हरिश्रेष्ठदत्तमस्याभयं मया।
विभीषणो वा सुग्रीवः यदि वा रावण स्वयम्॥

जब भगवान् महा पति की रावण के भी शरणागत होने पर उसके ग्रहण और रक्षण की प्रतिज्ञा करते हैं तब फिर भला यह शंका ही कैसे की जा सकती है।

इस विषय में श्रीमद्‌भागवत में बहुत ही विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इस लेख में तो पाठकों की जानकारी के लिए बहुत ही संक्षेप मे लिखा गया है।

श्री ज्ञानेश्वर महाराज अपने ज्ञानेश्वरी नामक ग्रन्थ के द्वादशाध्याय में भगवान् के भक्त प्रेम का वर्णन करते हुए लिखते हैं। भगवान् कहते हैं कि :-

'हे अर्जुन! मैं अपने भक्तों के पीछे कितना पागल हो जाता हूँ, यह कहाँ तक बतलाऊँ। मैं उनको अपने सर पर लेकर नाचता हूँ।' 'अर्जुन पूछते हैं कि वह ऐसा कौन सा भक्त है? भगवान् उत्तर देते हैं' मुक्ति नाम की जो चौथी पुरुषार्थ सिद्धि है, उसे अपने हाथ में रखे भक्ति मार्ग पर चलने वाले भोले-भाले भावुकों को जो बाँटता फिरता हैं, कैवल्य मोक्ष का मानो जो स्वामी है, इतने बड़े ऐश्वर्य का स्वामी होकर भी जो सदा जल के समान नम्र, निरभिमान रहता है, उसे मैं प्रणाम करता हूँ, उसे मुकुट बनाकर अपने मस्तक पर धारण करता हूँ, उसके चरण निरंतर अपने हृदय में धारण रखता हूँ। उसके गुण मेरे अलंकार बनकर उनसे मैं अलंकृत होता हूँ। अपने कानों से मैं उनकी कीर्ति सुना करता हूँ। हे अर्जुन ! मेरा जो अरूप स्वरूप है, उसमें चक्षुरादि इन्द्रियाँ कहाँ है? परन्तु अपने भक्तों को आँखें भरकर देखने के लिए मैं आँखें बना लेता हूँ। मैने अपने दो और दो चार हाथ अपने भक्तों के आलिंगन के लिए ही बना लिए हैं। मेरे हाथ में जो कमल है वह अपने सूंघने के लिए नहीं बल्कि जहाँ कहीं भी मेरा भक्त मिल जाय तुरन्त ही उसे चढ़ाने के लिये रखा हूँ। भक्तों के सत्संग के लिए विदेह होकर भी मुझे देह धारण करना पड़ता है । अधिक कहाँ तक कहूँ? भक्त से मेरा प्रेम है उसकी कोई उपमा ही नहीं।

मेरा भक्त किसी भी जाति का हो, उसका कुछ भी आचरण हो, पापियों में सबसे बड़ा पापी भी क्यों न हो, उसने जब अपना जीवन भक्ति की वेदी पर चढ़ा दिया तब उसे मेरा स्वरूप प्राप्त हुए बिना नहीं रह सकता। पहले वह कितना ही बड़ा दुराचारी क्यों न रहा हो फिर भी यदि अन्त में उसने अपने दुराचारों का त्याग कर अपना जीवन भक्ति में लगा दिया तो उस भक्ति से उसके सारे पाप नष्ट होकर वह मुझमें आ मिलता है।'

शरण में आया हुआ सदोष हो अथवा निर्दोष, वह अवश्य ही शरण्य के द्वारा रक्षणीय है, जैसा कि निम्नलिखित श्लोक में बतलाया गया है। अन्यथा शरण्य के लिये बड़ा दोष होगा।

एवं दोषो महास्तत्र प्रपन्नानाम् रक्षणे ।

अस्वर्गि चापशस्यं च बलवीर्यं विनाशनम्॥

(बा.रा. ल.का.)

अर्थात् शरणागत के दोष शरण्य के लिए सर्वदा ही उपेक्षणीय है। शरणागत होने के पहले उसने जो अपराध किए हैं वे सर्वदा उपेक्षीय हैं ही बल्कि उसके अनेक जन्मों के पाप भी नष्ट हो जाते है।

अधिकारी, अनाधिकारी सब के लिए भक्तियोग प्रशस्त, निरुपद्रव और मुक्ति का देने वाला है। भक्ति के बिना ब्रह्मज्ञान नहीं हो सकता। तप से, ज्ञान से व कर्म से भी श्री हरि चाहे न मिलें परन्तु वह भक्ति से अवश्य ही मिलते हैं, इसका प्रमाण गोपी, गोपिकाएँ हैं। कलिकाल में केवल भक्ति ही से भगवान् सम्मुख उपस्थित हो जाते हैं।

भगवान् की ओर किचिंत् भी आकर्षण हो, उनके चरणों में लेश मात्र भी भक्ति हो तो इसे भगवान् की बड़ी कृपा ही समझना चाहिए। इस प्रसाद का अच्छी तरह रक्षण, पोषण व संवर्धन करना

चाहिए। इसका साधन सत्संग करने और दुस्संग छोड़ने से होता है।

साधुसंग व सत्संग अत्यन्त दुर्लभ है। यह जहाँ और जब मिले उसे अपना अहोभाग्य समझना चाहिए। जहाँ वह प्राप्त न हो वहाँ सद्ग्रन्थों का अवलोकन अवश्य करना चाहिए।

भगवान् की शरण में जो कोई भी जाता है अभय हो जाता है। भगवान् स्वयं कहते है कि 'जो कोई भी दीन होकर मुझें पुकारता है और कहता है कि मैं तुम्हारा हूँ उसे मैं सबसे अभय कर देता हूँ, यही मेरा व्रत है।'

भगवान् का अगर किसी से कोई नाता या सम्बन्ध है तो वह केवल एक प्रेम का ही है। यह प्रेम बिना अनुराग के प्राप्त नहीं होता। अर्थात् भगवान बिना अनुराग के नहीं मिलते चाहे कोई साधक कितना ही जप, तप, ध्यान और योग का अभ्यास करे।

रामहिं केवल प्रेम पियारा, जान लेय जो जानन हारा।

सांख्य शास्त्र

सांख्य शास्त्र के प्रवर्तक महर्षि कपिलाचार्य ने अपने सूत्रों में मनोविज्ञान का जो सुन्दर निरूपण किया है उसके लिए सभी भारतीय दर्शन शास्त्र उनके ऋणी हैं। महर्षि कपिलदेव कहते हैं कि किसी बाह्य वस्तु को प्रत्यक्ष करने के लिए निम्नलिखित कारणों की अपेक्षा होती है।

पहले बाह्य विषय, दूसरे इन्द्रिय, तीसरे इन दोनों से सम्बन्धित मन, चौथे बुद्धि और पाँचवें पुरुष अर्थात् आत्मा। मन, बुद्धि और अहंकार की समाष्टि को 'अन्तःकरण' कहते हैं। यह चित्त की भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ हैं। विचार की धाराओं का नाम वृत्ति है। जगत् का प्रत्येक

पदार्थ स्वभावतः अज्ञात एवं अज्ञेय है। ऊपर बताए हुए कारणों के साथ सम्पर्क में आने पर ही उसे ज्ञेयता प्राप्त होती है अथवा वह ज्ञान या प्रत्यक्ष का विषय होता है। जिस प्रकार किसी सरोवर में पत्थर आदि फेंकने से उसमें लहरें और तरंगें उठने लगती हैं, उसी प्रकार बाह्य विषयों का इन्द्रियों तथा मन के साथ संयोग होने पर विचारों की अनेक लहरें उठने लगती हैं। मन उन अनन्त वृत्तियों तथा प्रवाहों का ख़ज़ाना है जो हमारे चित्त की सूक्ष्म अवस्था में समूहित होते हैं, बनते है तथा रक्षित रहते हैं। अतएव जब इन वृत्तियों को व्यक्त होने का उचित अवसर मिलता है उस समय यह लहरें बनती है। बाहर से तथा भीतर से आने वाले संकेत ही इन लहरों के बनने के कारण होते हैं।

इस योग में स्थूल शरीर से लेकर सूक्ष्म, कारण, महाकारण और फिर अति महाकारण देह तक सब देहों की, पंचीकरण की दृष्टि से तथा व्यतिरेक और अन्वय से आत्मा से भिन्नता सिद्ध करते हैं और चित्तवृत्ति का लय करते हुए ज्ञान की जो सात भूमिकाएँ पार करनी पड़ती है वह इस प्रकार हैं। (१) शुभेच्छा अर्थात् विवेक वैराग्य की स्थिति (२) विचारणा अर्थात् श्रवण मनन की अवस्था (इन दो भूमिकाओं को पार करने के पश्चात् मुमुक्षु पद पर आता है) (३)तनुमानसा अर्थात् अनेक अर्थों में यही एक अर्थ ग्रहण करना कि पंच भूतात्मक देह अनित्य और आत्मा नित्य शुद्ध बुद्ध है। (४)सत्वापत्ति अर्थात् 'अहं ब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूँ, इस धारणा को दृढ़ करना (५)असंसक्ति अर्थात् नानाविधि सिद्धियों की ओर से अनासक्ति (६)पदार्थभावनी 'अहंब्रह्मास्मि' भी तो एक अहंवृत्ति ही है अतः इसका भी लय करना (७)तुर्यगा अर्थात् आत्मस्वरूप से न उठना। इन सात भूमिकाओं को पार करते हुए विक्षिप्तता, गतावता, संश्लिष्टता, और सुलीनता इन चार अवस्थाओं तथा लय, विक्षेप, कषाय और रसास्वाद इन चार विघ्नों को लाँघकर केवल निरालम्ब स्थिति में तल्लीन होकर रहना। अहंता व ममता को नष्ट करके परमात्मा में एकीभाव से स्थित होना ही सांख्य योग है।

महर्षि वशिष्ठ ने राजा जनक को उपदेश देते हुए सांख्य का इस प्रकार वर्णन किया है कि यह विचार प्रधान दर्शन है। हे राजन्! प्रकृतिवादी विद्वान् मूल प्रकृति को अव्यक्त कहते हैं, जिससे दूसरा तत्त्व प्रकट हुआ उसे महत्तत्व कहते हैं, महत्तत्व से अहंकार नामक तीसरे तत्त्व की उत्पत्ति हुई, अहंकार से सूक्ष्म भूतों की पाँच तन्मात्राऐं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध) प्रकट हुई हैं। इन आठों को प्रकृति कहते हैं। इनसे सोलह तत्त्वों की उत्पत्ति होती है, जिन्हें विकार या विकृति कहते हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, ग्यारहवाँ मन और पांच स्थूल भूत यह ही सोलह विकार हैं। सांख्य शास्त्र के विद्वानों का कहना है कि यह प्रकृति और उसके विकार ही सांख्य शास्त्र के चौबीस तत्त्व हैं जो तत्त्व जिससे उत्पन्न होता है उसका उसी में लय भी होता है। प्रकृति परमात्मा के सन्निधान से अनुलोम क्रम के अनुसार तत्त्वों की रचना करती है (अर्थात् प्रकृति से महत्तत्व, महत्तत्व से अहंकार, अहंकार से सूक्ष्म भूत आदि के क्रम से सृष्टि होती है) परन्तु उनका संहार विलोम क्रम से होता है (अर्थात् पृथ्वी का जल में, जल का तेज़ में, तेज़ का वायु में लय होता है, इसी तरह सभी तत्त्व अपने-अपने कारण में लीन होते हैं) जैसे समुद्र में उठी लहरें फिर उसी में शांत हो जाती है, उसी तरह सम्पूर्ण तत्त्व अनुलोम क्रम से उत्पन्न होकर विलोम क्रम से लीन हो जाते है। इस प्रकार प्रकृति से ही जगत् की उत्पत्ति और उसी में उसका लय हो जाता है, इतना ही सृष्टि और प्रलय का विषय है। तत्त्ववेत्ता पुरुष को इसी प्रकार प्रकृति के एक तत्त्व और नाना तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए (प्रलय काल में तो वह एक रूप में रहती है और सृष्टि के समय नाना रूप धारण कर लेती है) इसी तरह पुरुष भी प्रलय काल में एक ही रूप में रहता है, किन्तु सृष्टि के साथ प्रकृति को प्रेरित करने के कारण उसकी ही अनेकता से वह स्वयं भी अनेक-सा प्रतीत होता है। परमात्मा ही प्रकृति को नाना रूपों में परिणित करता है। प्रकृति और उसके विकार को क्षेत्र कहते हैं। चौबीस तत्त्वों से भिन्न जो पच्चीसवाँ

तत्त्व महान् आत्मा है, वह क्षेत्र में अधिष्ठाता रूप से निवास करता है। समस्त क्षेत्रों का अधिष्ठान होने के कारण ही उसे अधिष्ठाता कहते हैं। यह अव्यक्तसंज्ञक सम्पूर्ण क्षेत्रों को जानता है, इसलिए वह क्षेत्रज्ञ कहलाता है और प्रकृति शरीर में अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट है, अतएव पुरुष का नाम धारण करता है, वास्तव में क्षेत्र अन्य वस्तु है और क्षेत्रज्ञ अन्य। क्षेत्र अव्यक्त (प्रकृति) है और क्षेत्रज्ञ उसका ज्ञाता पच्चीसवाँ तत्त्व आत्मा है। यही सांख्यदर्शन है। सांख्यवादी प्रकृति को ही जगत् का कारण मानते हैं और इनके चौबीस तत्त्वों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करते हैं फिर उससे भिन्न जो पच्चीसवाँ तत्त्व आत्मा है, उसका ज्ञान होता है। जिस समय पुरुष अपने को प्रकृति से भिन्न जान लेता है, उस समय वह केवल ब्रह्म रूप में स्थित हो जाता है जो इसे इस प्रकार जान लेते हैं वह समत्व रूप ब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं। इसके अनुसार ज्ञान प्राप्त करने वालों की इस संसार में पुनरावृत्ति नहीं होती, वे अविनाशी अक्षर भाव को प्राप्त होते हैं। जिनकी बुद्धि नानातत्त्व का दर्शन करती है वे सम्यग् (सांख्य) ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते, ऐसे लोगों को बारम्बार शरीर धारण करना पड़ता है। सम्पूर्ण जगत् को अव्यक्त कहते हैं और पच्चीसवाँ तत्त्व आत्मा उससे भिन्न है, जो उसे जानते हैं उनको आवागमन का भय नहीं रहता।

बृद्धिमान् पुरुष जब यह जान लेता है कि मैं अन्य हूँ और यह प्रकृति मुझसे भिन्न है, तब प्रकृति का त्याग कर देने के कारण वह अपने शुद्ध रूप में स्थित होता है। उस समय वह प्रकृति से मिला हुआ प्रतीत होने पर भी वास्तव में उससे भिन्न देखा जाता है। जब वह प्राकृत गुण समुदाय पर प्रीति नहीं रखता, उस समय दृष्टाँ के रूप में स्थित होकर परमात्मा के दर्शन पा जाता है और फिर उसका त्याग नहीं करता। जिस समय जीवात्मा को यह विवेक हो जाता है उस समय वह यों पश्चात्ताप करने लगता है कि अज्ञान और मोह के वशीभूत होकर इतने समय तक मैं इस आसक्तिमयी जड़ प्रकृति के साथ रमता

रहा। इसने इस तरह वश में कर लिया था कि मुझे आज तक ज्ञान ही न हुआ। मैनें बड़ा धोखा खाया और उसके साथ नाना प्रकार की योनियों में भटकता फिरा। अब मैं इसकी चाल समझकर ममता और अहंकार से अलग हो गया हूँ। परमात्मा के साथ एकता होने में ही मेरा कल्याण है। हे राजन् ! मैंने सांख्य और योग का अलग-अलग वर्णन किया है परन्तु वास्तव में दोनों एक ही है।

मंत्र योग

मंत्र योग का यह सिद्धांत है कि परमात्मा से भाव,भाव के नाम रूप और उसका विकार तथा विलासमय यह संसार है, इसलिए जिस क्रम से सृष्टि हुई है उसके विपरीत मार्ग ही से लय होगा, यह निश्चय है, अर्थात् जब परमात्मा से भाव और भाव से नाम रूप द्वारा सृष्टि हुई है, जिससे समस्त जीव बंधन में आ गये हैं, तब यदि मुक्ति लाभ करना हो तो प्रथम नाम रूप का आश्रय लेकर, नाम रूप से भाव में और भाव से भावरूपी परमात्मा में चित्तवृत्ति के लय होने से मुक्ति होगी। नारद आदि महर्षियों ने इसीलिए नाम रूप के अवलम्बन से साधन की जो विधियाँ बतलाई हैं इसी का नाम मंत्र योग है। मंत्र योग में ध्यान व भक्ति योग भी आ जाते हैं। इसमें प्राणायाम को छोड़कर सात अङ्ग हैं और चक्रों में मूलाधार, मणिपूर व आज्ञा सहित तीन चक्र हैं।

हिन्दू जाति की मूर्ति पूजा और पीठ विज्ञान मंत्र योग के अनुसार ही सिद्ध होते हैं। मंत्र योग के ग्रन्थों के अनुसार उसके निम्नलिखित मुख्य अङ्ग आगे बतलाये जाते हैं। चन्द्रमा की सोलह कलाओं की तरह मंत्र योग भी आगे लिखे सोलह अङ्गों से पूर्ण है।

(१)भक्ति (२) शुद्धि (३) आसन (४) पंचांग सेवन (५)

आचार (६) धारणा (७) दिव्यदेश सेवन (८) प्राण क्रिया (९) मुद्रा (१०) तर्पण (११) हवन (१२) बलि (१३) यज्ञ (१४) जप (१५) ध्यान (१६) समाधि।

भक्ति का विस्तार तो सभी शास्त्रों में पाया जाता है, शुद्धि के अनेक भेद हैं। किस दिशा में मुख करके साधन करना चाहिए यह दिशा शुद्धि है। कैसे स्थान पर साधन करना चाहिए यह स्थान शुद्धि है। स्नान आदि द्वारा शरीर शुद्धि और प्राणायाम द्वारा मन शुद्धि होती है। कैसे आसन पर बैठना चाहिए जैसे चैलासन, मृगचर्मासन, कुशासन आदि यह आसन शुद्धि है। अपने इष्टदेव की गीता, सहस्रनाम, स्तवन, कवच और हृदय यह पाँचों पंचांग कहलाते है। मन को बाहर मूर्ति आदि में लगाने से अथवा शरीर के भीतर स्थान विशेषों में स्थिर करने को धारणा कहते हैं। जिन सोलह प्रकार के स्थानों में पीठ बनाकर पूजा की जाती है उनको दिव्यदेश कहते हैं जैसे मूर्धास्थान, हृदय स्थान नाभि, घट, पट, पाषाणादि की मूर्तियाँ, स्थंडिल यंत्र आदि। मंत्रशास्त्र में प्राणायामों के अतिरिक्त शरीर के नाना स्थानों में प्राण को ले जाकर साधन करने की आज्ञा है। यह सब प्राण क्रिया कहलाती हैं। व्यास आदि इसी के अन्तर्गत हैं। मंत्रयोग में अपने-अपने इष्ट देवों को प्रसन्न करने की जो चेष्टाएँ हैं वे मुद्रा कहलाती है। पदार्थ विशेष द्वारा इष्टदेव का तर्पण किया जाता है। अग्नि में आहुति देने को हवन कहते हैं। बलि तीन प्रकार की होती है। आत्मबलि, अहंकारादि, इन्द्रियों व कामक्रोधादि की बलि अन्तरबलि है। बहिर्बलि में सात्विक बलि फलादि की और राजस -तामसिक बलि पशु की होती है। अपने इष्ट के नाम के जप को जप कहते हैं। जप भी वाचिक, उपांशु और मानसिक भेद से तीन प्रकार का होता है। इष्ट के रूप का ध्यान मन के द्वारा करने से जो साधन होता है उसे 'ध्यान' कहते है। इष्ट के रूप का ध्यान करते -करते अपने को भूल जाने से जो एक अवस्था प्राप्त होती है उसे मंत्र योग मे 'महाबोध समाधि' कहते हैं। यही मंत्र

समाधि है।

जो पुरूष प्रतिदिन गायत्री मंत्र का जप तीन वर्ष पर्यंत नियम से करता है वह परब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। मंत्र योग से सुषुम्ना का भी दर्शन होता है सोऽहम् आदि मंत्र के जप करने से चित्तवृत्ति का निरोध होता है और इसी का नाम मंत्र योग है। मंत्र योग के मन्त्राक्षरों का तेजोरूप में दिखाई देना ही मंत्र सिद्धि है।

श्री भगवती मंत्रमयी और प्रकाशमयी हैं। मंत्रमयी भगवती का ध्यान करते रहने से वह प्रसन्न होती है और साधक से सब क्रियाएँ करा लेती है । श्री रामकृष्ण परमहंस के पास एक योगिनी को भेजकर भगवती ने ही उनसे सब यौगिक क्रियाएँ करा दी थीं।

मंत्र योग में शुद्धि एक आवश्यक अंग है। शुद्धि दो प्रकार की होती हैं (१) बाह्य शुद्धि (२) अन्तर् शुद्धि।

(१) बाह्य शुद्धि

बाह्य शुद्धि के भी तीन अंग है। (१)शरीर शुद्धि (२)स्थान शुद्धि (३) दिशा शुद्धि ।

(१) शरीर शुद्धि

शरीर शुद्धि स्नान से होती है जो कि सात प्रकार का होता है। (१) मंत्र स्नान-- नहाते समय 'गंगे च यमुने च' कहते हुए जल डालने से होता है। (२) भौम स्नान-गमछे से अंग पोंछने से। (३)आग्नेय स्नान-भस्म लगाने से। (४)मागव्य स्नान-गोरज स्पर्श से। (५) दिव्य स्नान-सूर्य दर्शन होते हुए वर्षा में स्नान करने से । (६) वारुण्य स्नान-नदी तालाब आदि में गोता लगाने से। (७) मानस स्नान-भगवान् के रूप का ध्यान करने से।

(२) स्थान शुद्धि

गोमय से, बरगद, पीपल, अशोक, बिल्ब, आँवले के वृक्ष पंचवटी के नीचे बैठकर साधना पूजा करने से स्थान शुद्धि होती है।

(३) दिशा शुद्धि

दिन में पूर्व या उत्तर मुख व रात्रि में उत्तर मुख बैठकर जप व पूजा आदि करने से दिशा शुद्धि होती है।

अन्तर् शुद्धि का अंग मन की शुद्धि है जो कि मंत्र योग में परम आवश्यक है।

मन की शुद्धि दैवी सम्पत्ति के अभ्यास से होती है। अर्थात् इन्द्रिय संयम, भयशून्यता, चित्त प्रसन्नता, दान, यज्ञ, वेद पाठ, मंत्र सम्मत शास्त्र पाठ, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, निर्लोभ व अहंकार, कुकर्म चंचलता का त्याग, चित्त की शान्ति, अविरोध, धैर्य, शौच, क्षमा इत्यादि भावों के अभ्यास से होती है।

शुद्धि का फल

बाहर की शुद्धि से आरोग्यता, आत्मप्रसाद व इष्टदेव की कृपा तथा मन की शुद्धि से इष्टदेव का दर्शन और समाधि प्राप्त होती है।

शुद्धि नित्य कर्म का एक अत्यन्त आवश्यक अङ्ग होने के कारण केवल उसी का विवरण यहाँ दिया जा रहा है। स्थानाभाव के कारण अन्य अङ्गों का विस्तृत विवरण न देकर संक्षिप्त विवरण आरम्भ में दे दिया गया है।

मंत्र का अर्थ है गुप्त परामर्श। यह गुरुदेव की कृपा से ही प्राप्त होता है। मंत्र प्राप्त होने पर भी यदि उसका अनुष्ठान न किया जाय, सविधि पुरश्चरण न किया जाय तो उससे उतना लाभ नहीं होता जितना कि होना चाहिए। श्रद्धा, भक्ति और विधि के संयोग से जब

मंत्रो के अक्षर अन्तर्देश में प्रवेश करके एक दिव्य प्रभाव उत्पन्न करने लगते हैं तो उससे जन्म -जन्मान्तर के पाप तापों के संस्कार धुल जाते हैं और जीव की प्रस्तुत चेतनता जीवन्त, ज्वलंत एवं जाग्रत रूप में प्रदीप्त हो उठती है। मंत्रो के अनुष्ठान में कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है। यम और नियम ही आन्तरिक व बाह्य शांति के मूल हैं। इस सम्बन्ध में कुछ नियम संक्षिप्त रूप में आगे दिये जाते हैं।

(१) मंत्रानुष्ठान स्वयं ही करना चाहिए और यदि श्री गुरुदेव कृपा कर दें तो बहुत ही उत्तम है। यदि यह दोनों असम्भव हों तो किसी परोपकारी, प्रेमी, शास्त्रवेत्ता व सदाचारी ब्राह्मण से भी कराया जा सकता है, अनुष्ठान किसी पुण्य क्षेत्र, नदी तट, पर्वत, तीर्थ संगम, जंगल, एकांत, उद्यान, पीपल या आँवले के वृक्ष के नीचे पानी या अपने घर के पवित्र व स्वच्छ स्थान,सूर्य, अग्नि, गुरु चन्द्रमा, दीपक, मन्दिर, जल, ब्राह्मण और गौओं के सामने तथा अन्य उपयुक्त स्थान में बैठकर करना चाहिए।

(२) भोजन, शुद्ध, सात्विक, पवित्र व स्वल्प करना चाहिए।

(३) स्त्री संसर्ग, उनकी चर्चा जहाँ वह रहती हों वह स्थान छोड़ देना चाहिए। स्त्री साधकाओं को यही बात मनुष्यों के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए। यथाशक्ति तीनों अथवा दो अन्यथा एक समय स्नान करना चाहिए। बग़ैर स्नान, तर्पण, अपवित्र हाथ, नग्न और सर पर वस्त्र रखकर जप न करना चाहिए। बीच में बातचीत न करना चाहिए, जप करते समय यदि कोई बात मुँह से निकल जाय तो एक बार प्रणव का उच्चारण कर लेना चाहिए और अगर बहुत बातचीत की हो तो आचमन अङ्गन्यास करके पुनःजप आरम्भ करना चाहिए। जप के समय यदि शौच या लघुशंका आदि मालूम हो तो उसका निरोध नहीं करना चाहिए क्योंकि उससे ध्यान बँटता है। मलिन वस्त्र, मुख, केस से जप करना उचित नहीं। जप के समय आलस्य, जंभाई, नींद छींक,

थूकना,डरना, अपवित्र अङ्गों का स्पर्श व क्रोध आदि निषिद्ध हैं। जप न बहुत जल्दी, न बहुत देर में करना चाहिए। गाकर, सिर हिलाकर, लिखा हुआ पढ़ना, अर्थ न जानना, बीच-बीच में भूल जाना, मंत्र सिद्धि के लिये प्रतिबंधक हैं। जप के समय यह चिन्तन करना चाहिए कि इष्ट देवता, मंत्र और गुरु एक ही है।

(४)पहले दिन जितने जप का संकल्प किया जाय उतना ही प्रतिदिन करें, घटाये बढ़ाये नहीं। मंत्र सिद्ध करने के बारह नियम हैं। (१) भूमि शयन (२)ब्रह्मचर्य (३)मौन (४)गुरु सेवन (५)त्रिकाल स्नान (६)पाप कर्म परित्याग (७)नित्य पूजा (८)नित्य दान (९)देवता की स्तुति व कीर्तन (१०) नैमित्तिक पूजा (११)इष्टदेव और गुरु में विश्वास (१२) जप निष्ठा। इनका पालन करने पर मंत्र सिद्ध ही समझना चाहिए। चित्त की व्याकुलता, क्षोभ भ्राँति, भूख, शरीर में पीड़ा, अशुद्ध स्थान आदि में जप नहीं करना चाहिए, अनुष्ठान आरंभ कर देने पर मरण, शौच या जनना शौच (सन्तान उत्पत्ति)होने पर भी अनुष्ठान नहीं छोड़ना चाहिए। यह नियम मानस जप के लिये नहीं है। शास्त्रकारों ने कहा है कि मंत्र के रहस्य को जानने वाला जो साधक एक मात्र मंत्र की ही शरण हो गया है, वह चाहे पवित्र हो या अपवित्र सब समय चलते फिरते, उठते बैठते सोते जागते व खाते पीते मंत्र का अभ्यास कर सकता है। मानस जप में कोई भी समय व अवस्था को दोषयुक्त नहीं समझा जाता है।

जो लोग आधिदैविक जगत् का रहस्य जानते हैं वे भली भाँति इस बात को मानते हैं कि एक- एक वस्तु के अलग-अलग देवता हैं और वे जगा लिए जाने पर अनेक प्रकार की सिद्धियाँ देते हैं। केवल परमार्थ ही नहीं बल्कि उनके द्वारा अपना स्वार्थ भी सिद्ध होता है। इन देवताओं में अनेक प्रकार की चमत्कारिक शक्तियाँ होती हैं अतएव उनकी कृपा से अर्थ, धर्म एवं कामोपभोग पूर्ण रूप से किए जा सकते हैं। कुछ लोग भले ही इन बातों को न मानें परन्तु यह सिद्धियाँ आज

भी सम्भव हैं। मंत्रो में ऐसी शक्ति है कि जो चाहे वह जप करके देख लें।

जप के भेद व श्रेष्ठता

सब यज्ञों की अपेक्षा जप को श्रेष्ठ बतलाया है। पद्म और नारदीय पुराण में समस्त यज्ञ वाचिक जप की तुलना में सोलहवें हिस्से के बराबर भी नहीं है। वाचिक जप से सौगुना उपांशु और सौगुना मानस जप का फल होता है। मानस जप में अर्थ का चिंतन करते हुए मन से ही मंत्र के वर्ण,स्वर और पदों की बार-बार आवृत्ति की जाती है। उपांशु में कुछ-कुछ जीभ और ओंठ चलते हैं व अपने कानों तक ही उनकी ध्वनि सीमित रहती है। वाचिक जप वाणी के द्वारा उच्चारण है। तीनों में ही मन के द्वारा इष्ट का चिन्तन होना चाहिए। मानसिक स्तोत्र पाठ और ज़ोर-ज़ोर से उच्चारण करके मंत्र जप दोनों ही निष्फल हैं। पहले ऐसी भावना करना चाहिए कि मंत्र एक-एक अक्षर इच्छा शक्ति से ओतप्रोत है और परम अमृत स्वरूप चिदाकाश में उसकी स्थित है, ऐसी भावना करते हुए जप करने से पूजा, होम आदि के बिना ही मंत्र अपनी शक्ति प्रकाशित कर देते हैं। मंत्र जप करने की यही विधि है कि प्राण बुद्धि से सुषुम्णा के मूल देश में स्थिति जीवरूप से मंत्र का चिन्तन करके मंत्रार्थ और मंत्र चेतन के ज्ञानपूर्वक उनका जप किया जाय। भगवान् शंकर ने कहा है कि मन एक जगह, शिव दूसरी जगह, शक्ति तीसरी जगह, ऐसी स्थिति मे मंत्र सिद्धि की क्या सम्भावना हो सकती है। इसलिए इन सबका एकत्र चिन्तन करते हुए ही जप करना चाहिए।

मंत्र सिद्ध के साधन

मंत्र में दो प्रकार के सूतक होते हैं। एक जात सूतक और दूसरा मृत सूतक। इन दोनों अशौचों का भंग किए बिना मंत्र सिद्ध

नहीं होते। इसके भंग करने की विधि यह है कि जप के आरम्भ में एक सौ आठ बार, असमर्थ होने पर सात बार ओंकार से पुटित करके अपने इष्ट मंत्र का जप कर लेना चाहिए। उनके साथ ही योनि मुद्रा का अनुष्ठान करना भी आवश्यक है। उसके विकल्प में भूतलिपि का विधान होता है, उससे अनुलोम-विलोम पुटित करके मंत्र जप करने से बहुत ही शीघ्र मंत्र सिद्ध होता है। भूत लिप का क्रम निम्नलिखित है।

अ इ उ ऋ लृ ए ऐ ओ औ ह य र व ल ङ क ख घ ग ञ च छ झ ज ण ट ठ ढ ड न त थ ध द म प फ भ व श ष स (इसके बाद इष्ट मंत्र फिर) स ष श व भ फ प म द ध थ त न ड ढ ठ ट ण ज झ छ च ञ ग घ ख क ङ ल व र य ह औ ओ ऐ ए लृ ऋ उ इ अ ।

इस प्रकार एक महीने तक एक हज़ार जप करना चाहिए। ऐसा करने से मंत्र जाग्रत होता है। तीन प्राणायाम पहले व तीन पीछे कर लेना चाहिए। प्राणायाम चार मंत्र से पूरक, सोलह से कुम्भक और आठ से रेचक करके करें। जप पूरा होने पर उसको तेज स्वरूप ध्यान करके इष्ट देवता के दाहिने और यदि देवी का मंत्र हो तो बाएँ हाथ में समर्पण करना चाहिए। प्रतिदिन अनुष्ठान के अन्त में जप का दशांश हवन, हवन का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश अभिषेक और ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए।

होम तर्पण आदि में जो अङ्ग पूरा न किया जा सके उसके लिए और भी जप करना चाहिए। होम न कर सकने पर ब्राह्मणों के लिए होम की संख्या का चौगुना, क्षत्रियों के लिए छः गुना व वैश्यों के लिए अठगुना जप करने का विधान है। स्त्रियों के लिए तो ब्राह्मण भोजन की उतनी आवश्यकता नहीं। उनको न्यास, ध्यान और पूजा की भी छूट है। केवल जप मात्र से ही इनके मंत्र सिद्ध हो जाते है। अनुष्ठान में दीक्षायुक्त ब्राह्मणों को ही भोजन करावें।

अनुष्ठान पूरा होने पर गुरु, गुरुपुत्र, गुरुपत्नी अथवा वंशजों को दक्षिणा देना चाहिए।

मुख शोधन

मंत्र शास्त्रियों का कहना है कि मंत्र जप करने के पहले मुख की शुद्धि आवश्यक है क्योंकि जिह्वा पर झूठ बोलने, कलह व भोजनादि का मल रहता है। जप करने के पहले उस देवता के अनुसार मंत्र का दस बार जप कर लेना चाहिए। मंत्र यज्ञ है और वह ईश्वर विभूति है। यज्ञ का अधिकार दीक्षाविधि से ही प्राप्त होता है। अतएव किसी योग्य व अधिकारी पुरुष से मंत्र की दीक्षा लेकर ही जप करना चाहिए।

मंत्रों का उच्चार पहले मध्यमा और पश्चात् वैखरी से रामचन्द्र जी का नाम पहले ले अर्थात् पहले कंठ में अस्पष्ट उच्चार करे पश्चात् वैखरी से स्पष्ट शब्द उच्चारें।

ज्ञान योग

हठ योग व राज योग के साथ-साथ ज्ञान योग भी आवश्यक है क्योंकि ज्ञान पथ अन्त में भक्ति पथ में मिल जाता है। जो ज्ञान पथ के पथिक होते हैं वे अन्त में महान् भक्त हो जाते हैं। जगद्गुरू स्वामी शंकराचार्य इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। पिपीलिका (चींटी) जिस तरह थोड़ा-थोड़ा करके अपना खाद्य संचय करती है उसी तरह साधक यम, नियम, हठ योग व राज योग का साधन करते-करते समाधि द्वारा पूर्ण ज्ञान को प्राप्त हो जाता है।

ज्ञान योग का साधक मुक्ति के चार साधनों-विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति (शम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा, समाधान) और

मुमुक्षत्व को बढ़ाता है तदनन्तर वह श्रुतियों को सुनता है, फिर मनन करता है और अन्त में निदिध्यासन करता है, वह प्रणव के साथ जीव और ब्रह्म की एकता के प्रतिपादक 'तत्त्व मसि' वाक्य के वास्तविक अर्थ का ध्यान करता है। इस साधन को अन्तरंग साधन कहते हैं। तब उसे आत्म साक्षात्कार अथवा आत्मा अनुभव होता है।

प्रारम्भ में उसे सविकल्प श्रेणी की शब्दानुविद्ध एवं दृश्यानुविद्ध समाधि प्राप्त होती है। फिर वह अद्वैत भावनारूप (वृत्ति सहित) समाधि में प्रवेश करता है और अन्त में अद्वैतावस्थानुरूप (वृत्ति रहित) समाधि को प्राप्त होता है।

इस योग में स्थूल शरीर से लेकर सूक्ष्म, कारण, महाकारण और अति महाकारण देह तक सब देहों की, पंचीकरण की दृष्टि से तथा व्यतिरेक और अन्वय से, आत्मा से भिन्नता सिद्ध करते हैं और चित्तवृत्ति का लय करते हुए ज्ञान के आगे लिखी सात भूमिकाएँ याद करनी पड़ती हैं।

संसार सागर को पार करके परमानन्द का अनुभव प्राप्त करने तथा मुक्ति लाभ करने के लिए योगवाशिष्ठ के अनुसार ज्ञान योग की निम्न लिखित सात भूमिकाएँ हैं। जो जीव प्रयत्नशील होते हैं वे उन सबको थोड़े ही समय में पार कर लेते हैं और जो अधिक प्रयत्नशील नहीं होते उनको जन्म-जन्मांतर लग जाते हैं। इन भूमिकाओं का वर्णन योगवाशिष्ठ में कई स्थानों पर है परन्तु एक स्थान पर उनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है।

(१) शुभेच्छा (२) विचारणा (३)तनुमानसा (४) सत्वापत्ति (५) असंसक्ति (६) पदार्थभावनी और (७) तुर्यगा। इन सातों के अन्त में मुक्ति है जिसको प्राप्त कर लेने पर कोई दुःख नहीं रहता।

(१) **शुभेच्छा**- संसार से वैराग्य हो जाने पर जब मनुष्य अपने को अज्ञानी समझकर शास्त्र अध्ययन और सत्संगति करके सत्य का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा करता है, इस विवेक वैराग्य की अवस्था का नाम शुभेच्छा है।

(२) **विचारणा**- शास्त्र और सत्संग के सम्पर्क से वैराग्य और अभ्यास से सदाचार में जब प्रवृत्ति होती है, उस श्रवण मनन की अवस्था का नाम विचारणा है।

(३) **तनुमानसा**- शुभेच्छा और विचारणा के अभ्यास से इन्द्रियों के विषयों में पूर्णतया असक्तता हो जाने पर मन के सूक्ष्म हो जाने का नाम तनुमानसा है। अर्थात् अनेक अर्थो में से एक यही अर्थ ग्रहण करना कि पंचभूतात्मक देह अनित्य और आत्मा नित्य शुद्ध बुद्ध है।

(४) **सत्वापत्ति**- पूर्व तीनों भूमिकाओ के अभ्यास से और चित्त के विषयों से पूर्णतया विरक्त हो जाने पर सत्य आत्मा में स्थिति हो जाने का नाम सत्वापत्ति है। अर्थात 'अहंब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूँ, इस धारणा को दृढ़ करना ।

(५) **असंसक्ति** - ऊपर लिखी चारों भूमिकाओं के परिपक्व हो जाने पर जब मन में पूर्णतया आसक्ति उत्पन्न हो जाती है और आत्म तत्त्व में दृढ़ स्थिति प्राप्त हो जाती है, उस अवस्था का नाम असंसक्ति है। अर्थात् नानाविधि सिद्धियों की ओर से अनासक्ति।

(६) **पदार्थ भावनी**- पूर्व पाँचों भूमिकाओं के अभ्यास से और आत्मा में निश्चल स्थिति हो जाने से जब अन्तर् और बाह्य वस्तुओं के अभाव की दृढ़ भावना हो जाती है उस स्थिति का नाम पदार्थ भावनी है इसकी सिद्धि तब होती है जब परमात्मा की सत्ता और पदार्थ की असत्ता का बहुत दिनों तक यत्नपूर्वक अभ्यास किया जाय। अर्थात् 'अहंब्रह्मास्मि' भी तो एक अहंवृति ही है अतएव इसका भी लय होना।

(७) **तुर्यगा**- पूर्व छः भूमिकाओं के अभ्यास से और पदार्थो के अनुभव न होने से अपने असली स्वरूप में निरंतर स्थित रहने का नाम तुर्यगा अवस्था है। अर्थात् आत्मस्वरूप से न उठना। जीवन मुक्त महापुरूषों को इस अवस्था का अनुभव होता है। विदेह मुक्त इस अवस्था से परे हैं।

इन सात भूमिकाओं को पार करते हुए विक्षिप्तता, गतापाता, संश्लिष्टता और सुलीनता इन चार अवस्थाओं तथा लय, विक्षेप, कषाय और रसास्वाद इन चार विघ्नों को लाँघकर केवल निरालम्ब स्थिति में तल्लीन होकर रहने को कहा गया है।

ज्ञानी सद्योमुक्ति अथवा आत्यन्तिक प्रलय को प्राप्त होता है। वह किसी लोक विशेष में नहीं जाता। उसके प्राणों का उत्क्रमण नहीं होता। स्थूल शरीर का पतन होते ही वह ब्रह्म में लीन हो जाता है।

जीवन मुक्ति और विदेह मुक्ति का भेद

ज्ञानी को जीवित अवस्था में ही विदेह मुक्ति मिल जाती है। ज्ञानी जब सत्वापत्ति नामक चतुर्थ भूमिका को आरूढ़ होता है उसी समय वह जीवन मुक्त हो जाता है। जब उसके अन्दर देहाभिमान लेशमात्र भी नहीं रहता तब उसे विदेह मुक्त कहते हैं। तुरीय अवस्था को प्राप्त होने पर ज्ञानी जीवन मुक्त कहलाता है। वही जब तुरीयातीत अवस्था को प्राप्त होता है तब उसे विदेह मुक्त कहते है। ज्ञानी को जब जाग्रत अवस्था स्वप्नवत भासने लगती है तब वह जीवन मुक्त कहलाता है। यही जाग्रत अवस्था जब उसे सुषुप्ति के समान हो जाती है तब उसकी विदेह मुक्त अवस्था कहलाती है। जिस अवस्था में चित्त का अरूप नाश होता है, उस अवस्था को जीवन मुक्त कहते हैं। जिस अवस्था में स्वरूप नाश हो जाता है उसे विदेह मुक्त कहते हैं। जीवन मुक्त संसार में रहकर उसका काम कर सकता है। भगवान् शंकराचार्य जीवन

मुक्त थे। भगवान् दत्तात्रेय और जड़ भरत विदेह मुक्त थे। वास्तव में इसकी आभ्यन्तरिक स्थिति में कोई अन्तर नहीं है।

ज्ञानी व भक्त योगी

ज्ञानी आत्मनियंता व आत्मबल का आश्रय लेकर ज्ञान प्राप्त करता है। भक्त आत्म समर्पण द्वारा भगवान् का साक्षात्कार करता है। ज्ञानी अपने स्वरूप को पहचान कर अपने अहंकार का विस्तार कर देता है और भक्त अपने को भगवान् के अर्पण कर देता है। भक्त अमृत का स्वाद लेना चाहता है परन्तु 'ज्ञानी स्वयं अमृत बन जाना चाहता है। भक्त को क्रम मुक्ति मिलती है और ज्ञानी को सद्योमुक्ति प्राप्त होती है। भक्त बिल्ली के बच्चे की तरह असहाय होकर भगवान् को पुकारता है परन्तु ज्ञानी बन्दरिया के बच्चे की भाँति दृढ़तापूर्वक अपनी माता की छाती से चिपट जाता है। चार प्रकार के भक्तों में केवल 'ज्ञानी भक्त' ही पराभक्ति का अधिकारी होता है।

ज्ञानी व योगी

ज्ञानी चलते फिरते,खाते पीते व बातचीत करते हुए भी अपना साधन कर सकता है। उसे किसी एकांत या कोठरी में बैठ कर आसन लगाने की आवश्यकता नहीं। राज योगी को भी एकांत और आसन की आवश्यकता है। ज्ञानी सदा समाधि (सहज अवस्था) में स्थित रहता है। उसकी नित्य दृष्टि होने से वह माया के वशीभूत नहीं होता। ज्ञानी के लिए 'समाधि' व 'व्युत्थान' अवस्थायें नहीं होती, परन्तु जब योगी समाधि से नीचे उतरता है तब उसे माया फिर घेर लेती है। राज योगी अपनी चित्तवृत्तियों को किसी पात्र में किसी वस्तु के बन्द करने की तरह ढक देता है, जिससे उसके अन्दर उनका आना जाना बन्द हो जाता है परन्तु ज्ञानी अपनी वृत्तियों का इस प्रकार निरोध

न करके वह उनका साक्षी बन जाता है। वह अपने सात्विक अन्त:करण से आकार वृत्ति उत्पन्न करता है। ज्ञानी अपने सत्संकल्प द्वारा सिद्धियों को प्रकट करता है, राज योगी धारणा, ध्यान व समाधि के समुदायरूप संयम के द्वारा ऐसा करता है। राज योगी की साधना मन से आरम्भ होती है। ज्ञानी अपना अभ्यास बुद्धि और इच्छाशक्ति के आधार पर करता है।

जब तक समाधि द्वारा पूर्ण ज्ञान नहीं हो जाता तब तक पूर्ण शांति उत्पन्न नहीं होती, अतएव ज्ञान पथ के पथिक को ज्ञान प्राप्ति के लिए समाधि का आश्रय लेना चाहिए।

समाधिर्विदुषां स्नानं समाधिर्विदुषां जपः।

समाधिर्विदुषां यज्ञः समाधिर्विदुषां तपः॥

(राम गीता ।४६)

अर्थात् ज्ञानियों का समाधि ही स्नान, समाधि ही जप, समाधि ही यज्ञ और समाधि ही तप है। सारांश समाधि ही पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का एक मात्र उपाय है।

जहं-जहं जाऊ सोई परिक्रमा जो-जो करूं सो पूजा।

सहज समाधि सदा उर राखूं भाव मिटा दूं दूजा॥

ज्ञान योग में बतलाया है कि **'येनात्मैवात्मनाजितः'** आत्मा से आत्मा को जीते अर्थात् मन से ही मन को जीते। पंचीकृत शरीर नाशवान् है, केवल आत्मा ही अविनाशी है, ऐसा विचार करके जीवात्मा अपनी अनेक आवर्णों में व्याप्त जीव दशा को व्यतिरेक से नष्ट करके **'अहंब्रह्मास्मि'** की वृत्ति को अनवरत बना रखने का अभ्यास करें। 'वृत्ति जिधर जाय उधर आप न जाय, पीछे साक्षी होकर खड़े-खड़े देखता रहे तो निज स्वरूप से भेंट हो जाती है। 'अर्थात् वृत्ति की ओर देखते रहने से वह आप ही अन्दर विलीन हो जाती हैं। पीछे रह जाता है केवल

उर्वरित वस्तु चैतन्यघन आप। इसका यही अभ्यास है। ऐसे चैतन्य घनानन्द में निमग्न रहने से देखना, सुनना, बोलना, चालना, चलना, फिरना आदि सब कर्म होते हुए भी आप निज स्वरूप में ही लीन रहता है और सब कामों को तटस्थवत् देखता है। ऐसी सहज स्थिति को पहुँचा हुआ साधक ऐहिक पारलौकिक सभी भोगों को तुच्छ समझता है। यही निर्विकल्प समाधि है। इस ज्ञान योग में **'गुरुदेव परम्, गुरुदेव परम्'** इस प्रकार गुरु की बड़ी महिमा है।

सिद्ध योग

जिस पथ से बिना कष्ट के योग प्राप्त होता है उसको सिद्ध मार्ग कहते हैं। योग रूप सिद्धि को प्राप्त करने का पथ सुषुम्ना नाड़ी है। जब इस नाड़ी से प्राण वायु प्रवाहित होकर ब्रह्मरंध में स्थित होता है तब साधक को जीव ब्रह्मैक्य ज्ञान रूप योग प्राप्त होता है। गुरु द्वारा शक्ति का संचार होने पर कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है। उसके पश्चात् क्रमोन्नति द्वारा योग लाभ होता है। इस सम्बन्ध की आवश्यक बातें आगे दी जाती हैं।

(१)बाह्य और आन्तर् शुद्ध होना चाहिए (२) आहार - विहार नियमित व शुद्ध हो (३) मस्तिष्क में क्षोभ पैदा करने वाले कोई कार्य न करना चाहिए (४) ईश्वर अथवा इष्ट में पूर्ण भक्ति हो (५)आध्यात्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय व गुरु पर पूर्ण श्रद्धा (६) साधना का स्थान नीरव, एकांत, स्वच्छ और शुद्ध वायु युक्त हो (७) साधना प्राय: सायंकाल व अर्ध रात्रि में अवश्य करना चाहिए। आधी रात्रि का समय ध्यान और जप के लिए श्रेष्ठ है (८) इन्द्रियों व जिह्वादि का पूर्ण संयम करें (९) मन-बुद्धि से किसी का अहित न सोचना बल्कि प्राणी मात्र से हित की भावना करना (१०) प्रत्येक दशा में ब्रह्मशक्ति का स्वरूप समझते हुए अपनी आत्मा को अजर,

अमर व अजेय और सब शक्तियों को केन्द्र स्थान समझना (११) स्त्री जाति को जगदम्बा का स्वरूप समझकर कभी भोग वस्तु न समझना बल्कि सदैव माता के रूप में उनको देखना।

इस योग में साधक को परिश्रम करके सब योगों की आधार स्वरूप कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने के लिये योगशास्त्रोक्त आसन, मुद्रा, प्राणायामादि कुछ भी अस्वाभविक ढंग से करने की आवश्यकता नहीं, केवल गुरु शक्ति के प्रभाव से ही कुण्डलिनी शक्ति जागृत हो जाने से स्वाभविक रूप में योग मार्ग प्राप्त हो जाता है। इसी को 'सहज कर्म' कहते हैं। जो स्वभाव से होता है वही वास्तव में सहज है।

स्वाभाविक और अस्वाभाविक भेद से योग पथ दो प्रकार का है। जो अस्वाभाविक उपाय अत्यन्त कष्ट साध्य व विध्न युक्त होते है। जो स्वाभविक हैं वह स्वभावतः ही होता है, वही साध्य और सुखद होता है और उसमें किसी तरह के कष्ट व विपत्ति की आशंका नहीं होती। जो कार्य स्वभाव से होता है उसमें आनन्द और सुख मालूम होता है और जो आग्रह या हठपूर्वक किया जाता है उसमें कष्ट-अप्रसन्नता आदि प्रतीत होने के कारण अनिष्ट कारक होता है। स्वभाव से जो होता है उसमें बाधा डालने पर भी हानि होने की सम्भावना रहती है। अतएव गुरु शक्ति के प्रभाव से स्वभावतः जो आसन, मुद्रा और प्राणायामादि नाना प्रकार के अङ्ग संचालन करने की जो इच्छा होती है उसमें आनन्द, स्फूर्ति व शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। जिस तरह शरीर में कोई रोग हो जाने पर वैद्य रोगी की नाड़ी आदि द्वारा उसका वास्तविक कारण जानकर उसी के अनुसार औषधि देता है उसी प्रकार गुरु भी साधक की योग्यता आदि का विचार करके उसमें शक्ति संचार के द्वारा सिद्ध मार्ग प्राप्त होने पर एक मात्र गुरुपदिष्ट मंत्र, जप या ध्यान द्वारा ही स्वभावतः आसन, मुद्रा, प्राणायाम,ध्यानादि सब योगांक शिष्य को अनायास ही आश्रित हो जाते हैं अधिक परिश्रम नहीं

करना पड़ता है बल्कि उसे गुरु से इन सब प्रकार के साधनों आदि का स्वतन्त्र रूप से उपदेश लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह शक्ति सम्पन्न गुरु की कृपा प्राप्त होने पर ही सम्भव है।

इसी पथ से क्रमशः अग्रसर होते -होते साधक शीघ्र ही योग सिद्धि प्राप्त करके कृतार्थ हो जाता है। इसी उपाय से स्वभावतः योगादि साधन क्रम से जीव और ब्रह्म का ऐक्यज्ञान अथवा अखंड चैतन्यानुभूति होती है। इसी को सिद्ध मार्ग का सिद्ध योग कहते हैं।

जपयोग

महर्षि पतंजलि ने अपने योग सूत्रों में मंत्र सिद्धि मानते हुए लिखा है कि इष्ट मंत्र के जप से इष्टदेव के दर्शन प्राप्त होते हैं। प्रणव मुख्य मंत्र है और प्रणव के पश्चात् गायत्री मंत्र का महत्व है । मनु महाराज ने भी इसकी पुष्टि की है। जपयोग में भी सब साधन व योग आ जाते हैं मुख्य प्रकार के जपों का विवरण आगे दिया जाता है।

(१) नित्य (२) नैमित्तिक (३)काम्य (४)निषिद्ध (५) प्रायश्चित्त (६) अचल (७) चल (८)वाचिक (९) उपांशु (१०) भ्रमर (११)मानस (१२) अखंड (१३) अजपा (१४) प्रदक्षिणा ।

(१) **नित्य जप**- प्रातः व सायँकाल गुरुमंत्र का नित्य नियमित रूप से जप किया जाता है। यह नित्य व हर एक अवस्था में करना चाहिए। आपातकाल, यात्रा, बीमारी तथा स्नान न कर सकने पर हाथ, पैर व मुँह धोकर कुछ जप तो अवश्य कर लेना चाहिए। इससे नित्य दोष दूर होते हैं, अभ्यास, आनन्द तथा ईश्वर की समीपता बढ़ती है। उपवास के दिन, दिन में न सोना और रात्रि को जागरण व जप करना चाहिए।

(२) **नैमित्तिक जप**- किसी निमित्त से जो जप होता है वह

नैमित्तिक जप है। अपने उपास्य देव से सम्बन्ध रखने वाले दिन जैसे शिवरात्रि, रामनवमी, कृष्ण जन्माष्टमी आदि व एकादशी, पूर्णमासी, अमावस्या आदि दिनों व पर्वों में एकांत मे बैठकर जप करना चाहिए इससे पुण्य का उदय व पाप का नाश होता है। जिसको उद्देश्य करके जप किया जाता है वह उसी को प्राप्त होता है।

(३) **काम्य जप**- किसी कामना की सिद्धि के लिए जो जप किया जाता है। उसे काम्य जप कहते हैं। यह मोक्ष के लिए नहीं बल्कि आर्त, अर्थार्थी, काम व कामी लोगों के लिए उपयोगी है। उसके साधन में पवित्रता, नियमों का पालन, धैर्य, मन व इन्द्रिय निग्रह, मिताहार व ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है। योग्य गुरु से योग्य मंत्र का विधिपूर्वक जप हो। दक्षिणा दें, भोजन करावें। हवन करावें, इस तरह के अनुष्ठान से कामना अवश्य पूर्ण होती है।

(४) **निषिद्ध जप**- मनमाने ढंग से अविधि व अनियम जप करने को निषिद्ध जप कहते हैं। मंत्र का शुद्ध न होना, अयोग्य व अपवित्र मनुष्य से मंत्र लेना, देवता और मंत्र व अनेक मंत्रों को एक साथ अविधि पूर्वक जपना, मंत्र का अर्थ और विधि न जानना,श्रद्धा न होना, संयम न रखना यह निषिद्ध जप कहलाता है। इसलिए ऐसा कोई न करे। इससे लाभ की अपेक्षा हानि ही होती है।

(५) **प्रायश्चित्त जप**- किसी दोष या प्रमाद के दुरित नाश के लिए जो जप किया जाता है उसे प्रायश्चित्त जप कहते हैं। मनुष्य के मन की गति अधोगति की ओर है इसलिए उससे अनेक प्रमाद हो जाते हैं। यदि उन दोषों का परिमार्जन न किया जाय तो अशुभ कर्म संचित होने से अनेक दु:ख भोगने पड़ते हैं और वह प्रारब्ध बनकर भावी दु:खों की सृष्टि करते हैं इसलिए संकल्प पूर्वक जप करने से मनुष्य वियतात्मा बन सकता है मनुष्य से नित्य ही अनेक दोष हो जाते हैं इसलिए उनका नित्य ही नष्ट करना आवश्यक है। अल्प के लिए अल्प और अधिक के लिए अधिक जप करना चाहिए। नित्य न हो

तो हफ़्ते में एक बार अवश्य ही वह जप करना चाहिए। प्रातःकाल पहले गौमूत्र प्राशन करे, गंगाजी या जो तीर्थ आदि हों उसमें स्नान करे। यह भी न हो तो **'गंगा गंगेति'** मंत्र क़हकर स्नान करें, भस्म, चन्दन आदि लगाकर देव, गुरु, द्विज आदि के दर्शन व परिक्रमा करें। दोष के हिसाब से जप संख्या निश्चित करके उसे पूरा करें।

(६) **अचल जप**- इसके लिए आसन,गोमुखी आदि सामग्री होना चाहिए। इसका उपयोग परोपकार में किया जाता है। इसमें व्याघ्राम्बर, मृगाजिन, माला व गोमुखी होना चाहिए। स्नानादि व देशकाल का स्मरण करके नित्य नियत संख्या में जप करना चाहिए। आहार विहार नियमित रखे ताकि बीच में जप खंडित न हो। देवता को वश तथा प्रसन्न करना इसका लक्ष्य है। भस्म व जल अभिमंत्रित करके देने से वह उपकारी होगा ।

(७) **चल जप**- यह जप नाम स्मरण ऐसा है। केवल भगवान् के नाम के स्थान पर मंत्र को जप करना है। इसमें कोई बंधन या नियम नही हैं। अन्य जप करने वाले भी इसे कर सकते हैं। जप करने वाला कठोर व मिथ्या भाषण न करें। इससे समय सार्थक होता है व जप करने वाला सुरक्षित, सुखपूर्वक रहकर परमार्थ को प्राप्त होता है व उत्तम गति पाकर कर्मबंध से छूट जाता है। इसके लिए माला व सुमिरनी रखने से विस्मरण नहीं हो पाता। सुमिरनी से सुभीता भी रहता है क्योंकि वह जेब आदि में रह सकती है और बग़ैर प्रकट हुए बराबर जप हो सकता है।

(८) **वाचिक जप**- जिस जप का जोर से उच्चारण हो उसे वाचिक जप कहते हैं। इससे वाक् सिद्धि होती है।

(९) **उपांशु जप** - इस जप में मुँह तो हिलता है परन्तु उच्चारण मुँह में ही होता है किसी को सुनाई नहीं देता। इसमें दृष्टि अर्धोन्मिलित रहती है। इससे साधक स्थूल शरीर से सूक्ष्म में प्रवेश करता है।

(१०) **भ्रमर जप**- भ्रमर की तरह गुनगुनाते हुए यह जप होता है इसलिए इसे भ्रमर जप कहते हैं। इसमें ओंठ नही हिलते आँखें झपी रहना चाहिए। यह जप बड़े महत्व के हैं। इसमें कुम्भक होने लगता है। पूरक जल्दी व रेचक धीरे-धीरे होता है। आधार चक्र से आज्ञा चक्र तक उनका कार्य अल्पाधिक रूप से क्रमश: होने लगता है व जाग्रत हो जाते हैं, चित्त एकाग्र होता है। दिव्य व इष्ट दर्शन होते हैं।

(११) **मानस जप**- यह जप का प्राण ही है। इसमें मंत्र का उच्चारण करके मन में ही मंत्र वृत्ति करनी पड़ती है। नेत्र बन्द रहते है। मंत्रार्थ का चिन्तन ही इसमें मुख्य है। मनु महाराज के कथनानुसार विविध यज्ञ की अपेक्षा यह जप हज़ार गुना श्रेष्ठ है पहले इष्ट देव का सगुण ध्यान करके यह जप किया जाता है पश्चात् निर्गुण स्वरूप का ज्ञान होता है तब उसका ध्यान करके जप किया जाता है। नादानुसन्धान के साथ यह जप करने से बहुत उपकारी होता है।

(१२) **अखंड जप**- यह विशेषकर त्यागियों के लिए है। आहार आदि का आवश्यक समय छोड़कर शेष समय जप करना चाहिए। लगातार जप करने से मन उचटने पर कुछ समय ध्यान लगावें, तत्त्व चिन्तन और फिर जप करें। जप करते-करते थकने पर ध्यान करें और ध्यान करते-करते थकने पर जप व दोनों से थकने पर आत्म तत्त्व का विचार करें। **'तज्जपस्तदर्थभावनम्'** इस योग सूत्र के अनुसार मंत्रार्थ का विचार करके उस भावना के साथ मन्त्रावृत्ति करें। तब जप बन्द करके स्वरूप वाचक 'अजो नित्य: आदि शब्दों का विचार करते हुए स्वरूप का ध्यान करें। तब ध्यान बन्द करके तत्त्व चिन्तन करें। आत्मविचार में ज्ञान विषयक ग्रन्थावलोकन भी आ जाते हैं। जैसे गीता, उपनिषद्, योगवाशिष्ठादि। सतत् बारह वर्ष ऐसा जप होने पर उसे तप कहते हैं।

(१३) **अजपा जप**- किसी भी तरह यह जप किया जा सकता

है। इसके लिए माला आवश्यक नहीं। श्वासोच्छवास की क्रिया के बारम्बार होने के साथ ही मंत्रावृत्ति की जा सकती है। यह जप सावधान रहने वालों से ही बनता है। यह सहज जप है।

(१४) **प्रदक्षिणा जप**- इसमें हाथ में रुद्राक्ष या तुलसी की माला लेकर वट, ओदुम्बर, पीपल अथवा ज्योतिर्लिंगादि के मंदिर या किसी सिद्ध पुरुष की मन में ब्रह्म भावना करके मंत्र कहते हुए परिक्रमा करना होती है। इससे सिद्धि प्राप्त व मनोरथ पूर्ण होता है।

योग के आठों अङ्ग जप में आ जाते हैं। (१) **यम**- बाह्येन्द्रियों का निग्रह अर्थात् यम है। आसन पर बैठना, दृष्टि को स्थिर करना सब यम ही हैं। (२) **नियम**- अन्तरिन्द्रियों का निग्रह अर्थात् 'शम' है। मन को एकाग्र करना इत्यादि से इसका साधन इसमें होता है। (३) **आसन**- स्थिरता से सुखपूर्वक विशिष्ट रीति से बैठने को आसन कहते हैं। जप में पद्मासन आदि लगाना पड़ते हैं। (४) **प्राणायाम**- विशिष्ट रीति से श्वासोच्छ्वास की क्रिया करना प्राणायाम है, जप में यह करना ही पड़ता है। (५) **प्रत्याहार**- शब्दादि विषयों की तरफ़ से मन को लौटा कर अन्तर्मुख करना प्रत्याहार है यह भी इसमें करना पड़ता है। (६) **धारणा**- एक ही स्थान में दृष्टि को स्थिर करना जप में आवश्यक ही है। (७) **ध्यान**- ध्येय पर चित्त की एकाग्रता जप में होना ही चाहिए। (८) **समाधि**- ध्येय के साथ तदाकारता जप में रखे बिना उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। तात्पर्य यह कि अष्टांग योग जप में आ जाता है इसलिए इसे जप योग कहते हैं। कर्म, उपासना, ज्ञान और योग के मुख्य-मुख्य अङ्ग जप योग में है इसलिए यह मुख्य साधन है। यह योग सदा सर्वत्र सब के लिए है।

मंत्र जप यज्ञ है और वह ईश्वर की विभूति है। यज्ञ का अधिकार दीक्षा विधि ही से होता है, यह वैदिक नियम है। इसलिए किसी अधिकारी पुरूष या महात्मा से मंत्र की दीक्षा लेकर जप करना चाहिए। गायत्री मंत्र भी दीक्षा विधि से लिया जाता है।

श्री गुरु से मंत्र की दीक्षा लेकर साधन मंत्र का जप आरम्भ करें। सुविधा हो तो किसी एकांत, पवित्र, रम्य स्थान, नदी किनारे या मन्दिर में जप करें। ऐसा न हो तो घर ही में कोई अलहदा स्थान बना लें और उसमें देवताओं व साधू महात्माओं के चित्र रखें। स्नान करने के बाद चन्दन व भस्म आदि लगाकर कुशा अथवा ऊन की आसन पर पूर्व या उत्तर को मुँह करके बैठे । इष्टदेव की मूर्ति या चित्र की पूजा करें फूल माला चढ़ाकर होम धूप देवें । आसन पर स्वास्तिक, पद्म या सिद्धासन सें बैठे। प्राणायाम करें पश्चात् माला से जितना जप नियत कर लें उतना प्रतिदिन इष्टदेव को अर्पण कर दें अर्थात् कहें **'ॐब्रह्मणे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे न मम'** अथवा **'कृष्णार्पणमस्तु'** तात्पर्य यह आहुति आदि ब्रह्म व कृष्ण भगवान् के अर्पण है इसका फल मैं नहीं चाहता। किसी धर्मग्रन्थ गीता, भागवत व रामायण आदि का पाठ करे और भोग या तीर्थ प्रसाद लेकर उठे।

पूर्ण योग

योग मार्ग में पदार्पण करने वाले जिज्ञासु जब धर्म ग्रन्थों व योग सम्बन्धी पुस्तकों में भक्ति योग, कर्म योग, ज्ञान योग, हठ योग, लय योग, ध्यान योग आदि कई प्रकार के योगों के नाम व उनकी व्याख्या पढ़ते हैं तो सहसा उनके मन में यह प्रश्न उठता है कि क्या यह सब योग एक दूसरे से भिन्न हैं? और क्या उनका एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नही हैं? और इसके कारण भी हैं क्यों कि हठ योगी कहते हैं कि हम आसन-प्राणायाम द्वारा प्राण स्थिर और चित्त को एकाग्र करते हैं, ज्ञान योगी कहते हैं कि हम मननादि साधन से स्थिरता का साधन करते हैं, कर्म योगी कहते हैं कि हम कर्म करने में ही अपना जीवन समर्पित कर देते हैं, भक्त लोग कहते हैं कि हम नाम स्मरण आदि करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक साधक अपने मार्ग को दूसरे से

पृथक् बतलाया है। इनमें से एक शरीर का आश्रय लेता है, दूसरा प्राण पर निर्भर करता है, तीसरा मन का उपयोग करता है, चौथा कर्मेन्द्रियों का सहारा लेता है और पाँचवाँ स्मरणशक्ति का आश्रय लेता हैं। इस प्रकार इनमें से एक भी सम्पूर्ण मानव शक्तियों का उपयोग नहीं करता। हर एक प्रकार का साधक एक-एक शक्ति का उपयोग करता है और इसीलिए वह अपने आपको दूसरे से पृथक् समझता है और इसी पृथक्त्व में उसे अपूर्णता का भी अनुभव होता है।

मनुष्य के शरीर में आत्मा, बुद्धि, मन , प्राण, इन्द्रियाँ, पंचभूत, आदि अनेक शक्तियाँ हैं। इन सब का एक साथ योग होने पर ही योग पूर्ण हो सकता है। जो साधक यह कहते है कि हम केवल प्राणों का साधन करते हैं, अथवा केवल अपनी आत्मा का ही परमात्मा के साथ एकीकरण करते हैं वे एक ही अंश का योग करते हैं, उनके सम्पूर्ण अङ्गों के साथ योग नहीं होता। अत: वे अपूर्ण योग करते है और इसलिए वे पृथक्त्व का अनुभव करते हैं।

वास्तव में आत्मा, बुद्धि, मन, प्राण, इन्द्रिय पंचभूतादि सब का उपयोग किए बिना किसी भी योग का साधन नहीं हो सकता क्योंकि प्रत्येक योग में सब साधनों का न्यूनाधिक उपयोग होता ही है। परन्तु साधक यह अनुभव नहीं करता बल्कि वह यह मानता है कि मेरा साधन मार्ग दूसरे मार्गों से भिन्न है। जो यह मानते हैं। वे पूर्ण योग के लाभ से वंचित रहने के साथ ही उनका साधन भी अपूर्ण रह जाता हैं।

बहुत से साधक तो यह समझते है कि योग की सिद्ध आत्मा को परमात्मा के साथ मिला देने से ही हो जाती है, साथ ही यह भी समझते हैं कि मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय तथा पंचभूतों का परमात्मा के साथ योग नहीं होता अतएव वे उनको विशेष महत्व नहीं देते। यही अपूर्ण योग है या पूर्ण योग का अपूर्ण ज्ञान है। हमारे ऋषि मुनियों ने

तो हमें पूर्ण साधन दिया है परन्तु हम एक ही अंश साधन के कारण पूर्ण योग के लाभ से वंचित हो रहे है।

अब यह प्रश्न उठता है कि पूर्णयोग क्या है? उसके लक्षण क्या हैं? और उसका किस प्रकार साधन करना चाहिए। जिस योग में एक ही साथ सम्पूर्ण मानव शक्तियों का योग परमात्मा की सम्पूर्ण शक्तियों के साथ होता है वही पूर्ण योग है और वह ज्ञान स्वरूप ज्ञान होने के बाद ही हो सकता है। अतएव यह जानना आवश्यक है कि परमात्मा और जीवात्मा की कौन-कौन सी शक्तियाँ हैं? गीता में भगवान् कृष्ण कहते है कि :-

पृथ्वी, जल, तेज़, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार यह आठ प्रकार की अपरा प्रकृति और नवीं जीवरूपी परा प्रकृति है। अर्थात् यह नौ प्रकार की ईश्वर की प्रकृति है। क्या यह नौ प्रकार की प्रकृति मनुष्य के पास नहीं है? क्या पंचभूत, मन, बुद्धि व अहंकार आदि मनुष्य के पास नहीं है? अवश्य हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि जो नौ शक्तियाँ ईश्वर के पास हैं, वे ही मनुष्यों के पास भी हैं। फिर मनुष्य केवल एक ही शक्ति का योग क्यों करता है? परमात्मा की सम्पूर्ण शक्तियों के साथ अपनी सम्पूर्ण शक्तियों का योग क्यों नही करता? विचार करने पर यह मालूम होता है कि मनुष्य ऐसा अवश्य कर सकता है। तब फिर इस तरह के पूर्ण योग का साधन कैसे किया जाय, केवल यही एक प्रश्न पर विचार करना शेष रह जाता है ।

साधक को पहले यह विचार करना चाहिए कि ईश्वर की प्रकृति में जो नौ तत्त्व हैं, वे ही हमारे अन्दर भी हैं। ईश्वर की प्रकृति इस समूचे विश्व में पूर्णतया व्याप्त है, कोई भी स्थान उससे रिक्त नहीं है। इसी कारण ईश्वर को 'सर्व' 'विश्व' कहते हैं। (**विश्वं विष्णु 'पुरुष एवेदं सर्वम्'**) जब परमेश्वर 'सर्व' है तब यह सर्वरूप उसी का रूप हुआ, जिसके अन्दर साधक भी है इस तरह साधक को अपने आपको महासागर के अन्दर के एक जल बिन्दु के समान समझना

चाहिए। जो तत्त्व सम्पूर्ण महासागर में है वही एक जल बिन्दु में भी है। इसी तरह जो नौ तत्त्व ईश प्रकृति में है, वे ही साधक की प्रकृति में भी हैं और ईश्वर की महान् प्रकृति में साधक की अल्प प्रकृति सम्मिलित है। महासागर प्रभु है और साधक उसी का एक बिन्दु रूप है। इस भावना में साधक को स्थिर होकर विचार करना चाहिए कि अपने पृथ्वी तत्त्व के साथ ईश्वर की प्रकृति का पृथ्वी तत्त्व मिला है या नहीं, गंध से पृथ्वी तत्त्व का ज्ञान होता है। क्या कोई ऐसा स्थान जहाँ गंध न हो? अपने शरीर में गंधवती पृथ्वी है, वैसे ही सम्पूर्ण विश्व में भी है। क्या अपने शरीर की गंधवती पृथ्वी विश्वरूपी ब्रह्मांड की ईश प्रकृति से पृथक है? पृथक कहाँ से हो सकती है? गंध में गंध मिला हुआ है। इसी तरह अपने शरीर के जल, तेज़, वायु, आकाश आदि तत्त्वों के साथ प्रकृति के यह तत्त्व कैसे मिले हुए हैं, इसका अनुभव करें। विवेक पूर्वक यह निश्चय करना चाहिए और उसका यह अनुभव करना चाहिए कि ईश्वर के विश्व व्यापक शरीर से मेरा शरीर पृथक् नहीं है। जैसे कि कपड़े में सूत का भाग है वैसे ही उस प्रभु में मैं हूँ। न मैं उससे पृथक् हूँ और न वह मुझसे पृथक् है।

जब तक मन में ऐसा निश्चय न हो जाय तब तक बार-बार विचार करके ऐसा अनुभव करने की चेष्टा करना चाहिए और यह बात जानना चाहिए कि किस तरह अपनी प्रकृति ईश्वर की प्रकृति के साथ मिली हुई है। जब यह अनुभूति होगी तभी यह ज्ञान प्राप्त होगा कि अपनी प्रकृति का सम्पूर्ण योग परमात्म प्रकृति के साथ सदा सर्वदा है। यही पूर्ण योग के अभ्यास का प्रथम पाठ है।

इस योग में यह भावना कि, 'मैं प्रभू के साथ सर्वदा संयुक्त हूँ' सदा जागृत रहना चाहिए। 'मै अलग हूँ और वह अलग है' -- यह भाव यहाँ है ही नहीं। अपनी सब शक्तियाँ उसके साथ नित्य सम्बद्ध हैं। यही अनुभव करना अत्यन्त आवश्यक है।

इसके आगे दूसरा प्रश्न यह है कि क्या यह पंच महाभूत पृथक्

सत्ताधारी है अथवा एक सत्तत्व के, यह पाँच गुण हमारी पाँचों इन्द्रियों को पाँच अनुभव दिला रहे हैं।

एक सत्तत्व के साथ जब आँख काम करती है तब उसे उसका रूप दिखता है और जब कान कार्य करता है तो उसे शब्द सुनाई पड़ता है। यही पृथक्, अनुभव आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा की निजी आंतरिक घटना के कारण होता है। वस्तुत: जिसके यह गुण अनुभव में आते हैं, वह तत्त्व एक ही है, उस तत्त्व में पृथक्-पृथक् भाव नहीं है। जैसे आँख आम का पीला रंग देखती है, उसका स्पर्श हाथ करता है, उसका स्वाद जिह्वा लेती है, उसका शब्द कान सुनता है, और उसकी गंध नाक लेती है परन्तु आम तो एक ही है, आम वैसे ही मूल सत्तत्व एक ही है, किन्तु उसका सम्बन्ध ज्ञानेन्द्रियों से होने पर, पृथक् गुण अनुभूत होते हैं। एक ही सत्तत्व के अनेक गुण प्रतीत होते हैं।

इस प्रकार विचार द्वारा एक तत्त्व का अभ्यास करना चाहिए। पहले अभ्यास से यह ज्ञान हुआ कि अपनी प्रकृति के पंचतत्त्वों के साथ प्रकृति के पंचतत्त्व मिले हैं। इस अभ्यास से यह अनुभव प्राप्त हुआ है कि जीव और शिव में एक ही तत्त्व है और वह सब परस्पर मिला हुआ है, उसमें पार्थक्य बिल्कुल नहीं है। यह पूर्ण योग का दूसरा पाठ हैं।

पंचतत्त्वों का एकीकरण इस तरह प्रत्यक्ष अनुभव में आ सकता है। यह केवल कल्पना की बात नहीं है। साधक विचार करें और अपने शरीर के पंचतत्त्व विश्वव्यापी पंचतत्त्वों के साथ मिले हुए हैं, इसको अनुभव करें अथवा जिस एक तत्त्व के पाँच गुण पाँच इन्द्रियों द्वारा प्रतीत होते हैं, वह एक तत्त्व के पाँच गुण इन्द्रियों द्वारा प्रतीत होते हैं वह एक तत्त्व जैसा अपने शरीर में है वैसा ही सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है, इस बात को विचार करके जान लें। यह जानते ही अपनी सम्पूर्ण शक्तियों का पूर्ण योग विश्व व्यापक शक्तियों के साथ हो जाता है और **'नेह नानास्ति किंचन'** का अनुभव होता है। यही अखंड एकता का अनुभव है।

जब पंच महाभूतों का योग हो गया तब उसके बाद मन का विचार करना चाहिए। मन क्या करता है? मन मनन करता है और सर्वत्र 'सत्ता, भान और प्रियता' का अनुभव करता है। साधक अगर विचार करेंगे तो उसको पता लगेंगा कि मन द्वारा तीन प्रकार के अनुभव होते हैं (१) 'यह सब है', (२) 'यह मुझे प्रतीत होता है', (३) ' यह मुझे प्रिय है'। इन्ही अनुभवों का संक्षिप्त नाम --'सत्, चित्त, आनन्द' अस्ति, भाति, प्रियत्व भी इनको कहते हैं। देखने वाला अपने अतिरिक्त सम्पूर्ण जगत् में यह तीन अनुभव करता है। यदि साधक अपने साथ सम्पूर्ण विश्व में यह तीन अनुभव लेने का यत्न करेगा तो इस तरह भी उसका 'पूर्ण योग' सिद्ध होगा और पार्थक्य का ज्ञान कराने वाला मन भी इस तरह विश्व रूप के साथ एक हो जायगा।

प्रथम पंच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा पंचभूतों का ज्ञान हुआ। वह अब जाता रहा और एक ही वस्तु के तीन पहलुओं का ज्ञान हुआ। जो वस्तु (अस्ति) है वही (भाति) प्रतीत होती है और वही (प्रिय) प्रेमरूप है। अणु - रेणु को इन तीन भावों से देखिए, उसमें अपने आपको मिलाकर अपना पृथक्त्व हटाने का प्रयत्न कीजिए। इस तरह के अभ्यास से यह ज्ञान उत्पन्न होगा कि सब वस्तु एक ही है। यह पूर्ण योग का तीसरा पाठ है। इसमें पंचतत्त्व हट जाते हैं और केवल तीन ही भाव रह जाते हैं।

इसके बाद अब बुद्धि आती है, यह कहती है कि यहाँ न तो पंचतत्त्व ही हैं, न तीन भाव ही हैं, केवल जड़ और चेतन दो ही वस्तुएँ हैं। विश्व में कुछ जड़ और कुछ चेतन दिखाई पड़ता है। ऐसा दिखता भी है और अनुभव में भी आता है जो जड़ है वह चैतन्य नहीं है और जो चैतन्य है वह जड़ नहीं हैं। अतएव बुद्धि द्वारा केवल यह दो पदार्थ ही निश्चित होते हैं। इन्द्रियों के सम्बन्ध से हमने पाँच पदार्थ निश्चित किये थे, मन के द्वारा तीन किये थे, अब बुद्धि के द्वारा केवल दो

ही निश्चित होते हैं। जड़ और चैतन्य। विश्व में जड़ भी है चैतन्य भी हैं। साधक में शरीर जड़ है और जीव चैतन्य। अतएव जो जड़-चैतन्य विश्व भर में है वे ही साधक में भी हैं। ऐसा विचार कर साधक को अपना जड़ भाग विश्व के जड़ के साथ, अपना चैतन्य विश्व व्यापक चैतन्य के साथ मिला देना चाहिए। अब हम किस रूप में अलग रहे? अपने साथ जो सम्पूर्ण विश्व है उसमें केवल दो ही पदार्थ रह गए हैं-- एक जड़ और एक चैतन्य शेष पंच महाभूत अस्ति, भाति, प्रियत्व अथवा सत्व, रज, तम सब उसी जड़-चैतन्य के अन्तर्गत आ गए।

अब साधक अलग कहाँ रहा? वह तो विश्व व्यापी जड़-चैतन्य में ही मिल चुका है अब यह प्रश्न उठता है कि क्या जड़ और चैतन्य पृथक्-पृथक् हैं। यहाँ आत्मा को साक्षी रूप में देखना चाहिए। जागृति में जब वह देखता है तभी उसको ऐसा प्रतीत होता है कि यह जड़ है या चैतन्य और तभी इनका अस्तित्व भी होता है। यदि यह दृष्टा सो जाय और जागे ही नहीं तो कौन किसको जड़ कहेगा और कौन किसको चैतन्य। अतः इस दृष्टा का ज्ञान ही यह सब होता है, दृष्टा का स्वरूप ही ज्ञान है जो इस विश्व में परिणित होता है, फिर दृष्टा से भिन्न कौन सा पदार्थ रहा? जड़ और चैतन्यरूप में जो भेद है वह इसी के निज रूप का भेद है।

अब साधक इस चतुर्थ पाठ के समय स्वयं ही सब कुछ बन गया। अब वह यह कहता है कि तब यह सब है, नहीं तो नहीं है। अर्थात् मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं है, मैं ही सब कुछ हूँ। मैं ही सम्पूर्ण हूँ। यह पूर्ण योग का अन्तिम पाठ है। इसी बात की निम्न श्रुतिवाक्य ने भी पुष्टि की है।

'मैं ही नीचे' ऊपर, आगे पीछे, दाहिनी और बाँई ओर हूँ, और मैं सब कुछ हूँ', (छान्दों ७/२५)

यही पूर्ण योग की सम्पूर्णता है। वेद, उपनिषद् तथा शास्त्र में यही योग कहा गया है। अन्य सब योग इसी योग के अंग प्रत्यंग है और यह सब अपूर्ण योग है। यही सर्वांग पूर्ण योग है। साधक इसी का निरंतर मनन करें और पूर्ण बनें। अपूर्णता में दुःख और पूर्णता में सुख है। साधक इसी प्रकार आनन्द प्राप्त कर सकते हैं।

योग के चमत्कार

भारतवर्ष में योग का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य को आध्यात्मिक उन्नति का पूर्ण अधिकारी बनाने के लिये योग का साधन परम आवश्यक है क्योंकि उससे मन स्थिर व उन्नत तथा शरीर स्वस्थ होकर आध्यात्म मार्ग पर चलने के योग्य होता है। यही कारण है कि प्राचीनकाल से लेकर योग की क्रियाएँ आज तक यहाँ पर किसी न किसी रूप में वर्तमान है।

पतंजलि महाराज के योग सूत्रों में लिखा है कि योग क्रियाओं के फलस्वरूप ऐसी-ऐसी अद्‌भुत व अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त होतीं हैं कि साधारण मनुष्य उन पर सहसा विश्वास ही नहीं कर सकता। योगियों के सम्बन्ध में बड़ी आश्चर्यजनक बातें सुनने में आती है। आजकल भी ऐसे योगी लोग हैं जो असम्भव बातों को सम्भव करके दिखला सकते हैं। वास्तव में योगी अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त करके सब कुछ कर सकते हैं। सिद्धियों की बात जाने दीजिए योग के प्रथम व आरम्भिक साधन यम, नियम आदि के साधन द्वारा ही मनुष्य बहुत कुछ कर सकते हैं। जैसे **'अहिंसा प्रतिष्ठियाँ तत्सन्निधौ सर्व वैर त्यागः'**।

अर्थात् अपने अन्तःकरण में अहिंसा धारण करने से उससे सब प्रकार के जीवधारी बैरभाव (हिंसा भाव) को त्याग देते हैं। इसी

प्रकार **'अस्तेय प्रतिष्ठायाँ तत्सन्निधौ सर्वरत्नोपस्थितः'** अर्थात् अस्तेय को स्थापित करने से साधक के समीप सभी प्रकार के वैभव उपस्थित होते हैं।

सिद्धियों के द्वारा वह बड़े-बड़े काम कर सकता है। बग़ैर तार और रेडिओ के दूर-दूर के समाचार जानना एक साधारण सी बात है। योगी लाहिड़ी जिनकी समाधि बनारस में है उनके सम्बन्ध में वहाँ के प्रतिष्ठित लोग जानते हैं कि उन्होंने ध्यान द्वारा एक अंग्रेज़ अफ़सर की स्त्री का समाचार उसके पति को ज्यों का त्यों थोड़ी देर ही ध्यान लगाकर बतला दिया था।

बनारस के तैलंग स्वामी जिन्होंने कि २८० वर्ष की आयु में शरीर छोड़ा उनके अनेक अद्‌भुत चमत्कारों को भी बनारस के लोग भली भाँति जानते हैं।

जिन बीमारियों में अच्छे-अच्छे डाक्टर व उनकी दवाएँ व इन्जेक्शन फेल हो जाते हैं उनको योगी केवल झाड़ फूकादि द्वारा बात की बात में अच्छा कर देते हैं।

पूना के योगेश्वर ज्ञानदेव जी के केवल छू देने से ही एक भैस वेदों की ऋचायें आदि कहने लगी थी और दीवाल चलने लगी थी। उन्होंने चौदह वर्ष की अवस्था में जो गीता की व्याख्या ज्ञानेश्वरी में की है उसी से उनकी अलौकिक शक्ति का पता लगता है। बाईस वर्ष की अवस्था में तो उन्होने समाधि ही ले ली थी।

आज भी भारतवर्ष के पहाड़ों व जंगलों में ऐसे-ऐसे योगी मौजूद हैं जिनमें इस प्रकार की चमत्कार पूर्ण शक्तियाँ हैं। योगी काकभुषुण्ड चिरंजीवी कहे जाते हैं।

पुरुष ही क्या बल्कि यहाँ की महिलाएं भी कितनी योगिनी होती थीं इसकी एक कथा का महाभारत में वर्णन है कि एक ऋषि पत्नी को जब यह ज्ञान हुआ कि वह शीघ्र ही विधवा हो जायगी तब उस

सती ने जो धारणा की उससे सूर्यदेव का उदय होना ही रुक गया। सूर्योदय का समय निकले चौदह घन्टे बीत गये परन्तु सूर्य भगवान् के दर्शन नहीं हुए। तब महर्षि वशिष्ठ जी ने आकर उनसे कहा कि सूर्योदय होना क्यों रोकती हो? हम तुम्हारे मृत पति को संजीवन मंत्र से पुनः जीवित कर देंगे। अतएव सूर्यदेव को उदय होने दो, तब उस सती ने मनः संयम को छोड़ा।

अपने पूज्य पति भगवान् शंकर जी का अपने पिता प्रजापति दक्ष द्वारा अपमान किए जाने पर सती जी ने अपने शरीर से योगाग्नि प्रज्वलित कर अपना शरीर त्याग दिया था।

भक्त योगिनी मीराबाई को राणा ने जहर पिलाकर व सर्पों से कटवाकर (दंश) उनके मारने के अनेक प्रयत्न किए परन्तु वह उनका बाल भी बाँका न कर सका था।

ईश्वरीय कृपा, सद्‌गुरू के आशीर्वाद व पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण जिन साधकों को योग साधन में सफलता प्राप्त हो जाती है उनको अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं जिनको लोग चमत्कार कहते हैं, जिनको अपने धार्मिक ग्रन्थ तथा ऋषियों, मुनियों व महान् पुरुषों के जीवन चरित्र पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है वह इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि योगाभ्यास के द्वारा हमारे पूर्वजों को ऐसी-ऐसी शक्तियाँ प्राप्त थी जिनकी आजकल लोग कल्पना भी नहीं कर सकते।

आजकल लोग रेडियो, बे तार के तार, हवाई जहाज, एक्स-रे आदि को देखकर इसे आविष्कारों का ज़माना अथवा उन्नति का युग कहते हैं, परन्तु या तो उनको इस बात का पता नहीं या वह इस बात को भूल जाते हैं कि हमारे पूर्वजों ने जो-जो अद्‌भुत, विलक्षण, आश्चर्यजनक तथा अलौकिक आविष्कार किए थे उनके मुक़ाबले में आजकल के आविष्कार केवल छाया मात्र है, जिनको विदेशी लोगों ने भारतवासियों की उदारता, पराधीनता व समय परिर्वतन के कारण

अनभिज्ञता या उदासीनता अथवा छल कपट आदि द्वारा किसी न किसी प्रकार प्राप्त करके उन्हीं को दूसरे रूप में हमारे सामने उपस्थित कर दिया है।

हमारे पूर्वजों का ध्यान अपनी शक्तियों का विकास, सांसारिक वस्तुओं अर्थात् नये-नये कल कारख़ाने तथा अन्य आविष्कारों द्वारा लाखों करोड़ों व्यक्तियों के स्वतन्त्र धन्धें छीनकर व उनको उनमें काम करने के लिए बाध्य करके इनेगिने आदमियों को फ़ायदा पहुँचाने की अपेक्षा आत्मोन्नति व ईश्वर प्राप्ति में ही रहता था।

पुरानी बातों को जाने दीजिये जगद्गुरू शंकराचार्य को ही ले लीजिये। जिस समय उनके साथ शास्त्रार्थ करने में श्री मंडन मिश्र हार गये उस समय उनकी धर्मपत्नी के यह कहने पर कि वह मिश्र जी की अर्धांगिनी हैं अतएव जब तक उनको भी शास्त्रार्थ में न हरा दिया जायेगा उस वक़्त तक मिश्र जी को हारा हुआ नहीं माना जा सकता। इस बात को मान लेने पर जब मिश्र जी की धर्मपत्नी स्वामी जी से कोकशास्त्र पर विवाद करने लगीं तब बाल ब्रह्मचारी होने के कारण इस विषय का कुछ भी ज्ञान न होने से राजा सुधन्वा की रानी से जो कि इस विषय में बड़ी प्रवीण थी यह ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्होने राजा सुधन्वा के मृतक शरीर में परकाय प्रवेश क्रिया द्वारा प्रवेश किया था और रानी से ज्ञान प्राप्त करने के बाद वह मिश्र जी के घर में आकाश मार्ग से गये थे। इसके अलावा उन्होंने एक मर्तबा नर्मदा जी के जल का बहना रोक दिया था।

भगवान् बुद्धदेव को अलौकिक यौगिक ऋद्धि सिद्धियाँ प्राप्त थीं। उनके शिष्य श्री पिंडोल भारद्वाज व मौदगल्यायन आदि के यौगिक चमत्कारों के सम्बन्ध में बौद्धिक ग्रन्थों में अनेकों उदाहरण मिलते हैं। धम्मपद के १८० (१४-२) श्लोक में पिंडोल भारद्वाज के आकाशगमन व पहाड़ फटने पर उसमें से प्रकट होने आदि के कई वृतांत दिये हैं।

धम्मपद में (श्लोक १७५-१३/९) में लिखा है कि तीस भिक्षु जो कि विदेश से नेतवन में भगवान् बुद्ध के दर्शन करने के लिये आकाश मार्ग से आए थे और वार्तालाप करके उसी तरह शून्यपथ से चले गए थे। बुद्ध जी के आनन्द नामक शिष्य जो कि बाहर इस प्रतीक्षा में थे कि जब वे लोग बुद्ध जी से बातचीत करके बाहर आवें तब वह बुद्ध जी के पास जावें परन्तु अधिक समय बीत जाने पर भी जब वे लोग बाहर न निकले तब आनन्द जी को अन्दर जाकर उनको वहाँ न देख बुद्धदेव जी से पूछने पर मालूम हुआ कि वे लोग शून्य पथ से चले गए। बुद्धदेवजी ने बतलाया कि 'जो लोग चतुर्विध ऋद्धि' का विकास करते हैं वे हंस की तरह शून्य मार्ग से जा सकते हैं।

नाथ सम्प्रदाय के योगियों की अनेक आश्चर्यजनक कक्षाएँ है, जो कि हिन्दी भाषा में लिखी हुई है। गुरू गोरखनाथ, मीननाथ लुईपाद, कान्हपाद आदि की भी कथाएँ बंगला साहित्य में मिलती हैं। इनमें से श्री हरप्रसाद शास्त्री कृत **'बौद्ध गान औ दौहा'** नामक पुस्तक बंगीय साहित्य परिषद् द्वारा प्रकाशित की गई है।

यद्यपि योगियों को ऐसे चमत्कारों को सर्व साधारण को बतलाने के लिए उनके गुरूओं आदि की आज्ञा नहीं होती, साथ ही उनको दिखलाने से उनकी शक्ति का अपव्यय होता तथा लोगों से संसर्ग आदि बढ़ता है अतएव विशेष अवसरों के सिवाय वह अपनी शक्ति और सिद्धियों का उपयोग नहीं करते।

पहले की बातें जाने दीजिए आजकल भी हिमालय आदि पर्वतों पर ऐसे त्रिकालज्ञ महात्मा व योगी मौजूद है जो भूत, भविष्य और वर्तमान की बातें अक्षरशः बतला देते है। वे लोग योग बल से बर्फ़ की चट्टानों पर पड़े रहते हैं, नदियों व झरनों के बर्फ़ सदृश्य पानी से बराबर स्नान करते है। बिना अन्न जल ग्रहण किए ब्रह्मरंध्र से स्राव होने वाले अमृत बिन्दु से सदैव तृप्त रहते हैं। उनका सुंन्दर व सुडौल

शरीर देखकर लोग आश्चर्य चकित रह जाते हैं।

खेचरी मुद्रा द्वारा योगी हवा में उड़ सकता है। योग की गुटका द्वारा योगी पलक मारते ही कहीं भी पहुँच सकता है। हम अपने दूरस्थ सम्बन्धियों का समाचार जानने के लिए तार व पत्र भेजते हैं परन्तु योगियों को यह सिद्धि प्राप्त होती है कि वे ध्यान द्वारा बात की बात में संसार के किसी भी स्थान का हाल बतला सकते है और भयानक से भयानक रोग जहाँ बड़े-बड़े डाक्टरों की दवाएँ, इन्जेक्शन व दिमाग़ काम नहीं देते, योगी लोग दृष्टि, स्पर्श व मंत्र से दूर कर देते है। रोगी ही क्या वे मरे आदमी को ज़िन्दा कर सकते हैं। आज भी भारतवर्ष में ऐसे कितने ही योगी मौजूद हैं जिनको इस तरह की सिद्धियाँ प्राप्त हैं।

ऋद्धियों सिद्धियों के सम्बन्ध में स्वा0 शंकराचार्य और सुरेश्वर जी ने स्पष्ट रूप से कहा है कि **'वास्तव में सर्वात्मा या पूर्णाहंत्ता ही महा विभूति हैं'** बौद्धाचार्यों का कहना है कि स्रोतआपन्न, सकृदागामी और अन्तर्गामी अवस्था के बाद जब अर्हद् भाव का आविर्भाव होता है तब अर्थ, धर्म, निरुक्ति और प्रतिभान वृद्धि, दिव्य श्रोत्र, पर चित्त ज्ञान, अपने व दूसरों के परजन्म की स्मृति और दिव्य दृष्टि का उदय होता है 'यौगावतारोपदेश' नामक ग्रन्थ के श्लोक ७ में लिखा है कि 'संज्ञा वेदित निरोध' अवस्था प्राप्त होने पर योगी में उपर्युक्त अभिज्ञाओं का आविर्भाव होता है। इनका ज्ञान होने के कारण ही बुद्ध जी को 'षड़भिज्ञ' भी कहते थे। पातंजलि दर्शन में भी इस सम्बन्ध में अनेकों बातें दी गई हैं।

कर्मबन्ध का निरोध

योग के अर्थ है एक वस्तु का दूसरे से मिलना। आत्मिक जगत् में इसके दो स्वरूप है। (१) आत्मा का अनात्मीय पदार्थों से

सम्बन्ध और (२) आत्मा का आत्मा में लीन होना। अनात्मिक वस्तुएँ अनेक है, परस्पर विषमता लिए हुए हैं, परिवर्तनशील हैं, और आत्मा से विजातीय हैं। इनमें लीन होने की इच्छा का परिणाम सतत अतृप्ति और दु:ख है, अतएव इनमें लीनता हो ही नहीं सकती। अत: आत्मा का आत्मा में लीन होना ही वास्तविक योग है। यही स्वाभाविक और चिरस्थाई भी है। इसके भी दो अङ्ग है। (१) विजातीय पदार्थों से रुचि हटाना, उनसे वियोग करना अर्थात् अनात्मीय पदार्थों से रुचि हटाना और (२) आत्मा से योग करना।

योग के लिए आत्मा और अनात्मा का भेद, प्रकृति अर्थात् कर्म का आत्मा के प्रति आकर्षण और उससे सम्बन्ध, नवीन कर्म सम्बन्ध का निरोध तथा पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा होकर आत्यन्तिक युक्ति की उपलब्धि, इन विषयों का ठीक तथा प्रतीतयुक्त ज्ञान होना आवश्यक है।

देहरूपी प्राणियों में जो विषमताएँ और जो दु:ख-सुख, ज्ञानशक्ति आदि की अल्पता और स्वरूप भ्राँति आदि दिखलाई पड़ते हैं वे आत्मा के निजी स्वभाव नहीं हैं, क्योंकि उनकी अल्पाधिकता होती रहती है तथा उनका आत्यान्तिक अभाव भी सम्भव है। अत: आत्मा के ये भाव किसी अनात्मीय पदार्थ के निमित्त से हैं यह पदार्थ है कर्म। जीव के वर्तमान कर्मों के फलों को भविष्य में भोगने से भी कर्म की सिद्धि होती है, क्योंकि कर्म और उसके फल के समय में अन्तर रहने से, कार्यकारण की दृष्टि से, कोई ऐसा तत्काल कर्मजन्य कार्य मानना पड़ता है जो कि समय पर फलोत्पति कर सके।

आत्मा का देह से सम्बन्ध होना, आत्मा के मानसिक भावों और इच्छाओं का भौतिक पदार्थों पर प्रभाव पड़ना, यथा क्रोध से आँखें लाल हो जाना आदि से विदित होता है कि उनका कारण भी भौतिक हैं, क्योंकि कारण के अनुरूप कार्य होता है।

जिस प्रकार तप्त लोहा जल में पड़ने से चारों और से जल

खींचता है उसी तरह मन, वचन, काम की शुभ व अशुभ क्रियाओं से आत्मा में हलचल होने से एक विशेष जाति के सूक्ष्म परमाणु कर्मरूप होकर आत्मा के साथ सम्बद्व हो जाते हैं। यह कर्म दो प्रकार के होते हैं (१) घातिया (२) अघातिया। घातिया कर्म भी चार प्रकार के होते हैं। (१) ज्ञान का आवरण करने वाले, (२) दर्शन का आवरण करने वाले, (३) आत्मा को मोहने वाले अर्थात् उसको आत्मश्रद्धान और स्वरूपाचरण से बेभान कर देने वाले, (४) दान, लाभ, भोगोपभोग और शक्ति में विघ्न करने वाले, अघातिया कर्म भी चार ही तरह के होते है, उनके कार्य (१) आयु (२) शरीर (३) गोत्र और (४) सुख-दु:ख की वेदना है। सामान्यत: तीव्र कषायों से शुभ कर्मों की फलदान शक्ति और स्थिति कम और अशुभ कर्मों की अधिक होती है व मंद कषाय का फल इसके विपरीत होता है। कुछ काल तक अनुदयरूप रहकर यह कर्म फिर उदय होते है, अर्थात् अपना फल देने लगते हैं और पूरे होने पर झड़ जाते हैं। फल भोगने के समय आत्मा कषायभाव से फिर नये कर्म बाँध लेता है। तपस्या व साधना आदि के द्वारा कर्म अपने समय से पहले भी उदय होकर फल देने लगते हैं। कई पूर्वबद्ध कर्मों में वर्तमान क्रियाओं से भी परिवर्तन हो जाता है, क्योंकि कर्म भिन्न-भिन्न स्थितियों के होते हैं। अत: प्रत्येक क्षण कषाय सहित आत्मा के साथ नवीन कर्म बँधते रहते हैं। बहुत से पूर्व कर्म उदय होकर झड़ते रहते हैं, और बहुत से पूर्व कर्म फल देने का समय न आने के कारण सत्तारूप में सम्बद्ध रहते हैं। इस प्रकार आत्मा और कर्म का यह सम्बन्ध प्रवाह रूप से अनादि है, परन्तु प्रत्येक कर्मबन्ध सादि और सान्त है। आत्मज्ञान पाकर कषायों को नष्ट कर देने से नवीन कर्म बन्धन न होने पर और पुरातन कर्मों के समय पाकर या तपस्या से असमय ही झड़ जाने पर आत्मा सदा के लिये कर्मों से मुक्ति पा जाता है, और निज स्वाभाविक, स्वाधीन, पूर्णानन्द, ज्ञान, शक्ति आदि को भोगने लगता है। इसी को स्वस्वरूप में लीन होना कहते हैं।

कर्मबन्ध को रोकने के उपाय बन्ध के कारणों से विपरीत गुण है। यथा प्रतीति सहित स्व स्वरूप का सम्यक् ज्ञान आत्मज्ञानी अन्तर्मुखी हो जाता है, और कर्मफल भोगते हुए भी उसकी यातनायें मन्द हो जाती है तथा प्रति क्षण अधिक-अधिक मन्द होती जाती हैं।

साधक को चाहिए कि वह अपने कर्मों के बन्ध से छुटकारा पाने के लिये अपने अन्तः स्थित ज्ञानमय गुरु चरण की भगवान् की शरण ले और रोते हुए कहे कि प्रभो! इन असुरों की पीड़ा से मुझे बचाइये, ये मुझे आपके समीप तक पहुँचने नहीं देते। इन संचित कर्मों के विपरीत आकर्षण से मेरी रक्षा कीजिए। आप ही मेरे :-

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।

स्वामी, रक्षक तथा सब कुछ हैं, मैं आपकी शरण में आया हूँ।

पूर्व जन्म के पापों का विशेष संचय न हो, भगवत् कृपा हो, किसी प्रकार से भी सही हृदय में श्रद्धा के भाव हों, तो ऐसे पुरुष के उद्धार में देर नहीं लगती। साधु सत्संग होते ही बड़े-बड़े दुराचारी दुष्कर्मों का परित्याग करके परम भक्त बन गए। श्रीमद्‌भागवत में लिखा है कि :-

भगवान् श्रीकृष्ण जी अपने परम भक्त उद्धव से कहते हैं कि:-

'हे उद्धव! जिस तरह सुप्रदीप्त अग्नि काष्ठ समूह को भस्मीभूत कर देती है उसी तरह प्रेमरूपा भक्ति सब प्रकार के पाप कर्मों का विनाश कर देती है'। अर्थात् यह केवल संचित और क्रियमाणरूप अप्रारब्ध पाप कर्मों को ही विनिष्ट करती है, सो बात नहीं, वह प्रारब्ध कर्मों को भी नष्ट करती है।

पद्म पुराण में भी यही बात कही गई है कि :-

'जो लोग हरि भक्ति में अनन्य भाव से अनुरक्त हो जाते हैं, उनके अप्रारब्ध फल, कूट, बीज और फलोन्मुख-- यह चारों प्रकार के पाप कर्म नाश को प्राप्त हो जाते हैं'।

कर्मबन्ध रोकने का एक बहुत बड़ा उपाय तप भी है। यह पूर्व संचित कर्मों को भी अपने समय से पहले झड़ा देता है। यह (१) वाह्य और (२) अभ्यन्तर दो प्रकार का है।

(१) वाह्य तप

शक्ति के अनुसार उपवास, एक समय भोजन, युक्ताहार, युक्ताहार में घर, पदार्थ आदि की सीमा निश्चित करना, रसों का त्याग, एकान्तसेवक और समताभाव से काय क्लेश आदि करना।

(२) अभ्यन्तर तप

प्रायश्चित्त, गुरुओं व साधुओं की सेवा व विनय, ज्ञानाभ्यास, वाह्य पदार्थों का और तत्सम्बन्धी ममता और वासना का त्याग, चित्त शुद्धि और ध्यान आदि अन्तरंग तप हैं। इनमें ध्यान सर्वश्रेष्ठ है। ध्यान के बिना आत्मसिद्धि नहीं होती। ध्यानी ही सच्चा योगी है।

योग के विघ्न

जिस प्रकार प्रत्येक शुभ कार्य में विघ्न बाधाएँ आती हैं उसी प्रकार साधक के मार्ग में भी नाना प्रकार के विघ्न और बाधाएँ आती हैं और उसे बड़ी-बड़ी कठिनाइयों, कष्टों तथा प्रलोभनों का भी सामना करना पड़ता है। जैसा कि सिद्धि प्रकरण में लिखा गया है कि योग साधन से तरह-तरह की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, अतएव साधक को उनके प्रलोभन में न आकर अपनी साधना में दृढ़ता के साथ लगे रहना चाहिए, अन्यथा पारमार्थिक हानि के सिवाय साधक उद्देश्य भ्रष्ट हो

जाता है। पतंजलि ऋषि ने योगियों की निम्नलिखित चार श्रेणियाँ बतलाई हैं।

(१) अष्टांग योग समाप्त करके जो साधक योग भूमि में प्रवेश करते हैं वे स्थूल समाधि सिद्ध हैं। अर्थात् वितर्कानुगत समाधि में अधिकार प्राप्त कर लेने के कारण अन्तज्योति का स्फुरण होना आरम्भ हो जाता है।

(२) पहली अवस्था के बाद साधक योग 'मधुमती' भूमि में पदार्पण करता है। इस समय उसका चित्त अत्यन्त विशुद्ध हो जाता है, इस कारण पदस्थ देवता, ऋषि व अप्सरा आदि उसके पास उपस्थित होकर उसे नाना प्रकार के अलौकिक प्रलोभनों द्वारा मार्गच्युत करने की चेष्टा करते है। अतएव गुणातीत आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित होने को उद्यत होने वाले ऐसी अवस्था में प्रलोभनों में आसक्ति और अहंकार में न आकर संयत रूप से चित्त में बल का संचय करके साधन पथ पर अग्रसर होने में इन सब प्रलोभन और भय से छुटकारा पा सकते हैं। मधुमती ही योगियों की परीक्षा की अवस्था है।

(३) तृतीय अवस्था में समस्त प्रलोभन की वस्तुएँ योगियों के अपने संकल्प के द्वारा निर्मित हो सकती है और योगी साधक स्वयं दिव्य भावापन्न होते हैं, इसलिए उनको विशेष आशंका की सम्भावना नहीं रहती। इस अवस्था में योगी प्रज्ञा ज्योति के द्वारा पंचभूतों की पाँच प्रकार की अवस्थाओं के ऊपर अधिकार प्राप्त करके भूतजयी और इन्द्रियजयी हो जाते हैं, भूतजयी होने पर योगी वज्र के समान सिद्ध देह प्राप्त कर लेते हैं और अणिमा, महिमा, गरिमा आदि अष्ट महासिद्धियाँ प्राप्त करते हैं, योगशास्त्रों में इन सब सिद्धियों का वर्णन 'मधु प्रतीय' नाम से किया गया है। विशेषकर पंचभूत व पंचेन्द्रिय पर अधिकार होने के कारण उनको सृष्टि, स्थिति व संहार

करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। उन्हें किसी प्रकार का अभाव नहीं रहता, जिसके लिए उनके किसी प्रलोभन में पड़ने की सम्भावना हो।

(४) इस प्रकार साधना क्रम से जब योगी भूतेन्द्रिय को अतिक्रमण करके 'अस्मिता' तत्त्व में प्रतिष्ठित होते हैं, तब वह सर्वज्ञ हो जाते हैं। योगशास्त्र की भाषा में इसी का नाम **'विशोका सिद्धि'** है। यही वास्तविक जीवन मुक्त योगियों की अवस्था है। इसके बाद वैराग्य के साथ-साथ त्रिगुण का राज्य क्रमशः समाप्त हो जाता है और योगी दृश्य व चिंतनीय पदार्थों की सीमा पार करके अव्यक्त परम पद में स्थित हो जाता है।

महर्षि पतंजलि ही के मतानुसार योग के नौ अंतराय और पाँच उपांतराय विघ्न और भी है।

१- अन्तराय विघ्न - (१) व्याधि (रोग), (२) शिथिलता (३) संशय (४) प्रमाद (जान बूझकर योगांगों की साधना न करना) (५) आलस्य (६) अविरति (विषयों में रुचि) (७) भ्राँति दर्शन (विपरीत निश्चय) (८) अलब्ध भूमिकत्व (योगांगों का अनुष्ठान करने पर भी मधुमती, मधुप्रती आदि समाधि भूमि विशेष का लाभ न होना) (९) अनन स्थितत्व (भूमि विशेष का लाभ होने पर भी चित्त का स्थिर न रहना) यह नौ विक्षेपकारी योग व समाधि के अन्तराय विघातक हैं। इन्हीं को योगमल, योग प्रतिपक्ष व योग विघ्न कहते हैं।

२ - उपांतराय विघ्न - (१) दुःख (२) दौर्मनस्य (इच्छा के पूर्ण न होने पर मन का क्षुब्ध होना) (३) अंगयेजयत्व (अंग बंधना) (४) श्वास (वाह्य वायु को भीतर ले जाना) (५) प्रश्वास (भीतर की वायु को बाहर निकालना)

अष्टांग योग प्रकरण में लिखे गए यम नियमों का पालन करने के सिवाय योगाभ्यासी का आहार विहार भी बहुत ही नियमित होना चाहिए अन्यथा साधन में धातु, वात, पित्त, कफ़, अजीर्ण, नींद की खुमारी व अति परिश्रम से साधन में बाधा पड़ती है। इसीलिए भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में कहा है कि 'जो अधिक भोजन करता है, जो बिना खाये रहता है, जो बहुत सोता अथवा जागता है, हे अर्जुन! वह योगी नहीं हो सकता। जो नियम पूर्वक भोजन करता, नियमित विहार करता, जागता और सोता है तथा कर्म करता है उसके लिए योग दुःख का नाश करने वाला होता है।'

योग साधन का उद्देश्य है शेषोक्त अवस्था प्राप्त करना। इसके लिए सबसे प्रथम कर्तव्य है काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर आदि षड् रिपुओं का नाश करना।

(१) काम - स्त्री भोगादि की अभिलाषा काम है।

(२) क्रोध - प्राणियों को दुःख पहुँचाना।

(३) लोभ - धनादि की अतिशय आकांक्षा ।

(४) मोह - तत्त्वज्ञान का अभाव ।

(५) मद - मैं सुखी हूँ, मै पंडित हूँ, मैं धनवान् हूँ आदि गर्व करना।

(६) मत्सर - दूसरों के सौभाग्य तथा उन्नति को देखकर दुःखी होना।

यह आत्मरूप का विचार करने में बाधक व सब दुःखों के कारण हैं इसीलिए इनका दमन करने के वास्ते अष्टांग योग का अभ्यास करना अत्यन्त आवश्यक है।

योग सम्बन्धी पुस्तकें

1. राजयोग संहिता
2. योग वाशिष्ठ ले. भीखनलाल त्रिवेदी, एम. ए. डी.लिट्
३. योग वाशिष्ठ दर्शनम्,,
४. योग वाशिष्ठ और उसके सिद्धांत
५. कर्म मीमांसा दर्शन महर्षि भरद्वाज कृत
६. मंत्र योग महर्षि पतंजलि कृत
७. हठ योग
८. लय योग
९. राज योग संहिता
१०. योग सुधाकर ले. स्वा. सदाशिवेन्द्र
११. पातंजल दर्शन
१२. रसेश्वर दर्शन
१३. महानिर्वाण सूत्र
१४. विनय पटिक
१५. ममता पुराण
१६. शाक्त तंत्र
१७. शाक्तानन्द तरंगिणी
१८. गुप्त भारत की खोज लीडर प्रेस
१९. भक्ति सागर
२०. योग सागर
२१. मत्स्येन्द्र संहिता
२२. गोरक्ष शतक
23. गोरक्ष संहिता
२४. गोरक्ष सिद्धांत संग्रह
२५. विवेक मार्तण्ड
२६. पवन विजय स्वरोदय
२७. नाद विन्दूपनिषद्
२८. ग्रहथरे योगशिक्षा (बंगला)
२९. राजमार्तंड धार नरेशकृत
३०. योग वार्तिक विज्ञानभिक्षु कृत
३१. विश्वकोष
३२. घेरंड संहिता
३३. अनुभव प्रकाश
३४. सूर्य सिद्वांत
३५. सूर्य विज्ञान
३६. हरि लीला कल्पतरू
३७. योग तारावलि
३८. सत्संग भूषण
३९. सत्संगी जीवन स्वा. नारा-यण कृत (स्वामीजीयौगिक क्रियाओं के लिये बड़े प्रसिद्व थे)
४०. शिव स्वरोदय (भगवान शंकर का स्वशास्त्र ग्रन्थहै)
४१. योग चूड़ामणि
४२. ज्वालोपनिषद्
४३. योग तत्वोपनिषद्
४४. योग स्मृति

४५. योग शिखोपनिषद्
४६. योगी गुरु
४७. ज्ञानी गुरु (सारस्वत मठ पो. कोविलामुख जोरहाट आसाम)
४८. प्रबोध सुधाकर
४९. याज्ञवल्क्य संहिता
५०. दत्तात्रेय संहिता
५१. पातंजल योग दर्शन
५२. योगी याज्ञवल्क्य
५३. शिव संहिता भगवान् शंकर कृत्
५४. योग तारावली स्वामी शंकराचार्य कृत
५५. हठतत्व कौमुदी
५६. निरंजन पुराण
५७. योग शिखोपनिषद्
५८. हठ योग प्रदीपिका
५९. शुकोक्ति सुधा सागर अर्थात् भागवत ले. रूपनारायण पांडे निर्णय सागर प्रेस २३ कोलभाट लेन बम्बई
६०. गीत गोविन्द ले. पं. राज जयदेव
६१. सांख्य शास्त्र ले.कपिलाचार्य
६२. गुह्य समाजतंत्र
६३. साधन ग्रन्थों का संग्रह (गायकवाड़ प्राच्य ग्रन्थ माला वरौदा)
६४. श्री हरि लीला कल्पतरु
६५. सत्संग भूषण ले. नारायण स्वामी
६६. सत्संग जीवनी " "
६७. शारीरिक उपचार ले. रामदास गौड़ भारतवासी प्रेस दारागंज प्रयाग
६८. सिद्धसिद्धांत पद्धति
६९. सिद्धसिद्धांत संग्रह
७०. अमत्सक
७१. योग बीज
७२. शाण्डिल्य उपनिषद् (नाड़ी शोध प्राणायाम)

1. Yog as the system of physical culture & how to dify diseases, old age & death by Prakash Deo Hindi Vidyarthi Bhawan Lahore.
2. Yog vashistha & its philosophy.
3. Yog vashistha & modern thoughts.
4. Philosophy of Yog vashistha.

5. Yog vashistha & some of the minor up-nishadas.
6. Yog mimansa (quarterly magazine Kaivalya Dham Lonavala Bombay.
7. Asan " "
8. Pranayam " "

योग सम्बन्धी तालिका

१. **योग** - कर्म योग, ज्ञान रोग, राज योग, हठ योग, लय योग, भक्ति योग, मंत्र योग।

२. **द्विधा निष्ठा** - सांख्य योग और कर्म योग।

३. **द्विधा प्रकृति** - परा और अपरा।

४. **त्रिविध पुरूष** - क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम (जगत्, जीव व भगवान्)

५. **वेदांत के चार महावाक्य** - अहंब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, प्रज्ञानं ब्रह्म व अयमात्मा ब्रह्म।

६. **सप्तज्ञान भूमिका** - शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्वापत्ति असंसक्ति, पदार्थ भावनी, तुर्यगा।

७. **साधान चतुष्टय** - नित्यानित्य वस्तु विवेक, वैराग्य, षट् सम्पत्ति (सम, दम, तितिक्षा, उपरित, श्रद्धा व समाधान) मुमुक्षत्व।

८. **त्रिविध नर्कद्वार** - काम क्रोध और लोभ।

९. **त्रिविध ज्ञान द्वार** - श्रद्धा, तत्परता व इन्द्रिय संयम।

१०. **भक्ति के चार महावाक्य** - कृष्णस्तु भगवान् स्वयं अतः परतं नान्यत्, ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्, मामेकं शरणं ब्रज।

११. **द्विधा भक्ति**- अपरा या गौणी, परा या रागानुरागा।

१२. **नवधा भक्ति**- श्रवण, कीर्तन,स्मरण पाद सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, व आत्म निवेदन।

१३. **पंच भाव** - शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य व मधुर।

१४. **अष्ट सात्विक भाव** - स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कम्प, वैवर्ण्य अश्रु और प्रल्य।

१५. **प्रेम की तीन अवस्थाएँ** - पूर्वराग, मिलन और वियोग।

१६. **त्रिविध विरह** - भूत, वर्तमान और भावी।

१७. **विरह की दश दशाएँ** - चिंता,जागरण, उद्वेग, कृशता,मलिनता, प्रलाप, उन्माद, व्याधि मोह और मृत्यु।

१८. **चतुर्विध भाव** - भावोदय, भावसंधि, भावशावल्य व भावशांति।

१९. **द्विविध महाभाव** - रूढ़ और अधिरूढ़।

२०. **द्विविध अधिरूढ़ महाभाव** - मोदन और मादन (मोहन)।

२१. **आसन**- एक सौ आठ, मुख्य चौरासी तथा प्रमुख ३३ और प्रधान तीन पद्मासन, सिद्धासन व स्वास्तिकासन।

२२. **मुद्रा व बँध** - अनेक हैं परन्तु मुख्य पच्चीस ये हैं। महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डियायन, जालंधर, मूल, महाबधं, खेचरी, विपरीत करणी, योनि, बज्रोली, शक्ति चालनी, तड़ागी, मांडवी, शाम्भवी, अश्विनी, पाशिनी, काकी, मातंगी, भुजंगिनी और पाँच धारणाएँ (पार्थिव, आभ्यसी, वैश्वानरी, वायवी और आकाशी)

२३. **षट्कर्म** - नौलि, धौति, वस्ति, नेति, गजकरणी, कपाल भाँति व त्राटक सहित सात।

२४. **प्राणयाम** - पूरक, कुम्भक व रेचक।

२५. **प्राणायाम** - चतुर्विध (पातंज लोक्त) आभ्यन्तर, वाह्य और दो प्रकार के केवल प्राणायाम।

२६. **प्राणायाम** - अष्ट विधि- सूर्यभेदन, उज्जायी, सीतकारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रमरी, मूर्च्छा और प्लावनी। अनुलोम, विलोम मिलाकर नौ प्रकार के होते हैं।

२७. **दैनिक श्वास** - २१६००

२८. **तीन प्रधान नाड़ियाँ** - इडा, पिंगला और सुषुम्ना ।

२९. **दस वायु** - प्राण, अपान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धंनजय।

३०. **योग के षट्चक्र** - मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा।

३१. **योग के सप्तचक्र** - उपर्युक्त छः और सातवाँ सहस्त्रार।

३२. **योग के नौ चक्र** - उपर्युक सात आठवाँ तालू में ललनाचक्र और नवा ब्रह्मरंध्र में गुरुचक्र।

३३. **षोड़श आधार** - दाहिने पैर का अँगूठा, गुल्फ, गुदा, लिंग, नाभि, हृदय, कंठकूप, तालूमूल जिह्वामूल, दंतमूल, नासिकाग्र, भ्रूमध्य, नेत्र मंडल, ललाट, मस्तक व सहस्रार।

३४. **तीन ग्रन्थि** - ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि और रुद्रग्रन्थि।

३५. **त्रिमार्ग** - पिपीलिका मार्ग दादुर मार्ग, और विहंगम मार्ग।

३६. **त्रिशक्ति** - ऊर्ध्वशक्ति (कंठ में),अधः शक्ति (गुदा में)मध्य -शक्ति (नाभि में)।

३७. **पंचभूत** - पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश।

३८. **पंचाकाश**- आकाश महाकाश, पराकाश, तत्त्वाकाश और सूर्याकाश।

३९. **वर्ण** - पचास ('अ से ह' तक)।

४०. **चतुर्विधि वाणी**- परा,पश्यंती मध्यमा, वैखरी।

४१. **आठ अङ्ग** - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

४२. **त्रिविध मंत्र** - पुं, स्त्री, क्लीव।

४३. **यम** - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह।

४४. **नियम** - शौच,संतोष तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान।

४५. **संयम** - धारणा,ध्यान और समाधि।

४६. **क्रिया योग** - तप स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान।

४७. **द्विविध ध्यान** - भेदभाव से और अभेदभाव से।

४८. **द्विविध समाधि** - सम्प्रज्ञात या सबीज और असम्प्रज्ञात या निर्बीज।

४९. **सप्त समाधि** - महर्षि पतंजलि के मतानुसार समाधि सात प्रकार की हैं। सवितर्क, निर्वितर्क, सविचार, निर्विचार, सस्मिता, सानन्द व असम्प्रज्ञात प्रथम छःसविकल्प और सातवीं निर्विकल्प।

५०. **असम्प्रज्ञात समाधि के चार भेद**- विचारानुगम, वितर्कानुगम ! आनन्दानुगम और अस्मितानुगम।

५१. **असम्प्रज्ञात के दो भेद**- भव प्रत्यय और उपाय प्रत्यय।

५२. **मन की वृत्ति**- प्रमाण, विपर्यय विकल्प, निद्रा और स्मृति।

५३. **पंच क्लेश**- अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश।

५४. **सप्त साधन** - शोधन, दृढ़ता, स्थैर्य, धैर्य, लाघव, प्रत्यक्ष और निर्लिप्तता।

५५. **योग के विघ्न** - व्याधि,स्त्यान,संक्षय, प्रमाद, आलस्य, विषय, तृष्णा, भ्राँति, फल में सन्देह, चित्त की अस्थिरता दु:ख, देह की ख़राबी, मन की चंचलता, अनियमित श्वास, प्रश्वास, अनियमित और उत्तेजक आहार व निद्रा, ब्रह्मचर्य का नाश,नकली

गुरु का शिष्यत्व, सच्चे गुरु में अश्रद्धा, भगवान् में अविश्वास, सिद्धियाँ प्राप्त करने की इच्छा। अल्प सिद्धि में ही पूर्ण सफलता मानना, विषयानन्द, अपनी पूजा करवाना, गुरु बनना व दंभ करना ।

५६. **अष्ट महासिद्धि**- अणिमा,महिमा, लघिमा, प्राप्ति,प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और कामावसायित्व कुछ गरिमा जोड़कर नौ मानते हैं।

५७. **चतुर्विध साधक**- मृदु, मध्य, अधिमात्र और अधिमात्रात्म।

५८. **चार अवस्थाएँ** - जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया।

५९. **ज्ञान योग सोपान की सातसीढ़ियाँ**- शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थभावनी और तुरीया।

शुभेच्छा - संसार सागर से पार होकर आत्मज्ञान करने की समुचित इच्छा है।

विचारणा- ब्रह्म के स्वरूप का अनुसन्धान।

तनुमानसा- मन का सूक्ष्म होना तनुमानसा है।

सत्वापत्ति- विशुद्धता को कहते हैं।

असंसक्ति- असंग अनासक्ति को कहते हैं।

पदार्थ भावनी- तत्त्वमसि आदि महावाक्यों का मनन व निदिध्यासन पदार्थ भावनी है।

तुरीया- परम बोध को कहते हैं।

६०. **योग की भूमिकाएँ**- तमस्, भ्रम, अनन्ताकाश, प्रकाश और अनन्त अद्वयबोध।

६१. **राज योग की प्रभृति भूमिकाएँ**- मधुमती, मधुप्रतीक, विशोका और संस्कार शेष।

६२. **वेदांत की छः अवस्थाएँ**- शुद्ध श्रवण, मनन, निदिध्यासन, एकीभाव और लय।

६३. **राज योग में मन की भूमिकाएँ**- अवस्था पंचवृत्ति, क्षिप्त, विक्षिप्त, मूढ़, एकाग्र और निरोध।

६४. **वेदांत की समाधियाँ**- शब्दाननुविद्ध, दृश्यानुविद्ध, दृश्याननुविद्ध ब्रह्मनिर्विकल्प, आन्तर। निर्विकल्प, अद्वैत भवनारूप व अद्वैतवस्थानुरूप। पहली चार सविकल्प, और चार निर्विकल्प।

६५. **पंचकोष** - अन्नमय, प्राणमय, मनोमय,विज्ञानमय तथा आनन्दमय।

६६. **धर्म ध्यान के चार भेद** - पिंडस्थ (शरीरस्थ निज आत्मा का ध्यान), पदस्थ (मंत्राक्षरों का ध्यान),रूपस्थ(शरीर सहित परमैश्वर्य युक्त सर्वज्ञ वीतरागी आत्मा का ध्यान) और रूपातीत (अरूपी, देहमुक्त, सच्चिदानन्द आत्मा का ध्यान)।

६७. **पिण्डस्थ ध्यान की पाँच धारणाएँ**- पार्थवी,आग्नेयी, मारुती, वारुणी और तात्विक।

६८. **योग के षट् रिपु** - काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर।

अष्टांग योग

श्रुति वाक्य है:-

'मुक्तियोगात्तथा योगात् सम्यग्ज्ञानं महीपते'।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपियतोऽधिकः।

अर्थात् योग साक्षात् मोक्ष का कारण न होते हुए भी मोक्ष कारण ज्ञान का कारण है। अतएव जब तक साधक योगशास्त्र के अनुसार

अभ्यास करके योगी नहीं हो जाता तब तक उसको ज्ञान प्राप्त नहीं होता। तात्पर्य यह कि जिस तरह मुक्त होने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है, उसी तरह ज्ञानी होने के लिए योग की भी आवश्कता है। शास्त्रों में लिखा है:-

निर्ममत्त्वं विरागाय वैराग्याद् योग संगतिः।

योगात्सञ्जायते ज्ञानं ज्ञानान्मुक्तिः प्रजायते॥

अर्थात् 'ममत्व' दुःख का और निर्ममत्व ही अत्यन्त निर्वृत्ति (सुख) का मूल है। निर्ममत्व से वैराग्य, वैराग्य से योग, योग से ज्ञान और ज्ञान से मुक्ति की प्राप्ति होती है। अतएव यह स्पष्ट है कि जिज्ञासु के लिए योग का साधन कितना आवश्यक है। अब हमें यह विचार करना है कि योग का क्या स्वरूप है? व उसके क्या लक्षण हैं? इन प्रश्नों के सम्बन्ध में भगवान् पतंजलि ने योग सूत्र में कहा है कि :-

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः (यो. १/२)

अर्थात् 'चित्त की वृत्तियों का रोकना योग कहलाता है' शास्त्रों में चित्त की पाँच अवस्थाएँ वर्णित है। (१) क्षिप्तावस्था (२) मूढ़ावस्था (३) विक्षिप्तावस्था (४) एकाग्रावस्था और (५) निरोधावस्था चित्त में (१) सत्व (२) रजस् और (३) तमस् आदि तीन गुण हैं। इन गुणों के धर्म भी उसी में रहते हैं।

चित्त सत्व गुण प्रधान होकर भी अप्रधान रजो और तमो गुणों से संयुक्त रहने के कारण अणिमादि आठ ऐश्वर्यो और शब्द आदि पाँच विषयों में जब अनुरक्त होता है, तब उसकी क्षिप्तावस्था होती है। दैत्य और दानवों का चित्त इसी अवस्था में रहता है। वही सत्व प्रधान चित्त जब रजोगुण को तिरस्कृत करके तमोगुण में संयुक्त रहता है और अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य व निद्रा आदि चाहने लगता है, तब उसकी मूढ़ावस्था होती है। पिशाच और राक्षसों का चित्त इसी अवस्था

में रहता है। वही सत्वप्रधान चित्त जब तमोगुण को छोड़कर रजोगुण से सम्बद्ध हो जाने के कारण धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य को प्रिय समझने लगता है तब उसको विक्षिप्त अवस्था कहते हैं महान् पुरुषों व देवताओं का चित्त इसी अवस्था में रहता है। जब चित्त में रजोगुण और तमोगुण अंशमात्र भी नहीं रहते, केवल सत्व गुण ही रहता है, उस समय चित्त अपनी वास्तविक दशा में रहता है। यही चित्त की एकाग्रावस्था है और इसी को सम्प्रज्ञान समाधि कहते हैं। विवेक ख्याति भी योगशास्त्र में इसी की संज्ञा है। जब चित्त यह समझकर कि चित्त शक्ति अपरिणामिनी, शुद्ध और अनन्त है और विवेक ख्याति को भी रोक देता है, तब चित्त की निरोधावस्था हो जाती है। इसमें चित्त का स्वरूप कुछ भी नहीं रहता। इसलिये योगी लोग इसे निर्जीव समाधि कहते हैं। इन पाँचों चित्त की अवथाओं में से अन्तिम दो अवस्थाओं में ही अपेक्षित चित्तवृति निरोध होता है, शेष तीन अवस्थाओं में नहीं होता अत:उक्त दो अवस्थाएँ ही योग की प्रवृत्तिनिमित्ता हैं। उक्त तीन चित्तावस्थाओं के प्रतिकिंचित् चित्तवृत्तियों का निरोध होने पर भी क्लेश और कर्म का परिपन्थी नहीं है, उनमें अविद्या, अस्मिता आदि पाँच क्लेश और कर्म वर्तमान ही रहते हैं, अत: उनमें यह लक्षण नहीं आ सकता। अतएव हमें योग की यही परिभाषा समझना चाहिए कि :-

'क्लेशकर्मादिपरिपन्थिचित्तनिरोधत्वं योग लक्षणम्'।

अर्थात् क्लेश कर्मादि का निवारक चित्तवृत्ति निरोध ही योग है।

ऊपर लिखे अनुसार योग के स्वरूप की तो विवेचना हो चुकी , अब उसके प्राप्ति के उपायों का विचार करना है।

पतंजलि महाराज ने अपने पातंजल योग दर्शन में योग प्राप्ति के लिए तीन तरह के साधन बतलाएँ हैं।

अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः' (यो. १/१२)

अर्थात् अभ्यास और वैराग्य से चित्त का निरोध होता है।

(१) 'ईश्वर प्रणिधानाद्ध' (यो. १/२३)

अर्थात् 'ईश्वरार्पण बुद्धि रखने से।

(२) 'तपःस्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रिया योग'।(यो २/१)

अर्थात् तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान ही क्रिया योग है।

(३) यम, नियमासन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा,ध्यान समाध योऽष्टांगानि।

अर्थात यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि आदि अष्टांग योग है।

कोई भी मनुष्य प्राथमिक साधनों का साधन न करके प्रथम व दूसरे साधन का अधिकारी नहीं हो सकता। अतएव योग की प्राप्ति के सम्बन्ध में आगे प्राथमिक साधन अर्थात् अष्टांग योग का विवेचन किया जा रहा है।

अष्टांग योग के साधन से चित्त की अशुद्धता नष्ट होकर ज्ञान का विकास होता है और अन्त में विवेक ख्याति की प्रप्ति हो जाती है।

योग साधक का दैनिक कार्यक्रम व नियम

प्रात:काल

(१) सुबह चार बजे उठकर बिस्तर पर सुखासन से बैठे और कानों के छेदों को बन्द करके दोनों आँखों की पलकों को उँगलियों

से दबाते हुए पैतालीस बार ॐ का उच्चारण करें। इसके बाद तीन चार मिनिट सर्वांग आसन करें। इसके उपरान्त दस मिनिट तक ताड़ासन अर्थात् ताड़ के वृक्ष की तरह खड़े होकर एक-एक हाथ को बारी बारी से ऊपर नीचे करें। मल द्वार को ऊपर खींचे रहे और शरीर का सारा भार पंजों पर रखे। बाद में पैरों के पंजों के बल तीन सौ क़दम चले।

प्रातःकाल आधा सेर तक ताज़ा पानी छानकर एक नकुए को बन्द कर दूसरे से पीने का अभ्यास करें। पहले थोड़े जल से आरंभ करें। इससे नाक के स्वर, गला साफ़ रहेगा और आँख की ज्योति बढ़ेगी।

(२) मल मूत्र त्याग

दिन को उत्तर और रात को दक्षिण की तरफ़ मल मूत्र त्याग करना चाहिए। मल त्यागते समय दाहिनी तरफ़ की दाढ़ों को एक दूसरे से दबावे और साँस नीचे की तरफ़ करें। शरीर का कुल भार दाहिने पैर के ऊपर और बाएँ अङ्ग का भार बाएँ पैर के पंजे पर रहे। दोनों हाथों की कुहनियाँ दोनों जांघों और पेट की कोखों के बीच में रखे। ऐसा करने से टट्टी साफ़ होगी व दाँत मजबूत होंगे। मल मूत्र साथ-साथ न त्यागें। मल त्यागने के बाद गणेश क्रिया (अर्थात् बाएँ हाथ की बीच की उँगली में तेल या साबुन लगाकर मल द्वार के अन्दर डालकर अच्छी तरह उसे साफ़ करें) ऐसा करने से मल द्वार सम्बन्धी रोग बवासीर आदि नहीं होंगे। टट्टी होने के पहले व बाद में मूत्रेन्द्रिय पर बारीक़ धार से जल छोड़ने से स्वप्न दोष, धातु की गर्मी तथा प्रमेह आदि दूर होते हैं।

दाहिना स्वर चलते समय टट्टी व बायाँ चलते समय पेशाब करना चाहिये। मूत्र त्याग करते समय भी दाँत नीचे दबाये रहने से पेशाब साफ़ होगा और मूत्र सम्बन्धी कोई बीमारी न होगी।

(३) मुंह धोना

सुबह नीम या बबूल की दातून करे। मुह में ख़ूब पानी भर कर दोनों आँखें में कम से कम पच्चीस-पच्चीस बार छींटे मारे। इस प्रकार आँखों को जब भी मुँह धोवे उस वक़्त छीटे मारने से आँखे साफ़ रहती है तथा उनकी रोशनी बढ़ती है।

(४) स्नान

सूर्योदय के पहले ताज़े जल से स्नान करें। यदि ऐसा न हो सके तो बाद में नहावे। नहाते वक़्त ठंडा जल सर से और गर्म पैरों से डालना प्रारम्भ करें। यौगिक अभ्यास के पहले नहा लेना लाभदायक है, जल चिकित्सा वालों को कुछ देर पहले या पीछे (तत्काल ही नहीं) नहाना चाहिए। प्राणायाम आदि के डेढ़ घंटे बाद नहाया जा सकता है। नहाते समय **'ॐ ह्रीं गंगायै ॐ ह्रीं स्वाहा'** जप करने से कहीं भी स्नान करने पर गंगा स्नान का फल प्राप्त होता है। सूर्योदय के पहले स्नान करने से वायु, पित्त व कफ़ की समता रहती है और दस बजे बाद नहाने से वह कुपित होते हैं।

(५) भोजन

भोजन के पहले हाथ, पैर व मुँह आदि धोने से जठराग्नि बढ़ती है। थाली बैठने के स्थान से कुछ ऊँची होनी चाहिए। भोग लगाकर अथवा ॐ का उच्चारण करते हुए भोजन करें। भोजन आरम्भ करने की एक यह विधि है कि पहले पाँच ग्रास खाते समय इस प्रकार कहते जावें **(१) ॐ प्राणाय स्वाहाः** (२) **ॐ अपानाय स्वाहाः।** **(२) ॐ व्यानाय स्वाहाः** (४) **ॐ उदानाय स्वाहाः** (५) **ॐ समानाय स्वाहाः।** भोजन में यदि मीठी चीज़ हो तो उसी से आरम्भ करें। नियमित भोजन करें। भोजन का अनुपात इस प्रकार है। दो हिस्सा भोजन करें और एक हिस्सा पानी व एक हिस्सा हवा के लिए स्थान

रहने दें। भोजन के समय ज्यादा पानी न पियें। यदि आवश्यकता हो तो बीच में दो चार घूँट पी ले। पेट की वायु के नाश के लिए भोजन के समय पहले ग्रास के साथ चार आने भर हिंग्वाष्टक चूर्ण घी के साथ मिलाकर अथवा लवण भास्कर चूर्ण ठंडे जल के साथ खाना चाहिए। भोजन के बाद मुँह में पानी भर कर पच्चीस-पच्चीस बार आंखों में छींटे मारने से दृष्टि तेज़ होती है।

जो पदार्थ अपने स्वास्थ्य के अनुकूल हो वही खाना चाहिए। प्रत्येक ग्रास को बीस पच्चीस बार ख़ूब चबाकर खाना चाहिए। पाचन शक्ति कमज़ोर होने पर हल्के पदार्थ खाना चाहिए और वह भी केवल दो मर्तबा। यदि एक ही मर्तबा खाये तो और भी अच्छा है। दूसरे समय दूध अथवा हल्का व अल्पाहार करें। मंदाग्नि, कोष्ठबद्धता व मूत्राशय के रोग होने पर किसी प्रकार की दाल व आलू, बैगन, अर्बी (घुइँयाँ) काशी फल आदि बादी चीज़ों का साग तथा प्याज न खाना चाहिए।

भोजन के पश्चात् वीर या सुखासन से पाँच मिनिट बैठे अथवा चित्त लेटकर आठ बार गहरी साँस ले। इसी प्रकार फिर दाहिनी करवट पश्चात् बायीं करवट लेटकर क्रमशः सोलह और बत्तीस बार साँसे ले। पश्चात् कुछ देर सम्भव हो तो आराम करें।

योग साधना करने वाले को ताज़े, सात्विक व शीघ्र पचने वाले पदार्थ ही खाना चाहिए। तेल, गुड़, लाल मिर्च, दही, मसाले, खटाई, अचार, प्याज, लहसुन, रूखा, तीक्ष्ण, लवण, सरसों, राई, कड़वी व बासी वस्तु नहीं खाना चाहिए। पहले पतले फिर कड़े व बाद में फिर पतले पदार्थ खावे। यदि हो सके तो भोजन की समाप्ति दूध से करें। अन्त में दही न खायें। बीच में आवश्यकता पड़ने पर थोड़ा-थोड़ा पानी पीना बलकारक व बार-बार व बाद में तथा ज्यादा पानी विष तुल्य है। भोजन के डेढ़-दो घंटे बाद जल या दूध पीना लाभदायक है। फलाहार उत्तम है। गौ दुग्ध व घृत का इस्तेमाल करें।

सात्विक भोजन करने से निद्रा पर जय प्राप्त होती है। लधु आहार के द्वारा ब्रह्म पद के लिए प्रयास करना चाहिए। गाढ़े पदार्थों का अल्पाहार व पतले पदार्थ पेट भर खाने के बाद डेढ़ घटें तक और पेट भर खाने के बाद चार घन्टे तक कोई अभ्यास न करे। पेट नहीं भारी हो तो अभ्यास सुखकारी । गरिष्ठ भोजन से अग्नि मन्द पड़ जाती है।

प्राणायाम के पहले किसी फल का एक प्याला रस व दूध पिया जा सकता है और बाद में भी पन्द्रह बीस मिनिट पश्चात् एक प्याला दूध व हल्का नाश्ता किया जा सकता है।

भोजन नियत समय पर करें। दोपहर बारह बजे व शाम को ७ बजे के पहले। दो मर्तबा भोजन व एक या दो मर्तबा हल्का नाश्ता या फल खाये जा सकते हैं। भोजन के समय सदा प्रसन्न चित्त रहें।

पिंगला अर्थात् सूर्य स्वर चलने से उष्णता बढ़ती है तभी भोजन ठीक से पचता है। अतएव दाहिना स्वर चलते समय भोजन करें। भोजन के लिए स्वर बदलना उचित नहीं। बार-बार भोजन करने से बार-बार स्वर बदलते हैं और स्वरों की अव्यवस्था के कारण दुःसाध्य रोग उत्पन्न होते हैं। दूध व जल बायें स्वर चलते समय पियें।

दूध गर्म किया हो परन्तु अधिक न उबाला जाय । योगाभ्यासियों के लिए दूध व फल उत्तम आहार है।

जौ, गेहूँ, बादाम, मक्खन, ईख, शहद, सोंठ, मूँग की दाल, शाक, सब्जी, आलू, किसमिस, खजूर, मुनक्का, अन्य सूखे फल, पतली खिचड़ी, लौकी, परवल आदि खाना चाहिए।

उड़द की दाल, खट्टी चीजें, टमाटर, कटहल, गाजर, बासी भोजन, कषाय, जले, गरिष्ठ, अधपके व अधिक फल आदि भी नहीं खाना चाहिए। निम्बू रक्त को शुद्ध करता है तथा बढ़ाता है।

नमक न खाने से काम वासना, जिह्वा की लोलुपता, मन की चंचलता वशीभूत होकर आत्मशक्ति की वृद्धि व स्वास्थ्य अच्छा होता है। ज्यादा मीठा भी नहीं खाना चाहिए।

भोजनोपरांत **'अगस्ताय नमः अगस्ताय नमः'** कहते हुए पेट पर हाथ फेरने से भोजन शीघ्र व ठीक तौर से हज़म होता है।

वर्षा ऋतु में भोजन की मात्रा विशेष कर रात के समय कम व सर्दियों के दिनों कुछ अधिक रखना चाहिए। रात में सागपात खाने से पित्त कुपित होता है।

व्यायाम

व्यायाम करते समय वायु के ठंडे झोकों से शरीर को बचाना चाहिए। जिस इमारत में अभ्यास किया जाय वह बहुत ही साफ़ और काफ़ी हवादार होना चाहिए।

जिनके ख़ून का दबाव १५० डिग्री से अधिक व १०० से कम रहता है उसे बग़ैर किसी योगानुभवी के परामर्श के किसी प्रकार का भी यौगिक व्यायाम नहीं करना चाहिए।

व्यायाम की मात्रा

सब क्रियाओं के लगातार करने की विशेष आवश्यकता नहीं है। बीच में थोड़ा-थोड़ा ठहरने पर भी लाभ होगा परन्तु विश्राम लेकर व्यायाम इतना अधिक भी न करना चाहिए जिससे सारे व्यायाम का शरीर पर बुरा व अधिक प्रभाव पड़े। व्यायाम अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही करना व बढ़ाना चाहिए। अभ्यास बीच में अधिक दिनों के लिये छूट जाने पर फिर थोड़े से ही आरम्भ करना चाहिए। ऐसा ही बीमारी के बाद भी करना चाहिये।

पूर्व की अथवा वायु जिस तरफ़ चल रही हो उधर मुँह करके उसका सेवन नहीं करना चाहिए।

सोने के समय की क्रिया

रात को दस बजे सो जावे। सोने के पहले वीर्याकर्षक प्राणायाम करें (एक नकुए को उँगली से दबाकर दूसरे नकुए से वायु को उदर में भरे और जितनी देर हो सके दूसरे नकुए से धीरे- धीरे निकाल कर सुखपूर्वक बाहर रोके रहे। इसी प्रकार दूसरे नकुए से भी ऐसा ही करे) यह प्राणायाम सात-सात बार करें। उस समय मल द्वार को ऊपर खींचे रहें। दिन में सोना और रात को देर तक जागना नहीं चाहिए और न थका देने वाला मानसिक परिश्रम करना चाहिए। सोने के पहले कोई धार्मिक ग्रन्थ अथवा कुछ भजन आदि करना चाहिए व हाथ पैर व तालू धो लें। रोगियों व बच्चों के सिवाय दिन में सोने वालों की आयु घटती है। सोते समय मुँह पूर्व या दक्षिण दिशा की तरफ़ व बायां स्वर चालू रखना चाहिए। नाभि में मन स्थिर करके बायीं करवट सोने से शीघ्र व गहरी नींद आवेगी तथा स्वप्नदोष भी न होगा, कुछ दिन बाद स्वप्न भी नहीं दिखाई देंगे।

यौगिक अभ्यास व व्यायाम

यौगिक व्यायामों के साथ अन्य व बल बढ़ाने वाले व्यायाम भी किये जा सकते हैं परन्तु साथ- साथ न करके कम से कम बीस पच्चीस मिनिट के अन्तर से करें । सात्विक शांति के अभिलाषी को यौगिक व्यायाम अन्त में करना चाहिए और राजसिक उत्साह चाहने वालों को पहले। दोनों के पश्चात् कुछ टहला जा सकता है। शुद्ध सरसों के तेल की मालिश से भी शरीर की धातुएँ बढ़ती हैं। सर में असली आँवले का तेल भी मला जा सकता है। बहुत घूमना उचित नहीं।

अभ्यास क्रम

सुबह व शाम पहले आसन व योग मुद्रा आदि करे और बाद में प्राणायाम। जप और ध्यान के पहले प्राणायाम करने में ध्यान अच्छा लगता है उससे शरीर हल्का हो जाता है।

प्रतिदिन अभ्यास और साधन निश्चित समय पर व नियत समय तक करने में यथाशक्ति कभी नहीं चूकना चाहिए।

अग्नि पूजा, स्त्री सम्भाषण, अति पर्यटन, सूर्योदय के समय स्नान, उपवास से क्षीण काय होना आदि छोड़ देना चाहिए।

पहले आसन करें, फिर मुद्रा तथा प्राणायाम और ध्यान करें। प्रातःकाल का समय ध्यान के लिए उत्तम होता है अतएव पहले जप, फिर ध्यान, आसन, मुद्रा और अन्त में प्राणायाम करें अन्यथा जो कार्यक्रम अपनी सुविधा आदि के उपयुक्त हो उसी के अनुसार अभ्यास करें।

सर्दी का ख़्याल रखते हुए प्रातःकाल नहा धोकर स्वच्छ होकर अभ्यास किया जाना उचित होगा। स्वास्थ आदि के कारण स्नान न कर सकने पर हाथ-पैर धोकर कपड़े बदल लें।

बाल्यावस्था से बच्चों में अध्यात्म विषय का बीज बो देना चाहिए। उनके ब्रह्मचर्य पालन करने का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

योगाभ्यासियों का दैनिक कार्यक्रम एक-सा होना चाहिए जब तक किसी विशेष कारण से कोई परिवर्तन न करना पड़े। ध्यान, जप, प्राणायाम व आसन का समय धीरे-धीरे बढ़ाते जाना चाहिए।

प्रातःकाल बिस्तर से उठते ही शौच जावे। यदि न मालूम हो तो बाद में जा सकते हो। यदि उस समय नहा न सको तो ध्यान और योगाभ्यास करके बाद में नहा सकते हो।

रात में कीर्तन के समय अपने घर-पड़ोसियों को सम्मिलित कर लें। कीर्तन के अन्त में कुछ प्रसाद बाँट दें।

निष्काम कर्म में रोगियों की सेवा-उपचार, विद्यार्थियों को पढ़ाना तथा इसी प्रकार के अन्य कार्य किये जा सकते हैं।

आसन व प्राणायाम सम्बन्धी प्रत्येक क्रिया व विधि को ध्यान पूर्वक बार-बार पढ़कर व अच्छी तरह समझ कर ही **उस**का अभ्यास करना चाहिए।

जप, पाठ व ध्यानादि उत्तर व पूर्व दिशा की तरफ़ मुँह करके करें।

प्रत्येक क्रिया अभ्यास को, अपने गुरु तथा इष्टदेव का स्मरण करके आरम्भ करना चाहिए और अन्त में कृष्णार्पणमस्तु कह कर समाप्त करना चाहिए।

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस द्वादशाक्षर मंत्र को उठते-बैठते, चलते-फिरते, खाते-पीते, सोते-जागते हर समय जपते रहिये।

योग व आसन सम्बन्धी कार्यक्रम

योग तथा आसन अभ्यासियों को उपने अभ्यास के लिए कुछ योगिक क्रियाएँ तथा कुछ आसन चुनकर एक कार्यक्रम बना लेना चाहिए और नियमित रूप से उसी के अनुसार अभ्यास करना चाहिए। उनकी जानकारी के लिए उदाहर्णार्थ कुछ कार्यक्रम आगे दिए जाते हैं। इनमें अपनी शक्ति, उन्नति, रुचि व सुविधानुसार परिवर्तन किया जा सकता है।

गृहस्थ व कामकाजी अभ्यासी

प्रात:काल

कार्यक्रम नं. १

(१)	शौच व मुँह धोना आदि	४बजे से ४-३०बजे तक आधा घंटा
(२)	ध्यान व जप	४-३०से ५-३०,, ,, १ ,,
(३)	व्यायाम व घूमना	५-३०से ६-३०,, ,, ,, ,,
(४)	आसन	६-३० बजे से ७ बजे तक आघा घंटा
(५)	प्राणायाम	७ बजे से ,, ७-३० ,, ,, ,,
(६)	स्वाध्याय व नाश्ता आदि	७-३० ,, से ८-०० ,, ,, ,,

प्रात:काल

कार्यक्रम नं. २

(१)	शौच, मुँह धोना व स्नान	४ बजे से ५ बजे तक १ घंटा
(२)	आसन	५ बजे से ५-३० तक आधा घंटा
(३)	प्राणायाम	५-३० से ६ तक आधा घंटा
(४)	ध्यान व जप	६ से ६-३० तक आधा घंटा
(५)	व्यायाम व घूमना	६-३० से ७-३० तक १ घंटा
(६)	स्वाध्याय व नाश्ता	७-३०से ८ तक आधा घंटा

प्रात:काल

कार्यक्रम नं. ३

(१)	आसन	४ बजे से ४-३० बजे तक आधा घंटा
(२)	प्राणायाम	४-३० बजे से ५ बजे तक आधा घंटा
(३)	ध्यान व जप	५ बजे से ६ बजे तक एक घंटा

(४) शौच, व्यायाम व घूमना	६ बजे से ७ बजे तक एक घंटा
(५) स्वाध्याय	७ बजे से ७-४५ बजे तक ४५ मिनिट
(६) नाश्ता	७-४५बजे से ८ बजे तक १५मिनिट

सायंकाल

कार्यक्रम नं. १

(१) आसन	६ बजे से ६-३० बजे तक आधा घंटा
(२) प्राणायाम	६-३० बजे से ७ बजे तक आधा घंटा
(३) ध्यान व जप	७ बजे से ७-३० बजे तक आधा घंटा
(४) अन्य कार्य	७-३०बजे से ८.३०बजे तक एक घंटा
(५) भोजन	८-३० बजे से ९ बजे तक आधा घंटा
(६) स्वाध्याय व भजन आदि	९ बजे से १० बजे तक १ घंटा

सायंकाल

कार्यक्रम नं. २

(१) आसन	५.३० बजे से ६ बजे तक आधा घंटा
(२) भोजन	६ बजे से ६-३० बजे तक आधा घंटा
(३) घूमना व अन्य कार्य	६-३० बजे से ८ बजे तक १.३० घंटा
(४) ध्यान व जप	८ बजे से ९ बजे तक एक घंटा
(५) प्राणायाम	९ बजे से ९-३० बजे तक आधा घंटा
(६) स्वाध्याय	९.३० बजे से १० बजे तक आधा घंटा

सायंकाल

कार्यक्रम नं. ३

(१) संध्या व आसन	५ बजे से ५.३० बजे तक आधा घंटा
(२) भोजन	५.३० बजे से ६ बजे तक आधा घंटा
(३) घूमना व अन्य कार्य	६ बजे से ८.०० बजे तक दो घंटा
(४) प्राणायाम	८ बजे से ८.३० बजे तक आधा घंटा
(५) आसन	८.३० बजे से ९ बजे तक आधा घंटा
(६) स्वाध्याय	९ बजे से १० बजे तक १ घंटा

उन्नत अभ्यासी व कम कामकाजी

प्रातःकाल

कार्यक्रम नं. १

(१) ध्यान व जप	३-३० बजे से ५बजे तक १-३० घंटा
(२) शौचादि	५ बजे से ५-३० बजे तक आधा घंटा
(३) आसन	५-३० बजे से ६-३० बजे तक १घंटा
(४) प्राणायाम	६-३० बजे से ७-३० बजे तक १घंटा
(५) स्वाध्याय व अन्य व्यायाम व नाश्ता	७-३०बजे से ८-३० बजे तक १घंटा

प्रातः काल

कार्यक्रम नं. २

(१) शौच, मुँह धोना व स्नानादि	३-३० बजे से ४-३० बजे तक १घंटा
(२) ध्यान व जप	४-३० बजे से ६बजे तक १-३० घंटा
(३) घूमना व व्यायाम आदि	६ बजे से ७ बजे तक १ घंटा
(४) आसन	७ बजे से ८ बजे तक १ घंटा
(५) प्राणायाम	८ बजे से ९ बजे तक १ घंटा
(६) स्वाध्याय व नाश्ता	९ बजे से १० बजे तक १ घंटा

सायंकाल

कार्यक्रम नं०१

(१) आसन	५ बजे से ६ बजे तक १ घंटा
(२) संध्या	६ बजे से ६-३० बजे तक आधा घंटा
(३) प्राणायाम	६-३० बजे से ७-३० बजे तक १घंटा
(४) ध्यान व जप	७-३० बजे से ८-३० बजे तक १ घंटा
(५) अन्य कार्य व भोजन	८-३० बजे से ९-३० बजे तक १ घंटा
(६) स्वाध्याय	९-३० बजे से १०-३०बजे तक१ घंटा

सायंकाल

कार्यक्रम नं. २

(१) भोजन	५ बजे से ५-३० बजे तक आधा घंटा
(२) घूमना आदि	५-३० बजे से ६-३० बजे तक १ घंटा
(३) संध्या	६-३० बजे से ७ बजे तक आधा घंटा
(४) ध्यान	७ बजे से ८ बजे तक १ घंटा
(५) प्राणायाम	८ बजे से ९ बजे तक एक घंटा
(६) आसन	९ बजे से १० बजे तक १ घंटा
(७) स्वाध्याय	१० बजे से १०-३०बजे तक आघा घंटा

पूर्ण अभ्यासियों व वृद्धों के लिए

प्रातःकाल

कार्यक्रम नं.१

(१) ध्यान व जप	३बजे से ६-३० बजे तक ३-३० घंटा
(२) शौचादि	६-३० बजे से ७-३० बजे तक १ घंटा
(३) आसन	७-३० बजे से ८-३० बजे तक १ घंटा
(४) प्राणायाम	८-३० बजे से ९-३० बजे तक १ घंटा
(५) स्वाध्याय	९-३० बजे से १० बजे तक आधा घंटा

प्रातः काल

कार्यक्रम नं. २

(१) शौच, स्नानादि	३ बजे से ४ बजे तक १ घंटा
(२) आसन	४ बजे से ५ बजे तक १ घंटा
(३) ध्यान व जप	५ बजे से ८-३० बजे तक ३-३० घंटा
(४) प्राणायाम	८-३० बजे से ९-३० बजे तक १ घंटा
(५) स्वाध्याय	९-३० बजे से १०-३० बजे तक १घंटा

दोपहर

कार्यक्रम नं. ३

(१) प्राणायाम — २ बजे से ३ बजे तक १ घंटा

(२) स्वाध्याय — ३ बजे से ४ बजे तक १ घंटा

सायंकाल

कार्यक्रम नं.४

(१) आसन — ५ बजे से ६ बजे तक १ घंटा

(४) प्राणायाम, संध्या आदि — ६ बजे से ७ बजे तक १ घंटा

रात्रि

कार्यक्रम नं.५

(१) प्राणायाम — ८ बजे से ९ बजे तक

(२) ध्यान — ९ बजे से १० बजे जक

नोट - ध्यान व जप भी किसी आसन में बैठकर करना चाहिए। साथ ही प्राणायाम के पूर्व व पश्चात् थोड़ा दूध अथवा हल्का नाश्ता किया जा सकता है। पूर्ण अभ्यासियों को नित्य पाँच बार में **३२०** प्राणायाम तक करना चाहिए।

योगाभ्यासी की प्रार्थना

योगाभ्यासी को प्रतिदिन नीचे लिखी प्रार्थना करनी चाहिए।

ॐअष्टाविंशति शिवानि शम्मानि सहयोगं भजन्तु मे।
योगं प्रपद्ये क्षेमञ्च क्षेमं प्रपद्ये योगंच नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु॥

(अथर्व. ७ का १९ अनु १ व ०८ मं0 २)

अर्थात् -- हे करुणामय परमेश्वर! आपकी कृपा से हम लोगों को सिद्ध योगयुक्त उपासना योग प्राप्त हो, तथा उससे हमें सुख भी मिले। इसी प्रकार आपकी कृपा से दस इन्द्रियाँ, दस प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, विद्या, स्वभाव, शरीर और बल इन अट्ठाईस मंगल कारक तत्त्वों से बने हमारे शरीर कल्याणमय कर्मानुष्ठान में प्रवृत्त होकर योग का सदा सेवन करें तथा हम भी उस योग के द्वारा रक्षा को और रक्षा से योग को प्राप्त हुआ चाहते हैं, इसलिए हम लोग रात दिन आपको नमस्कार करते हैं।

ओ३म् प्राणश्च येऽपानश्च ये व्यानश्च येऽसुश्च ये चित्तं च ये अधीतं च ये। वाक् च ये मनश्च ये चक्षुश्च ये श्रोत्रं च ये दक्षश्च ये बलं च ये यज्ञेन कल्पन्ताम्! (१ यजु अ0 १८ मं0 २)

अर्थात् -- मेरा हृदयस्थ जीवनमूल और कंठ देश में रहने वाला पवन (प्राण वायु तथा उदान वायु) मेरा नाभि से नीचे को जाने और नाभि में ठहरने वाला पवन (अपान वायु) मेरे शरीर की संधियों में व्याप्त और धनञ्जय, जो शरीर के रुधिरादि को बढ़ाता है, वह पवन (व्यान वायु और धनञ्जय वायु) और मेरा असु आदि प्राण का भेद और अन्य पवन, मेरी स्मृति और बुद्धि , मेरा अच्छे प्रकार निश्चित किया हुआ ज्ञान, मेरी वाणी, मेरी संकल्प विकल्परूप अन्तःकरण की वृत्ति, मेरे चक्षु मेरे कान, मेरी चतुराई मेरा बल, यह सब 'यज्ञेन कल्पताम्' धर्म के अनुष्ठान से समर्थ हो।

उपर्युक्त वैदिक प्रार्थना करके खड़े होकर तार स्वर से श्रीमदमृतवामभ्वाचार्य कृत निम्नलिखित एक श्लोकी प्रार्थना को भी तीन बार पढ़कर फिर दृढ़ चित्त से सुखासन पूर्वक अभ्यास में लग जाना चाहिए।

प्रभो शम्भो दीनं विहित शरणं त्वच्चरणयो --

र्भवरण्यादस्माद्विषय विषपाशी विषवृतात्।

समुद्धृत्य श्रद्धाविधुरमपि बद्धादर धरं,

दयादृष्ट्या पशयन्निजतनयमात्मी कुरु शिव ॥

(प्रे सोलन नरेशाश्रित मार्तंडपंचाङ्ग. कर्ता)

भगवान् की मूर्ति का ध्यान करते हुए शरणागत होकर रोते हुए कहो कि हे भगव्न् मुझे पूर्व व इस जन्म के कुसंस्कारों से बचाइए, यह मुझे आप तक पहुँचने देंगे। दया कर इनके विपरीत आकर्षण व प्रभाव से मेरी रक्षा कीजिए। आप ही एक मात्र मेरे रक्षक है।

योग सिद्धि के लिये प्रार्थना

विघ्नोपविघ्नों का निराकरण और चतुर्विध योगानुष्ठान का फल समाधि -लाभ तभी होगा जब साधक ईश्वर का अनुकम्पा-पात्र हो। अत: योगाभ्यास के सम्बन्ध में आने वाली विघ्न-बाधाओं का निराकरण, निर्विघ्न चतुर्विध योग की सिद्धि के निमित्त सच्चे हृदय, विनीत भाव से जगदीश्वर की प्रार्थना का वह मंत्र जिसके द्वारा साधक भगवान् को अपनी ओर आकृष्ट कर सके, नीचे दिया जाता है।

'योगे २ तवस्तरंम बाजे २ हवा महे। सखाय इन्द्रमूर्तये॥

अर्थात् प्रत्येक योग में, प्रत्येक संकट संग्राम में हम (साधक लोग) बलवान् इन्द्र को बुलाते हैं।

वेद का निम्न निर्दिष्ट मंत्र भी, इसी भाव को प्रकट करता है।
'सद्यानो योग आभुवत् स राये स पुरं ध्याम्! गमद वाजे भिरा स नः'॥

अर्थात् वही परमात्मा हमारी समाधि के निमित्त अभिमुख हो अर्थात् उसकी दया से समाधि, विवेक ख्याति तथा ऋतम्भरा प्रज्ञा का

हमें लाभ हो। वही परमात्मा अणिमादि सिद्धियों सहित हमारी ओर आगमन करे अर्थात् अणिमादि सिद्धियाँ भी भगवत् कृपा से चरण सेविकाओं के समान हमारी सेवा के लिए प्रतिक्षण प्रस्तुत रहें।

मंत्र योगादि भेद से चार प्रकार के हैं। उक्त सब प्रकार के योग में प्रवृत्त हुए मित्र के समान अति प्रिय हम साधक सर्व शक्तियाँ परमात्मा को विघ्न व्याध्यादि, दुःख, दौर्मनस्यादि उपविघ्न तथा काम, क्रोध, लोभ, मोहादि, राजस, तामस, जो समाधि के प्रबल शत्रु हैं, उनके द्वारा जब-जब समाधि विघात की चेष्टा रूपी संग्राम उपस्थित हो, उस समय रक्षा के लिए कहीं प्रबल शत्रुओं द्वारा समाधि का विघात न हो, इस अभिप्राय से उन प्रबल शत्रुओं के दमन पूर्वक समाधि को सुरक्षित बनाये रखने के लिए आह्वान करते हैं अर्थात् प्रार्थना करते है।

तात्पर्य-- प्रार्थना से आकृष्ट ईश्वर की दया से चतुर्विध योग जिसका मैं अनुष्ठान कर रहा हूँ, वह निर्विघ्न सम्पन्न हो।

संध्योपासन विधि

आत्मिक उन्नति के लिए प्रतिदिन संध्या करना हरएक व्यक्ति का धार्मिक व मुख्य कर्तव्य है। जिस प्रकार भोजन शरीर को दृढ़ और बलवान् बनाये रखता है उसी प्रकार प्रतिदिन की संध्या आत्मा को निर्मल बनाकर पुष्ट करती है।

समय-संध्या करने का समय प्रातःकाल सूर्योदय के दो घड़ी पहले से दो घड़ी दिन चढ़े तक, और सांयकाल दिन डूबने से दो घड़ी पहले से दो घड़ी बाद तक होता है।

निम्नलिखित गायत्री मंत्र का पाठ करते हुए शिखा में गाँठ लगा ले, जिससे मन अस्थिर न हो सके और न बाल आदि गिर सकें।

(१) गायत्री मंत्र

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्व रेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥

अर्थ- परमात्मा जो सब प्राणों का सहारा, सब दुःखों को दूर करने वाला, तथा सब सुखों का देने वाला और समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाला है, उस जगदीश्वर के सबसे उत्तम ध्यान करने योग्य शुद्ध स्वरूप को हम हृदय में धारण करें जिससे वह परमेश्वर हमारी बुद्धियों को अच्छे गुण कर्म और स्वभावों में लगावें। प्रणव के बाद बड़े महत्व का गायत्री मंत्र है। यह वैदिक मंत्र है। सभी ने इसकी महिमा गाई है। यह मंत्र सभी सिद्धियों का देने वाला और द्विज मात्र को इसके जप का अधिकार है। यह मंत्र दीक्षा विधि से लिया जाता है। मनु महाराज कहते हैं कि जो पुरुष नित्य प्रणव व्याहृति के सहित गायत्री मंत्र का जप तीन वर्ष तक नियम से करता है वह परब्रह्म को प्राप्त होता है।

ईश्वर को अपने समीप जीवन ज्योति जानते हुए प्रार्थना करके तीन आचमन करे जिससे कंठ का कफ़ आदि निवृत्त होकर शांति और चेतन्यता आवे।

(२) इन्द्रिय स्पर्श मंत्र

इन्द्रियों को बलिष्ठ करने के विचार तथा उनमें चेतना और शांति के लिये मध्यमा और अनामिका दोनों उँगलियों के अग्र भाग से जल लेकर उनसे स्पर्श करें।

ओउम् वाक् वाक्। ओउम् प्राणः प्राणः। ओउम् चक्षुः चक्षुः। ओउम् श्रोत्रम् श्रोत्रम्। ओउम् नाभिः। ओउम् हृदयम्। ओउम् कण्ठः। ओउम् शिरः। ओउम् वाहुभ्यां यशो बलम्। ओउम् करतल कर पृष्ठे।

अर्थ- हे प्रभो! मैं सत्य और पवित्र वेद वाणी बोलूं, मेरे प्राण सत्य ज्ञान के अर्पण हों, मेरे दोनों नेत्र शुद्ध समभाव से देखें, मेरे दोनों कान सत्य और शुद्ध ज्ञान को ग्रहण करें। मेरी नाभि बलिष्ठ हो, मेरे हृदय में सत्यता का बल प्राप्त हो, मेरा कंठ सत्य के लिए खुला हो, मेरा शिर सत्य ज्ञान से परिपूर्ण हो और मेरी भुजायें सत्य की रक्षार्थ व असत्य का नाश करके बल तथा यश प्राप्त करें और मेरे हाथ की हथेलीं व पृष्ठ सत्य तथा शुभ कर्म के निमित्त हों।

(३) मार्जन मंत्र

आगे लिखे मंत्रों को कहते हुए अङ्गों को इस विचार से जल के छींटे दे कि मैं सब अङ्गों को दृढ़ बनाऊँ और परमात्मा मेरे सब अङ्गों को पवित्रता, तथा दृढ़ता प्रदान करें जिस अङ्ग का नाम आवे उसी पर मनोवृत्ति लगाने से मानसिक व्यायाम और संकल्प शक्ति प्रबल होती है।

ओउम् पुनातु शिरसि। ओम्भुवः पुनातु नेत्रयोः। ओउम् स्वः पुनातु कण्ठे। ओउम् महः पुनातु हृदये। ओउम् स्वः पुनातु नाभ्याम्। ओउम् तपःपुनातु पादयोः। ओउम् सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि। ओउम् खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र।

अर्थात्- जगज्जीवन व प्राणों का प्राण ईश्वर हमारे शिर को पवित्र करें, सर्व सुखकारी प्रभु दोनों नेत्रों में शुद्ध भाव प्रदान करें, सर्व व्यापक सुख स्वरूप ईश्वर कंठ में पवित्रता करें, दुष्टों का सन्तापकारी ईश हमारे पैरों को शुद्ध करें, अविनाशी परमेश्वर हमारे मस्तिष्क में शुद्धता प्रदान करें, आकाशवत् व्यापक ब्रह्म हमारे सभी अङ्गों व प्रत्यागों की शुद्धि करें।

(४) प्राणायाम

अब निम्नलिखित मंत्र हृदय में जप करते हुए कम से कम तीन प्राणायाम अवश्य करें।

संध्या करते समय श्वेत, कृष्ण और रक्त वर्णों का ध्यान करने से वायु, पित्त और कफ़ आदि तीनों धातुएँ समान रहती हैं। शरीर स्वस्थ रहता है। इसी कारण ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर नित्य ध्येय हैं।

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐतपः ॐसत्यं ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोऽम्॥

योग सम्बन्धी नियम

(१) अपने को पूर्ण रूप से भगवान् की शरण में ले जाकर और **'श्रीरामः शरणं मम' श्रीकृष्णः शरणं मम'** कहते हुए अपने हृदय में सदैव यह भावना रखो कि हे भगवान् ! मैं तेरा हूँ। सर्वस्व तेरा है।

(२) सदा अपनी मृत्यु को सर पर आया हुआ समझ कर अपने नित्य धार्मिक कृत्य करने में कभी न चूको।

(३) काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या व द्वेष, मद, मत्सर आदि से सदैव बचते रहो।

(४) सदा सत्य, अहिंसा, सन्तोष, दया व प्रेम का पालन करो।

(५) बुरी संगत से बचकर सदैव सत्संग व धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन तथा ब्रह्म-चिन्तन करते रहो।

(६) शुद्ध, सात्विक, नियमित व मिताहारी बनो।

(७) हर समय, हर एक स्थान पर ईश्वर को प्रत्यक्ष व हर एक काम को ईश्वर का ही जानकर करो और कृष्णार्पण कहकर उसके फल को उसी को अर्पित कर दो।

(८) किसी प्रकार के मादक पदार्थ का सेवन नहीं करना चाहिए।

दिन में सोना, रात में देर तक जागना, अधिक मात्रा में मल -मूत्र का होना, अरुचिकर भोजन, थका देने वाला प्राण का मानसिक परिश्रम योग के विघ्न हैं।

जो योगाभ्यासी ध्यान करने में अधिक समय देते हैं उनको बहुत कम भोजन की आवश्यकता होती है। उनको डेढ़ दो सेर दूध व कुछ फल पर्याप्त हो जाते हैं। भोजन के बिल्कुल न पच जाने से बद्धकोष्ठता हो जाती है इसलिए भोजन में कुछ छिलके, फाकेदार या रेशे वाले पदार्थ अथवा साग आदि रहना आवश्यक है जिससे मल बन कर निकल जाय। पाचन क्रिया के समय पानी पीने से पाचन रस पतला व हाजमा कमज़ोर हो जावेगा।

भिक्षा पर निर्भर रहने वाले साधु-सन्यासियों को सतगुणी भोजन नहीं मिलते अतएव वे अभ्यास व यौगिक क्रियाओं द्वारा उसे अनुरूप बना लेते हैं और उनके ऊपर प्रतिकूल प्रभाव नहीं हो पाता।

कभी-कभी हल्का उपवास करने से बड़ा लाभ होता है। उदर और आँतों को आराम मिलकर जमा हुआ अन्न पच जाता है परन्तु निर्बलता उत्पन्न होने के कारण योगाभ्यासियों के लिए उपवासों का निषेध है। उनके लिये दूध व फल उत्तम है।

भोजन से शरीर में बल व स्फूर्ति आती है। यदि इसी शक्ति को आप इच्छा शक्ति अथवा यौगिक कौशल द्वारा प्राण के भंडार हिरण्यगर्भ से प्राण लेकर पूरा कर लो तो बग़ैर भोजन के भी रह सकते हो। योगी लोग इसी प्रकार काया-सिद्धि करते हैं।

● ● ●

अष्टांग योग

कुछ साधक लोग पर्याप्त साधना किए बिना ही ध्यान और समाधि लगाने का प्रयत्न करने लगते है, परन्तु उनको सफलता नहीं मिलती। इसका विशेष कारण यह है कि ध्यान और समाधि की सिद्धि के लिए यम-नियमों के पालन की विशेष आवश्यकता है। यम-नियमों के पालन किए बिना ध्यान और समाधि का सिद्ध होना अत्यन्त कठिन है। झूठ, कपट, चोरी,व्यभिचार आदि दुराचार की वृत्तियों के नष्ट हुए बिना चित्त एकाग्र होना कठिन है और चित्त एकाग्र हुए बिना ध्यान और समाधि नहीं लग सकती। वैसे तो समाधि सिद्धि के साधक को योग के आठों ही अङ्गों की साधना करनी चाहिए, किन्तु यम नियमों का पालन तो अवश्य करना चाहिए। जैसे बिना नींव के मकान नहीं ठहर सकता, उसी तरह यम-नियम का पालन किए बिना ध्यान और समाधि का सिद्ध होना असम्भव है। यम नियमों में भी जो साधक यमों का पालन न करके केवल नियमों का ही पालन करना चाहता है, उससे नियमों का पालन भी भली-भाँति नहीं हो सकता।

मनुस्मृति (४/२०४) मे लिखा है कि 'बुद्धिमान् पुरुष नित्य निरन्तर यमों का पालन करता हुआ ही नियमों का पालन करे, केवल नियमों का ही नहीं, जो यमों का पालन न करके केवल नियमों का ही पालन करता है वह साधन-पथ से गिर जाता हैं। अतएव योग में सिद्धि प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले साधक को यम-नियमों का साधन नितांत आवश्यक है। इनके पालन से चोरी, जारी, झूठ, कपट,काम, क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा आदि दुर्गुणों का नाश होकर अन्तःकरण पवित्र होता है और उसमें उत्तम गुणों का समावेश होकर आत्मा तथा इष्टदेव का साक्षात्कार व दर्शन व साधक जो चाहता है वही हो सकता है, परन्तु यम -नियमों का पालन किए बिना, ध्यान और समाधि की बात तो दूर रही, अच्छी प्रकार प्राणायाम का होना

भी कठिन है।

बहुत से लोग प्राणायाम का अभ्यास करने का यत्न करते हैं, किन्तु सफल नहीं हो पाते। काम, क्रोध, लोभ, मोह, झूठ, कपट, चोरी, व्यभिचार, दुराचारदि दुर्गुण प्राणायाम विषयक सफलता में भी प्रधान बाधक है। यम-नियमों के पालन से उपर्युक्त दुराचार और दुर्गुणों का नाश हो जाता है। अतएव प्राणायाम का साधन करने वालों को भी पहले यम-नियमों का पालन करना चाहिए। उपर्युक्त दुर्गुण और दुराचार सभी साधानों में बाधक है। अतएव ध्यान और समाधि के इच्छुकों को दोषों का नाश करने के लिए सर्व प्रथम यम-नियमों का पालन करके ही, योग के अन्य अङ्गों का अनुष्ठान करना चाहिए।

जो साधक योग के आठों अङ्गों का भली प्रकार साधन कर लेता है, उसका अन्तःकरण पवित्र होकर उसे अपार ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है, उसको इच्छानुसार सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं और सिद्धियाँ न चाहने वाला साधक तो क्लेश और कर्मो से छूटकर शीघ्र ही आत्म साक्षात्कार व इष्टदेव के दर्शन प्राप्त कर लेता है।

योग के निम्नलिखित आठ अङ्ग है जो कि अष्टांग योग के नाम से प्रसिद्ध हैं।

(१) यम (२) नियम (३) आसन (४) प्राणायाम (५) प्रत्याहार (६) धारणा (७) ध्यान (८) समाधि।

इन आठ अङ्गों की दो भूमिकाएँ है (१) बहिरंग (२) अन्तरंग। उपर्युक्त आठ अङ्गों में पहले पाँच बहिरंग कहलाते हैं क्योंकि उनका सम्बन्ध बाहर की क्रियाओं से है। शेष तीन अन्तरंग हैं। उनका सम्बन्ध अन्तःकरण से होने से इनकों अन्तरंग कहते है। महर्षि पतंजलि ने इन तीनों को एक साथ 'संयम' भी कहा है।

यम

यम के अर्थ है उपरति अर्थात् कामादि से निवृत्ति व आत्म

-निग्रह। शांतिपूर्ण वातावरण उत्पन्न करने को भी यम कहते है, क्यों कि बिना इसकें कोई भी कार्य सफल नहीं हो सकता। इसकें पाँच अङ्ग हैं जिनमें शांति पूर्ण वातावरण उत्पन्न करने का विधान बतलाया गया है। (१) अहिंसा (२) सत्य (३) अस्तेय (४) ब्रह्मचर्य और (5) अपरिग्रह।

(१) अहिंसा

किसी भी प्राणी व स्वयं को भी किसी काल में किसी प्रकार भी मारने व सताने का विचार तथा द्रोह तक न करना अर्थात् मन, वाणी व शरीर द्वारा कभी किसी प्रकार का भी कष्ट न पहुँचाना। जिसे महाव्रत अहिंसा सिद्ध हो जाता है उससे परस्पर विरोधी जीव-जन्तु भी विरोध छोड़ देते हैं। अहिंसा का साधन किये बिना अगले अन्य साधनों का अनुष्ठान करना निष्फल है।

(२) सत्य

प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द प्रमाण से अर्थात् अन्तःकरण व इन्द्रियों द्वारा जिन-जिन बातों का जिस-जिस प्रकार निश्चय हुआ हो उन-उन बातों, उस-उस निश्चयानुसार श्रोताओं से अनुद्वेग करने वाले, प्रिय लगने वाले, परिणाम में हित की भावना से कपट रहित, निभ्रांत वचनों द्वारा यथार्थ कहना और आत्मा के सिवाय किसी वस्तु को सत्य न मानना व ब्रह्म को लक्ष्य करके उसके सत्य को जानना सत्य है। इसके सिद्ध होने पर साधक की वाणी क्रिया तथा फल का आश्रय हो जाती है अर्थात् जो कुछ वह कह देता है वही हो जाता है।

(३) अस्तेय

मन, वाणी व शरीर द्वारा निषिद्ध रीति अथवा किसी प्रकार भी दूसरों का द्रव्य व तृण तक न चुराना, न लेना और छीनना अर्थात् कोई भी वस्तु उसके स्वामी की अनुमति के बिना न लेना और दृष्ट सांसरिक विषय और पदार्थों का सेवन न करना तथा किसी पदार्थ व विषय की इच्छा न रखना। इसके सिद्ध होने पर चारों दिशाओं में होने

वाले रत्नादि सम्पूर्ण पदार्थ स्वयमेव प्राप्त होते हैं।

(४) ब्रह्मचर्य

मन, इन्द्रिय और शरीर द्वारा होने वाले काम विकार के सर्वथा अभाव को बह्मचर्य कहते हैं। ब्रह्म-आत्मा, धर्म-आचरण अर्थात् ब्रह्म (आत्मा) में आचरण करने को ही ब्रह्मचर्य कहते हैं। उपेन्द्रिय (लिंग) यथार्थ संयम के साथ युक्ताहार विहार, युक्ताचार-विचार व युक्त क्रिया कर्म, निद्रादि का व्यवहार करके **'नायमात्मा बलहीने न लभ्यः'** अर्थात् आत्मा बलहीन को प्राप्त नहीं होती। अतएव शरीरिक बल बढ़ाकर ब्रह्मचर्य-आत्मचर्य आचरण करना ही ब्रह्मचर्य है, आठों प्रकार के मैथुन अर्थात् (1) बुरी भावना से किसी स्त्री का स्मरण करना (2) कथन या बातचीत करना (3) हँसी-मज़ाक या खेलना (4) छिपकर बातें करना (5) राग पूर्वक देखना (6) उसे प्राप्त करने की चेष्टा करना (7) बुरी भावना से अङ्ग स्पर्श करना (8) सहवास।

उक्त प्रकार के मैथुनों का त्याग ही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य के सिद्ध होने पर अतुल पराक्रम की प्राप्ति होती है।

ब्रह्मचर्य और योग

योग भारतवर्ष की एक बहुत ही प्राचीन सम्पत्ति है। यह भारतवर्ष के लिए महान् गौरव और मान की वस्तु है। इस योग की महान् सिद्धि के लिए हमारे पूर्वजों ने अनेकों वर्षो तक कितनी कठिन साधनाएँ की हैं जिनका वर्णन करना असम्भव है।

सब विघ्नबाधाओं तथा कष्टों आदि को झेलकर साधना करने वाला साधक ही योग के तत्त्वों को जान सकता है। योग साधन के परम लक्ष्य परमात्मा को देखने और प्राप्त करने वाली सिद्धि को वही साधक प्राप्त कर सकता है जो 'संसार सत्य है' की भावना को मिटाकर योग-साधना में लगा करते हैं। जो संसार को सत्य मानकर

उसकी पुष्टि (भोग-प्राप्ति) के लिए योग में लगा करते हैं, उन्हीं को व्यग्रता, अनियमितता, दुराग्रह आदि दोष, विघ्न आदि सताया करते हैं। सच तो यह हैं कि भोगियों के लिए योग में लगना रोग और मृत्यु को पाना और भोगवासना को भस्म करने के लिए योग में लगना भगवान् को पा जाना है। यही योग-साधन का मंत्र या सिद्धांत-बिन्दु है।

ब्रह्मचर्य

योग की महत्ता, दिव्यता, गहनता, कठिनता, कठोरता और क्रूरता जिसके अनुसार चलकर साधक ईश्वर की ज्योति में भी समा सकता है व मृत्यु कलेवा भी बन सकता है, उस योग को यदि आप साध्य बनाना चाहते हैं तो सर्वप्रथम आप ब्रह्मचर्य का पालन कीजिए। ब्रह्मचर्य के बिना योग की सफलता का अंकुर वैसे ही नहीं उग सकता है जैसे बिना जल के बीज। ब्रह्मचर्य के बिना योग वैसा ही है जैसे प्रकाश के बिना सूर्य और प्राण के बग़ैर प्राणी। ब्रह्मचर्य की निष्ठा के बग़ैर योग को छूना अपनी मौत को अपने हाथ निमंत्रण देना है। अतएव योग के जिज्ञासु का ब्रह्मचारी होना उतना ही अधिक आवश्यक है जितना कि जीवन के इच्छुक को प्राणी होना आवश्यक है। ब्रह्मचर्य से युक्त साधक के प्राण स्वभाव से ही स्थिर रहते हैं। यही बात योगशास्त्र में भी कही गई है कि **'स्थिरे बिन्दौ स्थिरः प्राणः'** वीर्य के स्थिर हो जाने से ही प्राण भी स्थिर हो जाते हैं। महादेव जी पार्वती जी से कहते हैं कि :-

सिद्धे बिन्दौ महादेवि किं न सिध्यति भूतले

हे पार्वती! बिन्दु के सिद्ध हो जाने पर ऐसी कौन सी सिद्धि है जो साधक को प्राप्त न हो सके?

पातंजल योग-दर्शन में कहा है कि **'ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायाँ वीर्य लाभः'** अर्थात् ब्रह्मचर्य की निष्ठा से वीर्य बिन्दु' की स्थिरता, ऊर्ध्वगति का लाभ प्राप्त होता है । शिव-संहिता में महादेव जी कहते

हैं कि:-

मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्

अर्थात् बिन्दु का पतन ही मृत्यु और बिन्दु का धारण ही जीवन है। महादेव जी ने पार्वती जी से ब्रह्मचर्य की महानता को बतलाते हुए कहा है कि पार्वति! मैं बिन्दु-जय से ही शिवपद को प्राप्त कर सका हूँ। इस बिन्दु के धारण ही से तो ॐकार ईशत्व प्राप्त हो गया। उसके मस्तक पर से बिन्दु को हटाकर देखिए कि फिर उसका क्या महत्व रह जाता है। बिन्दु के हटते ही वह ईशत्व से च्युत हो जाता है। बिन्दु धारण करने के कारण ही वह ईशत्व पद प्राप्त किए हुए है। अतएव जय योग के जन्मदाता शिवजी व ईश्वर के प्रथम नाम ॐ के ओमत्व का कारण बिन्दु धारणा ही है तो फिर भला साधारण ब्रह्मचर्यहीन पुरुष योग-सिद्धि को प्राप्त कर सकता है यह नितांत असम्भव है। असम्भव ही नहीं बल्कि अपनी मौत को न्योता देना है। ब्रह्मचर्य के साधन के बिना योगाभ्यास करना अपने आप को रोग और मौत के मुँह में भेजना है। इस बात को कदापि न भूलना चाहिए। यही योग शब्द का सच्चा तत्त्वार्थ है। इस मुख्य तत्त्व को सदा ध्यान में रखते हुए योग-साधन में लगने वाला साधक ही योग मार्ग की कठिनाइयों व बाधाओं को पार कर सकता है।

ब्रह्मचर्य शब्द का तत्त्वार्थ

ब्रह्मचर्य का शब्दार्थ समझना बड़ा कठिन है। बहुत से लोग बह्मचर्य का अर्थ आजन्म कुँवारा रहना या जटा-जूट आदि भेष बनाकर फिरना मात्र ही मान लेते हैं। ब्रह्मचर्य का सम्बन्ध न तो कुँवारेपन से है और न किसी वेषभूषा से। ब्रह्मचर्य का वास्तविक अर्थ वीर्य निरोध या काम-दमन से ही है, परन्तु इतना ही समझ लेने से भी ब्रह्मचर्य का अर्थ पूरा नहीं होता। ब्रह्मचर्य का पूरा अर्थ होता है वीर्य को रोकना, वेद-ज्ञान को प्राप्त करना, सत्‌चित् आनन्द ब्रह्म में लीन हो जाना। वीर्य

एक दिव्य तेज़ का नाम है जैसा कि शतपथ ब्राह्मण में कहा है **'वीर्य वै भर्गः'** अर्थात् वीर्य ही तेज़ आभा व प्रकाश है। इस वीर्यरूप बह्म के दीपन से ही ब्रह्म वेद के तत्त्वज्ञान का दर्शन और वेदतत्त्व के ब्रह्म-दीपक से ही सत्चित् आनन्द ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। यह ब्रह्मत्रय संगत ही ब्रह्मचर्य का पूरा तत्त्वार्थ है। इस ब्रह्मत्रिवेणी का स्नाता ही योग का सच्चा अधिकारी होता है।

ब्रह्मचर्य की श्रेणी

हमारे शास्त्रों में वीर्य के बीजत्व, वीरत्व, ओजस्, बल, तेज़, शुक्र, पवित्रता, रेत, रेतस्, कांति, बिन्दु व भर्गादि नाम कहे हैं और वीर्य को ही सृष्टि का उत्पादक, पालक व संहारक भी कहा है, परन्तु योगशास्त्र में वीर्य को ब्रह्मबिन्दु ब्रह्मबीज तक कहा है। महादेव जी ने योग शास्त्र में कहा है कि **'अहं बिन्दु रजः शक्तिः-'** अर्थात् मैं (महादेव) बिन्दु वीर्य हूँ और रज शक्ति (पार्वती) है। योग शास्त्र में कहा है कि साधक के नाभि स्थान में रज और मस्तक के मध्य केन्द्र में वीर्य-बिन्दु रहता है। रज का सिन्दूर वर्ण और वीर्य श्वेत वर्ण है। रज रूप पार्वती को नाभि से उठाकर मस्तक में मिला देना ही योग-सिद्धि का सफल रहस्य है। इस कथन में बहुत ही बारीक़ वैज्ञानिक तत्त्व छिपा है। ब्रह्मचर्य का ब्रह्म शब्द भी वीर्य और ब्रह्म के अभेद्य सम्बन्ध को प्रकट कर रहा है। इस अभेद्य सम्बन्ध को अभेद्य रखने वाला साधक ही प्रथम श्रेणी का ब्रह्मचारी होता है। ब्रह्मचारियों को यह भी मालूम नहीं होता कि हमारे वीर्य तन्तुओं में संसार से सम्बन्ध रखने वाला भी कोई वीर्य रूप पदार्थ है या नहीं। उसका ब्रह्म-बिन्दु सब तरह के कम्पनों से रहित सदा स्थिर रहा करता है।

दूसरी श्रेणी के ब्रह्मचर्य वाले साधक के ब्रह्म-बिन्दु में कम्पन तो अवश्य उठा करता है, परन्तु वह अपने कठोर संयम, बल अरौर भीष्म प्रतिज्ञा द्वारा ब्रह्म-बिन्दु के उन कंपनों को ब्रह्म बिन्दु की ओर ढकेल दिया करता है। यह भूमिका साधक के लिए बहुत ही कठिन कसौटी है।

तीसरी श्रेणी के ब्रह्मचर्य वाले ब्रह्मचारी (साधक) के ब्रह्म-बिन्दु में जो सृजन-कम्पन उठा करते हैं, उन्हें वह ईश्वर की सृष्टि-सृजन आदेश समझ कर सन्तान उत्पत्ति में बदल दिया करता है। वह इस सृजन के ध्येय से ही गृह कार्य में प्रवृत्त हुआ करता है। वह ब्रह्म भी उस ब्रह्म बिन्दु में होने वाली **'एकोऽहं बहुस्याम्'** की सांकेतिक सूक्ष्मांतर दिव्य वाणी को सुना करता है जो उससे कहती है कि चल तू भी मेरे बहुत होने के कार्य में सम्मिलित हो जा। ईश्वरीय आज्ञा का पालन और विषयाशक्ति से रहित यह साधक भी ब्रह्मचारी ही माना जाता है।

उपर्युक्त तीनों ब्रह्मचारी ब्रह्म के उपासक हैं। प्रथम ब्रह्मस्मिन् ब्रह्मस्थित व ब्रह्मरूप कहा जाता है, दूसरा योगी होता है और तीसरा भगवान् का परम प्रिय भक्त कहलाता है।

आध्यात्मिक साधना में उन्नति प्राप्त करने के लिए ब्रह्मचर्य के विशेष रूप से पालन करने का उपदेश दिया गया है। ब्रह्मचर्य का पालन किए बिना शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक बल संचित नहीं होता और ब्रह्मचर्य का अर्थ है अष्टांग मैथुन का त्याग। गणित शास्त्र में जो स्थान बिन्दु को है वही महत्व बिन्दु का शरीर में भी है इसी कारण इसे अमृत-बिन्दु कहते हैं। हठयोगियों का कहना है कि बिन्दु के स्थिर होने पर मन, मन के स्थिर होने पर प्राण स्थिर होते हैं, बिन्दु शुद्ध होने पर ही सब स्थिर होते हैं। स्थिर बिन्दु को किसी अलौकिक क्रिया द्वारा विक्षुब्ध कर लिया जाय तो वह स्वभावतः ही उर्ध्व दिशा में संचरणशील हो जाता है। यह उर्ध्वगति कुंडलिनी के सहस्त्रार के आकषर्ण से उर्ध्व प्रवाह का नामांतर है। ब्रह्मचर्य की साधना के द्वारा बिन्दु को विषम जगत् से पृथक् करके उसे पवित्र बनाकर ब्रह्म मार्ग में लगाना ही मुक्ति प्राप्त करने का एक मात्र उपाय है। बिन्दु के विक्षुब्ध होकर उर्ध्व की ओर संचरण करने पर ही नाद का विकास होता है। अतएव नाभिचक्र से ऊपर स्वाभाविक खेल नाद

एवं ज्योति के रूप में अनुभूत होता है। यही शब्द ब्रह्म के संचार ही अवस्था है। इसके बाद नाद ज्योति इत्यादि की पूर्णता से जिस परमभाव का उदय होता है वही निजबोध रूप आत्मज्ञान का विकास है। सारांश यह कि ब्रह्मचर्य योग की पूर्णावस्था प्राप्त करना योगाभ्यासी के लिए नितांत आवश्यक है।।

एक मन भोजन से दो तोला वीर्य बनता है। एक मनुष्य कितने दिन मे इतना भोजन कर सकता है इसका पता प्रत्येक मनुष्य अपने भोजन से स्वयं ही लगााकर फिर वीर्य तथा ब्रह्मचर्य के महत्व पर विचार करे तभी उसको उसकी महिमा का अनुभव हो सकता है।

ब्रह्मचर्य के कारण ही भीष्म पितामह की आज्ञा न मिलने तक मृत्यु उनके पास जाने का साहस तक न कर सकी। हनुमान् जी ने समुद्र लाँघकर लंका जाने व सुमेरु पर्वतादि लाने के जो अद्‌भुत पराक्रम दिखलाए थे उसका कारण ब्रह्मचर्य ही था। ब्रह्मचर्य की मर्यादा दिखलाते हुए मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी ने मेघनाद का वध स्वयं न करके बाल ब्रह्मचारी लक्ष्मण जी से ही कराया था।

ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट होकर शरीर को स्वस्थ रखने के लिए जितने भी उपचार किए जाएँगे वह सब व्यर्थ ही जावेंगे। वीर्य शरीर का राजा है, राजा के नाश हो जाने पर शरीर की अङ्गरूपी प्रजा भला कैसे सुरक्षित रह सकती। मनन और ज्ञान-बल का आधार शरीर-बल ही है।

वीर्य का पतन केवल सहवास या अप्राकृतिक कार्यों से ही नहीं बल्कि विचार से भी होता है। स्वप्नदोष क्या है? यह विषय चिन्तन का ही दुष्परिणाम है। स्वप्नदोष व अप्राकृतिक क्रियाओं द्वारा वीर्यपात और भी बहुत हानिकारक है। अतएव हमारे लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि हम मन, वचन और कर्म से पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करें।

उक्त तीनों नियमों का पालन करने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि हम सदैव सत्संग व अच्छे ग्रन्थों का अध्ययन करें और कभी बेकार न बैठें।

ब्रह्मचर्य के दृढ़ पालन से ही हम अपने सारे प्रयत्नो में सफल हो सकते हैं अन्यथा प्रत्येक कार्य के लिए किए जाने वाले हमारे प्रयत्न निष्फल व व्यर्थ हो जावेंगे।

(५) अपरिग्रह

शब्द स्पर्श,रूप, रस,गंध आदि किसी भी योग सामग्री का संग्रह न करना अपरिग्रह है अर्थात् पदार्थो का संग्रह करके उनके संवर्धन में, रक्षण में एवं प्रचार में आसक्त होकर चित्त का विक्षेप करके मूढ़ विक्षिप्त न बनना और आलस्य, प्रमाद तथा संशय को न बढ़ाना। इसके सिद्ध होने पर कंथभाव का ज्ञान होता है। (कंथता-संबोध अर्थात् मनुष्य जन्म किस प्रकार सफल हो सकता है और उसके लिए किस प्रकार के योगक्षेम की आवश्यकता है व थी अथवा होगी। अर्थात् विषयों में अर्जन, रक्षण, क्षय, संग, हिंसा आदि दोष देखकर उनको सर्वथा त्याग देना। उक्त पाँचों यमों का सब जाति, सब देश और सब काल में पालन करने से एवं किसी भी निमित्त से इनके विपरीत हिंसादि दोषों के न घटने से इनकी सत्ता महाव्रत हो जाती है)।

उक्त पाँचों यमों के अन्तर्गत पाँच निम्नलिखित नियम भी हैं। १) दया २) आर्जव ३) क्षमा ४) धृति ५) मिताहार ।

(१) **दया**-- प्राणिमात्र के दुःख निवृत्ति के लिए चेष्टा करना।

(२) **आर्जव**-- प्राणिमात्र के साथ मन, वाणी और शरीर के द्वारा जो व्यवहार किया जाता है उसमें कुटिलता के अभाव को आर्जव कहते हैं।

(३) **क्षमा**-- अपकार करने वाले के साथ भी मित्रता का व्यवहार करना।

(४) **धृति**-- इष्ट वस्तु की प्राप्ति में जो दुश्चिन्ता होती है उसको धृति कहते हैं।

(५) **मिताहार**-- शरीर धारण रखने मात्र के लिए जो भोजन किया जाय उसे मिताहार कहते हैं।

(२) नियम

नियम के अभ्यास से योगाभ्यासी की चित्तवृत्ति शुद्ध होती है। मैत्री, करूणा और मुदिता को बढ़ाने से घृणा, ईर्ष्या, हृदय की कठोरता का नाश होकर मन को शांति मिलती हैं। जन्म के हेतु भूत कायधर्म से निवृत्ति कराकर मोक्ष के हेतु निष्काम धर्म में प्रेरणा कराने वाले तपादि नियम कहलाते हैं। कितने ही सिद्धों के मत से एकांतवास, नि:संगता, औदासीन्य, यथा-प्राप्त में संतोष, विषय में निरसता और गुरु के प्रति दृढ़ अनुराग द्वारा मनोवृत्ति को नियम में लाना। अपने कर्मों के फल से दु:खी न होना पड़े इसलिए नियमों का पालन करना आवश्यक है।

नियम भी पाँच प्रकार के हैं। (१) पवित्रता (शौच) (२) संतोष (३) तप (४) स्वाध्याय और (५) ईश्वर प्रणिधान।

(१) **शौच**- अन्दर बाहर शरीर की शुद्धता, स्वच्छता जिससे शुद्धाचरण में सहायता मिले और रोगादि का निवारण होकर पर संसर्ग का निवारण होकर शरीर के द्वारा आत्मा का प्रकाश फैलाना। शौच दो प्रकार के होते हैं।

(१) बाह्य शौच (२) आभ्यत्तर शौच।

बाह्यशौच- के पालन से अपने शरीर में ग्लानि तथा दूसरों के साथ असम्बन्ध होता है। स्थूल शरीर को मृत्तिका व जल से धोये, स्वार्थ त्याग से व्यवहार व आचरण करे, न्यायोपार्जित द्रव्य से प्राप्त सात्विक पदार्थो और गोमूत्र तथा गोमय आदि शुद्ध सात्विक पदार्थ खाने व उपवास करने से होता है।

आभ्यंतर शौच-- से सत्व (बुद्धि) की शुद्धि, सौमनस्य, चित्त को अपने वास्तविक रूप में लाना, उसे निर्मल करना। इससे एकाग्रता, इन्द्रिय, जप और आत्म- दर्शन की योग्यता प्राप्त होती है। सत्व स्वभाव, चित्त के काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद मत्सर, आदि को मैत्री व करुणा आदि से दूर करना, अर्थात् अहंता, ममता, राग-द्वेष, **ईर्ष्या**, भय और काम- क्रोधादि भीतरी दुर्गुण के त्याग से भीतरी पवित्रता होती है।

(२) **संतोष**- प्रारब्ध कर्मानुसार जो अन्न वस्त्रादि शास्त्रोक्त भोग प्राप्त हों, उनमें ही तृप्ति रखना और स्वास्थ्य, शांति, चित्त में समाधान रखना। तृष्णा का लय होकर पूर्ण काम एवं निज में ईश्वर का दर्शन करना सन्तोष है। जीवन निर्वाहोपयुक्त वस्तुओं के सिवाय किसी भी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा न रखना सन्तोष है। इसके सिद्ध होने पर अनुपम सुख की प्राप्ति होती है। सुख-दुःख, लाभ-हानि, यश-अपयश, सिद्धि-असिद्धि, अनुकूलता-प्रतिकूलता आदि के प्राप्त होने पर सदा सन्तुष्ट व प्रसन्न रहने को सन्तोष कहते हैं।

(३) **तप**- शीतोष्ण, भूख-प्यास, सुख-दुःखादि द्वन्द सहन करते हुए नियमित और संयमित जीवन व्यतीत करना तथा मंत्र-जप, अनुष्ठान व मन और इन्द्रियों के संयमरूप धर्म पालन करने के लिए कष्ट सहने व तितिक्षा एवं व्रतादिक तथा उपासनादि द्वारा अशुद्धि का नाश करना तप है। ज्येष्ठ, पूज्य, गुरु, प्राज्ञ का सत्कार और सेवा तथा शौच, आर्जव, ब्रह्मचर्य व अहिंसा का पालन शारीरिक तप है। मन की प्रसन्नता, सौम्यता, मौन तथा आत्म-निग्रह मानस तप है।

उद्वेग रहित, सत्य, प्रिय,मित भाषण और स्वाध्याय का अभ्यास वाङ्मय तप है। इन तीनों को आचरण में लाकर सिद्धि-लाभ करना तप है। इसके सिद्ध होने से अशुद्धि क्षय के पश्चात् योगी को शरीर

तथा इन्द्रिय सिद्धि की प्राप्ति होती है। इसके लिए चान्द्रायण, कृच्छ चान्द्रायण और सान्तपन आदि व्रत शास्त्रों में बतलाए गए हैं।

(४) **स्वाध्याय**- मोक्ष तथा कल्याणप्रद शास्त्रों का पठन-पाठन, श्रवण-निदिध्यासन, प्रणव मंत्र व भगवन्नाम के जप द्वारा परमात्मा का गुणानुवाद च साक्षात्कार प्राप्त करना, सब जड़ चेतन पदार्थ मात्र वर्णक्रमानुक्रम में ग्रथित हैं, अतएव नियमित वर्णों के उच्चारण में विद्युच्छक्ति उत्पन्न करके उनका आकर्षण कर लेना अभ्यास द्वारा परापरा विद्याओं का सम्पादन स्वाध्याय है। इसके सिद्ध होने पर इष्टदेव व परमात्मा के दर्शन प्राप्त होते हैं।

(५) **ईश्वर प्रणिधान**- ईश्वर की भक्ति अर्थात् मन, वाणी व शरीर द्वारा ईश्वर के लिए, ईश्वर के अनुकूल ही चेष्टा करना। (ईश्वरार्पण) सब कर्म और उनके फल ईश्वर को अर्पण करके निष्काम होना, कर्मवीर बनकर कर्मक्षेत्र में निज का प्रणिधान कर लेना, शारीरिक, मानसिक सब व्यापार ईश्वर को समर्पित करके समाधिस्थ हो जाना, ईश्वर प्रणिधान है। इसके सिद्ध होने पर समाधि की सिद्धि होती है।। ईश्वर भक्त को चाहिए कि भगवान् को अर्पण किए बिना जल भी ग्रहण न करे।

ऊपर लिखे पाँचों अङ्गों के अन्तर्गत आगे लिखे अनुसार आठ उपनियम भी है।

(१) दान (२) देवपूजा (३) सिद्धान्त- श्रवण (४) ह्री (५) भीति (६) होम (७) आस्तिक्य (८) जप।

(१) **दान**- यथा- विहित अनिब्ध उपाय से कमाए हुए धन को शक्ति के अनुसार देव, पितर और मनुष्यों आदि के हेतु व्यय करना।

(२) **देव पूजा**- अपने इष्टदेव की उपासना, देव-पूजा करना।

(३) **सिद्धांत श्रवण**- वेदोपनिषद् तथा इसी प्रकार के धार्मिक ग्रन्थों को पढ़ना सिद्धांत- श्रवण कहलाता है।

(४) **ह्री**- कुत्सित आचरण के कारण मन में जो कष्ट होता है उसको ह्री कहते हैं।

(५) **भीति**- शब्द का अर्थ है मनन अर्थात् विविध युक्ति-प्रमाणों की सहायता से सुने हुए उपदेशों का अनुशीलन करना।

(६) **होम**- अग्निहोत्रादि होम को होम कहते हैं।

(७) **आस्तिक्य**- श्रुति प्रतिपाद्य अर्थ के अनुसार परलोक के अस्तित्व में जो विश्वास है वही आस्तिक्य कहलाता है।

(८) **जप**- अपने इष्टदेव या मंत्र का मालादि द्वारा निरन्तर स्मरण करना ।

(३) आसन

हमारे ऋषियों ने सर्व साधारण के लिए अधिकार भेद के अनुसार ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग, मंत्र योग, राज योग, हठ योग, लय योग आदि कई प्रकार के योग बतलाए हैं और इन सब योगों में हठ योग के आसन आदि साधनों का किसी न किसी रूप में साधन करना ही पड़ता है। अतएव हठ योग सब प्रकार के साधनों व योगों का आधार है। इसलिए हठ योग की विवेचना करना आवश्यक हो जाती है।

हठ योग के चार अंग है। (१) आसन (२) प्राणायाम (३) मुद्रा (४) नादानुसंधान। आसनों के अभ्यास से नाड़ी समूह की मृदुता, सहनशीलता की वृद्धि, शरीर की लघुता, मन की एकाग्रता और प्राणतत्त्व का उर्ध्वगमन तथा शरीर के अनेक रोगों की निवृत्ति होती है। साधक की प्रकृति के अनुकूल जो आसन हो उसे मुख्य और दूसरों को गौण समझना चाहिए। मुख्य आसनों का अभ्यास सदैव गौण और

आसन मलादि दोषों की निवृत्ति के लिए किसी अवधि विशेष तक ही किया जाता हैं, परन्तु यदि प्राणायामादि के द्वारा राजयोग में प्रवेश करना हो तो इस दशा में आसनों के अधिकारी केवल मुमुक्ष ही हो सकते हैं।

शरीर के बग़ैर हिले डुले दुःख व चिन्ता में बिना उद्वेग के बैठने को आसन कहते हैं। योग के ग्रन्थों में अनेक प्रकार के आसन दिए हैं। (१) हठ योग प्रदीपिका में चौदह प्रकार के (२) योग प्रदीप में २१ प्रकार के (३) घेरंड संहिता में ३५ प्रकार के (४) विश्व कोष में ३३ प्रकार के और (५) अनुभव प्रकाश में ५० प्रकार के आसन लिखे हैं। आजकल जिन योगाचार्यों ने आसन सम्बन्धी पुस्तकें लिखी है उनमें से अधिकतर में आधुनिक समय के अनुकूल पचास आसन बतलाये हैं। योगी गोरखनाथ ने आसनों की पूरी संख्या २४ निश्चय की है। पूर्व काल में भगवान् शिव जी ने ८४ लाख आसन नियत किए थे जो सम्पूर्ण प्राणियों के स्वरूप थे, परन्तु समय और व्यवहारिकता के विचार से सब लुप्त होकर अब केवल ८४ ही रह गए। उनमें से भी अब लगभग ४० मर्त्यलोक में मंगलजनक हैं और अधिकतर अब उन्हीं का अभ्यास किया जाता है।

हठ योग प्रदीपिका में सिद्धासन,पद्मासन, सिंहासन व भद्रासन को प्रधान और सिद्धासन को सब आसनों में श्रेष्ठ माना गया है।

सम्पूर्ण आसनों में (१) पद्मासन (२) सिद्धासन (३) भद्रासन तथा (४) सिंहासन अधिक महत्त्व के हैं। अतएव अधिकतर अभ्यासी लोग इन्हीं का अभ्यास करते हैं।

यह तो एक निर्विवाद बात है कि जब तक शरीर स्वस्थ न हो उस वक़्त तक कोई भी कार्य सुचारु व नियमित रूप से तथा सफलता पूर्वक नहीं हो सकता। जिस प्रकार यह बात सत्य है उसी प्रकार यह भी सत्य है कि सारे शरीर का आधार-केन्द्र पेट है और शरीर का

स्वस्थ रहना नितांत उसी पर निर्भर है। सारांश यह कि पेट की क्रिया ठीक रहने पर ही शरीर व उसके सब अवयव ठीक तौर से काम करते हैं और तभी मानसिक व शरीर की अन्य शक्तियों का विकास होता हैं।

पेट का केवल इतना ही महत्त्व नहीं है कि वह शरीर की सब आँतों का संचालन व उनका विकास करता है बल्कि शरीर का जीवन और मृत्यु ही उस पर निर्भर है। शरीर के सब अङ्गों के भिन्न-भिन्न देवता माने गए हैं। जिस प्रकार पैर के देवता विष्णु, हाथ के इन्द्र हैं वैसे ही पेट के देवता यम हैं, अतएव यदि हम यम से अर्थात् मृत्यु से बचना चाहते हैं तो हमारे लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम पेट को मज़बूत और ठीक दशा में रखें। इसके लिए आसन ही सर्वोत्तम उपाय हैं।

चौरासी आसन व उनका संक्षिप्त विवरण

१. **सिद्धासन**- से सब नाड़ियाँ शुद्ध होकर उनमें नवीन रक्त का संचार होता है व ईश्वर-चिन्तन में मन लगता है तथा मोक्ष प्राप्ति होती है।

२. **प्रसिद्ध सिद्धासन**- से सब रोग दूर होते हैं व विनम्रता बढ़ती हैं।

३. **पद्मासन**- से सब प्रकार की इष्ट-सिद्धि होती हैं व परमात्मा में मन लगता है।

४. **वद्धासन**- से शांति मिलती है।

५. **उत्थितासन**- से दिव्य दृष्टि होती है, हृदयकमल खिलता है, श्वासव्याधि मिटती है।

६. **ऊर्ध्वासन**- से मेरुदंड मज़बूत होता है व शरीर में रक्त का संचार होता है।

७. **सुप्तासन**- से उदर रोग दूर होते हैं।

८. **भद्रासन**- से सब कामों में मन लगता है।

९. **स्वस्तिकासन**- यथा नाम तथा गुण है।

१०. **योगासन**- से चित्त स्थिर होता है,निद्रा रोग दूर होकर सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।

११. **प्राणासन या प्राणायामासन**- से मन, रक्त और नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं।

१२. **मुक्तासन**- से सिद्धि प्राप्त होती है।

१३. **पवन मुक्तासन**- से अधोवायु निकलता है।

१४. **सूर्यासन**- से अग्नि बढ़ती है।

१५. **सूर्यभेदनासन** - से नेत्ररोग दूर होते हैं।

१६. **मस्तिकासन** - से ज्वर मिटते हैं, पाचन शक्ति बढ़ती है व रुधिर शुद्ध होता है।

१७. **सावित्री समाधि आसन** - से ओज, तेज व मेधा की वृद्धि होती है।

१८. **अचिन्तनीयासन** - से चेतनता होती है।

१९. **ब्रह्म जरांकुशासन** - से बीमारी मिटती है।

२०. **उद्धारकासन** - से गुह्य स्थान सबल होते हैं।

२१. **मृत्युभंजकासन** - से वायु शांत होती हैं।

२२. **आत्मारामासन** - से चिन्ता मिटती है। अलोप व अध्यात्म आसन भी इसी को कहते हैं।

२३. **भैरवासन** - से कुंडलिनी व्याकुल होती है, कमल खिलता है। ताप, तिल्ली, जिगर वायुगोला अच्छा होता है।

२४. **गरुड़ासन** - ये मनुष्य गमनशील होता हैं।

२५. **गोमुखासन** - से मुखरोग मिटते हैं।

२६. **वातायकासन** - से प्रगति होती है।

२७. **सिद्ध मुक्तावली** - से हर्ष उत्पन्न होती है।

२८. **नेति आसन** - से मनुष्य निर्मल होता है।

२९. **पूर्वासन** - से प्राचीन स्मृति प्राप्त होती है।

३०. **पश्चिमोत्तानासन**- से पेट के कीड़े मरते हैं,वायु बदल जाती है।

३१. **महामुद्रा** - से रस-विष पथ्यापथ्य पच जाते हैं, क्षय, कुष्ठ, गुल्म, उदावर्त मिटते हैं। मृत्यु के क्लेशक्षय होते हैं।

३२. **वज्रासन** - से क्षुद्र व्याधियाँ मिटती हैं व आयु बढ़ती है।

३३. **चक्रासन** - से कुण्डलिनी कुंठित होती है।

३४. **गर्भासन** - से कष्ट सहने की शक्ति बढ़ती है।

३५. **शीर्षासन** - से स्वास्थ्य, सुन्दरता,बल, वीर्य व महाशक्ति बढ़ती है।

३६. **हस्ताधार शीर्षासन** - से मस्तिष्क मज़बूत होता है।

३७. **उर्ध्व सर्वांगांसन** - ये स्वाधीनता आती है।

३८. **हस्तपदांगुष्ठासन** - से कमर, गर्दन, नासिका व उदर में बल बढ़ता है।

३९. **पादांगुष्ठासन** - से दृष्टि तेज़ होती है।

४०. **उत्तानपादासन** - से प्राण वायु शुद्ध होती है।

४१. **जानुलान हस्तासन** - से उदर शुद्ध होता है।

४२. **एकपाद शिरासन** - से शरीर निर्दोष होता है।

४३. **द्विपाद शिरासन** - से सुख प्राप्त होता है।

४४. **एकहस्तासन** - से पार्श्वशूल नहीं होती।

४५. **पाद हस्तासन** - से बल बढ़ता है।
४६. **कर्णपीड मूलासन** - से जठराग्नि बढ़ती है।
४७. **कोणासन** - से उदर शुद्ध होता है।
४८. **त्रिकोणासन** - से कटि-पीड़ा मिटती है।
४९. **चतुष्कोणासन** - से बुद्धि बढ़ती है।
५०. **कन्द पीड़ासन** - से मज्जाग्रन्थि खुल जाती है।
५१. **तुलितासन** - से स्थिरता होती है।
५२. **लोल, ताड़ या वृक्षासन** - से स्नायु सबल होते हैं।
५३. **धनुषासन** - से वीरता बढ़ती है, त्राटक का अभ्यास होता है व आलस्य मिटता है।
५४. **वियोगासन** - से ताप तिल्ली मिटती है।
५५. **विलोमासन** - से दीर्घ रोग दूर होते हैं।
५६. **योन्यासन** - से मूत्र-द्वार शुद्ध होता है।
५७. **गुप्तांगासन** - से प्रच्छन्न रोग मिटते हैं।
५८. **उत्कटासन** - से पाँवों में बल बढता है।
५९. **शोकासन** - से मृगी दूर होती है।
६०. **संकटासन** - से कमर दर्द दूर होता है।
६१. **अंधासन** - से राज्यवंधादि रोग मिटते है।
६२. **संडासन** - से निर्भयता बढ़ती हैं।
६३. **शवासन** - से अधोवायु खुल जाता है।
६४. **गोपुच्छासन** - से पाप मिटते हैं।
६५. **उष्ट्रासन** - से शीतोष्ण सहे जा सकते हैं।,
६६. **वृक्षासन** - से वीर्य-स्तंभन होता है।
६७. **मर्कटासन** - से नाभि की नाड़ी ठीक होती है।
६८. **मत्स्यासन** - से स्थिरता होती है।
६९. **मत्स्येन्द्रासन** - से वीर्य बढ़ता है।
७०. **मकरासन** - से शक्ति बढ़ती है।
७१. **कच्छपासन** - से मन स्थिर होता है।

७२. **मंडूकासन** - से शरीर सूक्ष्म हो सकता है।

७३. **उत्तान मंडूकासन** - से तरण शक्ति बढ़ती हैं।

७४. **हंसासन** - से शांति बढ़ती है।

७५. **चक्रासन** - जलाघात सहा जा सकता है।

७६. **मयूरासन** - से गुल्म, प्लीहा व उदर -व्याधि मिटती है तथा दूर श्रवण बढ़ता है।

७७. **कुक्कुटासन** - से काम इच्छा कम होती है।

७८. **फोद्यासन** - से रक्तपित्त व पिस्ती दूर होती है।

७९. **शल्यासन** - से वायु-बल बढ़ता है।

८०. **वृश्चिकासन** - से उग्रता आती है।

८१. **हस्तासन** - से मनुष्य बलवान् होता है।

८२. **सूर्यासन** - से मंदाग्नि मिटती है।

८३. **वीरासन** - से धैर्य बढ़ता है।

८४. **शान्तिप्रियासन** - से सब्र प्रकार के सुख होते हैं।

वैसे तो पूर्व लिखे अनुसार आसन चौरासी हैं वर्तमान योगाचार्यो के मतानुसार मुख्य-मुख्य आसन जिनका कि आजकल अधिक प्रचार है व जिनका अधिकतर लोग अभ्यास करते हैं वह इस प्रकार है।

१. पद्मासन (उसके अन्य प्रकार)
   १. अर्द्ध पद्मासन
   २. पर्वतासन
   ३. वीरासन
   ४. समासन
   ५. वद्ध पद्मासन
   ६. ऊर्ध्व पद्मासन

२. सिद्धासन (उसके अन्य प्रकार)

३. सर्वांगासन
४. इलासन
५. मत्स्यासन
६. पश्चिमोत्तानासन
७. मयूरासन
८. अर्ध मत्स्येन्द्रासन
९. शलभासन
१०. भुजंगासन
११. धनुरासन
आकर्षण धनुरासन

१२. गोमुखासन
१३. वज्रासन
१४. पाद हस्तासन
१५. चक्रासन
१६. गरुड़ासन
१७. जानुशिरासन
१८. गर्भासन
१९. कुक्कुटासन
२०. कंदपीड़नासन
२१. शीर्षासन
२२. वृश्चिकासन
२३. द्विपाद शिरासन
२४. वकासन
२५. पवन मुक्तासन
२६. द्विहस्त भुजासन
२७. वातापनासन
२८. गुल्फ जंघासन
२९. गुप्तासन
३०. स्वस्तिकासन
३१. सुखासन
३२.काम दहनासन
३३. त्रिकोणासन
३४. योगासन
३५. शवासन
३६. लोलासन

आसन सम्बन्धी आवश्यक बातें

आसनों के साधन से शरीर स्थिर और दृढ़ होता है व आसन सिद्ध होने पर शीतोष्णादि द्वन्द्वों का प्रतिकूल प्रभाव नहीं हो पाता। जिस आसन से जो सुख-पूर्वक अधिक समय तक बैठ सके उसके लिए वही आसन उत्तम है।

कम से कम तीन घंटा छत्तीस मिनट और अधिक से अधिक चार घंटा अड़तालीस मिनिट एक-एक आसन से सुख-पूर्वक व अचल (बिना हिले डुले) बैठने पर आसन-सिद्धि होती है। आसन सिद्ध होने पर ही ध्यान, जप, प्राणायाम सफलता पूर्वक हो सकेगा तथा मन और शरीर स्थिर हो जाता है। सर्दी, गर्मी भूख, प्यास आदि द्वन्द्वों का प्रभाव नहीं पड़ता।

आसन के समय मेरुदंड, मस्तक व गर्दन सीधी, दृष्टि बन्द, नासिकाग्र, हृदयकमल, नाभि, भृकुटी के मध्य अथवा साधन के स्थान पर रहना चाहिए।

आसनों के लिए प्रातःकाल की अपेक्षा संध्या का समय अधिक उपयुक्त होता है क्योंकि चलने-फिरने आदि के कारण उस समय शरीर के स्नायु अधिक नर्म होते हैं।

अधिक से अधिक समय तक आसन लगाने का अभ्यास करना चाहिए। पैरों में दर्द होने पर आसन खोलकर व पैरों को पाँच सात मिनिट मलकर फिर आसन लगाए। कडुवा तेल में नमक मिलाकर मलना अधिक उपयुक्त होगा।

साधक को रमणीक व निरापद स्थान, पुष्ट व परिमित **भोजन**, एकांत, कम बोलना, वैराग्य व साहस आदि साधन में अधिक सहायक हैं।

(१) योगशास्त्र में अनेक आसन हैं, परन्तु जीवन -मुक्त महापुरूष व सिद्धयोगी सिद्धासन, स्वस्तिक, सुखासन व विशेषकर पद्मासन के लिए ही अधिक अनुरोध करते हैं। पद्मासन में शरीर का संतुलन रहता है अतएव समाधि के यकायक लग जाने पर गिरने का भय नहीं रहता इसीलिए अन्य आसनों की अपेक्षा ध्यान व जपादि करने वालों को पद्मासन का अभ्यास पहले करना चाहिए।

(२) जिस स्थिति व आसन में मन एकाग्र होकर ब्रह्म-चिन्तन कर रहा हो उसको न बदले क्योंकि ऐसा करने से एकाग्रता का आनन्द नष्ट हो जाता है।

अभ्यास सुबह व शाम दोनों समय करना चाहिए।

प्रत्येक आसन के बाद उसके विपरीत आसन भी करें। जैसे पद्मासन एक बार दाहिना पैर नीचे रखकर करें तो दूसरी बार बायाँ पैर नीचे रखें जिससे एक ही अङ्ग पर ज़ोर न पड़कर दोनों अङ्गों का संतुलन रहे। सर्वांग आसन के पश्चात् मत्स्य या चक्रासन का अच्छा जोड़ है।

अधिक समय न हो तो शीर्ष, पश्चिमोत्तान व सर्वांग आसन ही करें ।

आसनों के साथ इष्टदेव के नाम का जप करते रहने से दुहरा लाभ होगा।

त्रिकाल संध्या व रात्रि संध्या (१२बजे रात्रि)अर्थात् चार बार तक लगातार तीन घंटे आसन लगाने से छः महीने में आसन सिद्ध होती है। जब कष्ट न मालूम होकर आनन्द प्रतीत होने लगे तभी आसन सिद्ध समझना चाहिए।

जिस स्थान में आसन की जावे वह स्वच्छ और हवादार होना चाहिए वहाँ किसी को आने-जाने नहीं देना चाहिए।

शेषनाग जी पर चित्त लगाने से आसन शीघ्र सिद्ध हो जाती है।

जप और ध्यान जिस भी आसन से किया जाय उसको बदलना उचित नहीं। जो भी आसन उपयुक्त बैठे उसी को सिद्ध करना चाहिए। आसन जितनी दृढ़ व अधिक समय तक हो सकेगी उतना ही मन व ध्यान एकाग्र होगा।

आसन पर बैठते समय बराबर यह भावना रखे कि मैं पहाड़ की तरह अचल हूँ, मुझे कोई डिगा नहीं सकता। आसन के समय हिलने-डुलने से एकाग्रता व ध्यान भंग होने से सारा आनन्द नष्ट हो जाता है।

पहले आसन के पश्चात् प्राणायाम और उसके उपरांत जप व ध्यान करने से मन शीघ्र एकाग्र होता है व ध्यान भी अच्छा होता है।

प्रातःकाल पहले यदि ध्यान और भजन ही करना हो तो उसके बाद आसन करे।

यदि प्रातःकाल उठते ही टट्टी न मालूम हो तो आसन और ध्यान करने के बाद टट्टी भी साफ़ होगी।

आसन खाली पेट अथवा भोजन के तीन घंटे बाद करें।

कान, आँख, निर्बल हृदय, छाती में दर्द वालों व जिनकी नाक हमेशा बन्द रहती हो उनको शीर्षासन नहीं करना चाहिए।

जिनकी पचेन्द्रिय (मेदा) बहुत कमज़ोर हो, तिल्ली बड़ी हो उनको भुजंगासन, शलभासन व धनुरासन नहीं करना चाहिए।

जिनको कब्ज रहता हो उनको पश्चिमोत्तानासन देर तक नहीं करना चाहिए।

आसन धीरे-धीरे सावधानी से, अपनी शक्ति के अनुसार विधि -पूर्वक व चित्र को अच्छी तरह समझकर करना चाहिए। समय भी धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। यदि आरंभ मे किसी योगी अथवा आसन जानने वाले के तत्वावधान में अभ्यास किया जाय तो उत्तम होगा।

आसनों के साथ-साथ जप व प्राणायाम भी करने से ही वास्तविक लाभ व उनका पूरा-पूरा उपयोग होता है।

हर एक आसन का करना न तो सम्भव ही है और न आवश्यक ही हैं अतएव अपनी शक्ति, स्वभाव व सुविधा के अनुसार कुछ आसनों को चुन लेना चाहिए।

जप और ध्यान के लिए पद्म, सिद्ध स्वस्तिक व सुखासन उपयुक्त है।

आसनों के समय कभी चश्मा नहीं लगाना चाहिए।

आठ दस वर्ष की अवस्था से आसनों का अभ्यास किया जा सकता है।

वृद्ध लोगों को शीर्षासन नहीं करना चाहिए।

आसन कम्बल के ऊपर उसके आसनों के अनुसार लम्बे चौड़े-अर्थात् दोहरे व चारपर्त करके अथवा काफी मोटे कपड़े पर करना चाहिए। शीर्षासन के लिए तो सर के नीचे विशेषकर काफ़ी गुदगुदी आसन होना चाहिए।

आसन के समय कुम्भक करने से बल व जीवन -शक्ति बढ़ती है।

स्त्रियाँ भी आसनों का अभ्यास कर सकतीं हैं। इनके लिए निर्धारित आसनों के अभ्यास से उनके स्वास्थ्य में भी बहुत उन्नति हो सकती है तथा उनकी अनेक बीमारियाँ दूर होकर उत्तम संतान पैदा करने में सहायक हो सकती हैं, परन्तु मासिक धर्म व गर्भावस्था में उनको आसन नहीं करना चाहिए।

प्राण-शक्ति का क्षय, खून में विकार तथा मल और विषों के जमा हो जाने से अर्थात् इन्हीं कारणों से तरह-तरह के रोग उत्पन्न होकर अल्प आयु में ही मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। आसनों से यह सब विकार दूर होकर मनुष्य स्वस्थ व दीर्घजीवी होता है।

अजीर्ण से कोष्ठबद्धता हो जाती है व दस्त साफ़ नहीं होता अतएव शीर्ष, मयूर, मत्स्य, सर्वांग, उर्ध्व सर्वांग, पश्चिमोत्तान, जानुशिरासन व पद्मासन करें।

दन्तरोग में शीर्षासन लाभकारी है।

स्वप्नदोष वालों को शीर्ष, सर्वांग, जानुशिरासन लाभकारी हैं। कुछ योगी लोग साधारणतया वज्रासन से बैठे रहते हैं।

निम्नलिखित आसनों का अच्छा मेल है। (१) शीर्ष (२) सर्वांग (३) हलासन (४) मत्स्य (५) पश्चिमोत्तान (६) मयूर (७) शलभ (८) धनुष् (९) पदम् व वद्धपद्म (१०) त्रिकोण (११) पाद हस्त (१२) शवासन।

यदि आसनों के साथ कुछ षट्कर्म व बन्ध भी किए जाए जैसे नेति, वस्ति, योग व ज्ञानमुद्रा, उड्डियान तो बहुत शीघ्र व अधिक लाभ होता है।

आसन और व्यायाम

योग आसनों के साथ कुछ व्यायाम भी किया जा सकता है परन्तु आसन करने वाले को अधिक व्यायाम करने की आवश्यकता नहीं। कारण-शरीर की मांस पेशियों पर मांस चढ़ने से वह मोटी अवश्य हो जाती हैं और शरीर भी सुडौल, गठीला व सुन्दर हो जाता है परन्तु व्यायाम में श्वास (प्राण-शक्ति) छत्तीस अँगुल से अधिक प्रमाण में बाहर निकलने से आयु घटती है। इसके विपरीत आसनों से वह शरीर में आती है। आसनों से शरीर के सभी अङ्गों स्नायुओं व नस-नाड़ियों आदि का व्यायाम हो जाने के कारण शरीर और मस्तिष्क स्वस्थ,फुर्तीला व दृढ़ होकर आयु बढ़ती है। जबकि व्यायाम करने वाला मस्तिष्क का काम अधिक नहीं कर सकता और उसे आलस्य भी बहुत आता है।

आसनों से शरीर भले ही उतना मोटा न हो परन्तु उनसे सभी स्नायु, मांस-पेशियाँ तथा शरीर दृढ़ और रक्त व वायु आदि शुद्ध होने से शरीर स्वस्थ, सुन्दर, कांतिमान् व दीर्घायु होता है। अच्छे-अच्छे पहलवान जो काम नहीं कर सकते वह काम प्रो. राममूर्ति आसनों और प्राणायाम के द्वारा ही करते थे।

आसन केवल व्यायाम ही नहीं बल्कि उसका दर्जा व्यायाम से कहीं बहुत ऊँचा है क्योंकि उसका आधार केवल शारीरिक शक्ति ही नहीं बल्कि आध्यात्मिक व आत्म शक्ति है। उससे शरीर, बुद्धि व मन पर नियन्त्रण रहता है।

इसके अतिरिक्त शारीरिक व्यायाम चाहे कितना भी अधिक और चाहे जितने दिनों तक ही क्यों न किया जाय परन्तु उससे कुंडलिनी जाग्रत नहीं होती। मगर आसनों के कुछ ही दिनों के अभ्यास से कुंडलिनी देवी जिससे न केवल शक्ति व आनन्द ही प्राप्त होता है बल्कि उससे सिद्ध होने वाली समाधि और समाधि द्वारा आत्मानुभव व परम पिता परमात्मा के दर्शन भी प्राप्त होते हैं।

(१) पद्मासन अथवा कमलासन

पद्मासन में आसन की आकृति कमल के समान हो जाने से इसको कमलासन भी कहते हैं। घेरंड तथा शाण्डिल्य आदि ऋषियों ने इस आसन की बड़ी प्रशंसा की है। गृहस्थों के लिए भी यह आसन बहुत ही अनुकूल है। स्त्रियाँ व दुबले आदमी तथा बच्चे भी इसका अभ्यास कर सकते हैं।

विधि

पहले दोनों पैर फैलाकर बैठ जाइए फिर धीरे से दाहिना पैर उठाकर धीरे से बाएँ पैर की जाँघ पर रखिए और इसी तरह बायाँ पैर उठाकर दाहिने पैर की जाँघ पर रखिए। घुटने बिलकुल ज़मीन से मिले रहें। दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर हथेली के बल अथवा हथेली (पंजा) चित करके तर्जनी अँगुली और अँगूठा को मिलाकर छल्ले की तरह बना लीजिए अथवा हथेलियों को चित एक दूसरे पर बराबर

रखकर गोद में रख सकते हैं। कभी दाहिने पैर को बायीं जाँघ पर और कभी बाएँ पैर को दाहिनी जाँघ पर रखकर अर्थात् पैर अदल-बदल करना चहिये ताकि दोनों पैरों का संतुलन रहे और एक पैर पर ज़ोर न पड़े।

इस आसन में दोनों हाथ ऊँचे करके पूरक करे, कुम्भक के समय सिर से लगाकर प्लावनी प्राणायाम करे और फिर पदमासन से ही रेचक करने से जल पर कमल तुल्य तैरने की शक्ति आती है।

पद्मासन के प्रकार

(१) **अर्धपद्मासन**- आरम्भ में यदि पद्मासन न लगाया जा सके तो केवल एक ही पैर को दूसरी जाँघ पर रखने का अभ्यास करना चाहिए। एक पैर दूसरी जाँघ पर रखकर जो आसन की जाती है उसे अर्धपद्मासन कहते हैं।

(२) **पर्वतासन**- पद्मासन बैठने के पश्चात् घुटनों के बल खड़े होकर दोनों हाथ सीधे खड़े रखने को पर्वतासन कहते हैं। इस आसन को मोटे कम्बल या गद्दे पर करना चाहिए ताकि घुटनों में चोट न आवे। आरम्भ में एक स्टूल या तिपाई आदि के सहारे करें। कुछ दिन में बिना सहारे होने लगेगी। कुछ लोग वीरासन से बैठकर भी इसे करते हैं।

(३) **वीरासन** - आराम से बैठकर एक पैर को दूसरी जाँघ के ऊपर रखे और दूसरा पैर दूसरी जाँघ के नीचे रखे। इसे वीरासन कहते हैं। गौरांग महाप्रभु इसी आसन को करते थे।

(४) **समासन**- बाएँ पैर की एड़ी दाहिनी जाँघ पर और दाहिने पैर की एड़ी को बायीं जाँघ पर रखकर बग़ैर दाहिने बाएँ झुके आराम से बैठने को समासन कहते हैं।

(५) **बद्ध पद्मासन अथवा कर्मुक्षासन**- साधारण पद्मासन को बैठकर एड़ी पेट के नीचे के हिस्से को छूती रहे तब पहले दाहिने हाथ को पीठ के पीछे ले जाकर दाहिने पैर का अँगूठा पकड़े। फिर इसी तरह बाँए पैर का अँगूठा पकड़े। ठुड्डी को छाती में लगावे और नाक के अग्रभाग को दृष्टि रखकर धीरे-धीरे साँस ले।

आरम्भ में दोनों पैरों के अँगूठे न पकड़े जा सकें तो पहले एक ही पैर का अँगूठा पकड़कर कुछ दिनों अर्द्ध वद्ध पद्मासन का अभ्यास करें। अर्द्ध बद्ध पद्मासन भी पहले दाहिनी पश्चात् बायीं ओर करें। एक अँगूठा पकड़ने के बाद शरीर को कुछ आगे व बगल में झुकाने से दूसरा अँगूठा पकड़ने में सुविधा होगी।

(६) **ऊर्ध्व पद्मासन**- पहले शीर्षासन करे फिर धीरे से दाहिना पैर मोड़कर बायीं जाँघ पर व बायाँ पैर दाहिनी जाँघ पर रखे। जब दस पन्द्रह मिनट तक शीर्षासन का अभ्यास हो जाय तब इस आसन को सावधानी से करें। इस आसन के समय साँस नाक से लेवे। आरम्भ में पाँच सात मिनिट करने के पश्चात् बढ़ाना चाहिए। दीवाल के सहारे भी इसका अभ्यास किया जा सकता है। शिर के नीचे कम्बल के कई पर्त करके या कोई गदिया रखना चाहिए। इसमें भी पैर बदलते रहना चाहिए।

लाभ

पद्मासन- इस आसन के अभ्यास के सब प्रकार के अभीष्ट सिद्ध होते हैं। जप और ध्यान के लिए जिन चार मुख्य आसनों का उल्लेख किया गया है उनमें यह भी एक मुख्य आसन है। अन्य आसनों में यदि कुछ भूल हो जाय तो प्राण तक संकट में पड़ सकते हैं, परन्तु इसमें किसी तरह का भय नहीं । इससे सब रोगों का नाश व बहत्तर हज़ार नाड़ियों का मल साफ़ होता है। जप और ध्यान प्राणायामादि के लिए यह आसन बहुत ही उत्तम है। समाधि भी इसी

आसन में लगाई जाती है। इस आसन के समय दाँतों की जड़ों में जीभ की नोंक लगाने से सब बीमारियाँ दूर होती है। यह योग विद्या का सर्वाधार अङ्ग तथा मुक्ति दोनों को देने वाला है।

इस आसन में पैरों के स्नायुओं के तनने से पैरों की समस्त नाड़ियाँ शुद्ध होती है। रक्त का प्रवाह शुद्ध होता है व शरीर सीधा रहता है। पेट को ऊपर खींचने से पेट के विकार दूर होकर पाचन शक्ति बढ़ती है। इससे वीर्य रक्षा, पेट व पीठ के स्नायु मज़बूत, बुद्धि तीव्र होती है आँतों के रोग, दृष्टि दोष, मेदा रोग के लिए भी लाभकारी है।

नियम से प्रतिदिन जो लोग यह आसन करते समय हृदय कमल में भगवान् का ध्यान करते हैं उनको मोक्ष मिलने में सन्देह नहीं। इस आसन के करने वालों को गठिया नहीं होता और उनके शरीर में वात, पित्त व कफ़ तीनों सामन रूप से काम करते हैं। ब्रह्मचर्य की रक्षा होती है।

उर्ध्व पद्मासन- इस आसन से वे ही लाभ हैं जो शीर्षासन से होते हैं। अन्तर केवल इतना है कि शीर्षासन में रक्त प्रवाह पैर के पंजों से ही सीधा विपरीत होता है। इसमें घुटनों **से इसमें** रूकावट होती है। बलवर्धन के लिए यह विशेष लाभकारी है। इस आसन से पद्मासन व शीर्षासन दोनों हो जाते हैं इसलिए इस विचार से दोनों को छोड़कर केवल इसी को करना उचित नहीं। हर एक आसन के अलग अलग गुण व लाभ हैं अतएव अलग अलग ही करना चाहिए। शीर्षासन की तरह इसको भी अधिक समय तक करना हानिकारक है।

बद्ध पद्मासन- ध्यान की दृष्टि से पद्मासन, परन्तु केवल आरोग्य लाभ के लिए यह आसन उत्तम है। इससे पीठ का ठेढ़ापन दूर होकर सीधापन व सरलता आती है। तिल्ली व यकृत् को लाभ होता है। पेट के समस्त विकार, अरूचि, बदहज़मी, कोष्ठबद्धता, पेट का दर्द, आमवात, खट्टी मीठीं डकारें, आँतों, पाडु व मेद-रोग दूर

होते हैं। इस आसन के समय यदि लिंग और गुदा की नसें ऊपर को खींचकर रखी जाये तो उनके रोग दूर होते हैं व स्वप्नदोष बन्द होता है। यदि प्राणायाम के साथ इसे किया जाय तो आरम्भ का क्षय रोग दूर हो जाता है। आसन के समय दाँतों की जड़ों में जीभ की नोंक लगाने से सब बीमारियाँ दूर होती है।

इसका अभ्यास निश्चित रूप से कम से कम छ: मास तक करना चाहिए तभी लाभ हो सकता है। कम से कम आधा घंटा अभ्यास करें। घंटा डेढ़ घंटा करने से नि:सन्देह पूर्ण लाभ हो सकता है। नाभि के पीछे सूर्य चक्र पर इसका प्रभाव पड़ता है और बहुत अधिक शक्ति प्राप्त होती है। पेट को ऊपर नीचे खींचे व ॐ का जप करे तथा कल्पना करे कि वीर्य ओज-शक्ति के रूप में संचित होने के लिये मस्तिष्क की तरफ़ बह रहा है। ऐसा करने से स्वप्नदोष रुक जायेगा।

समय- पहले अर्ध पद्मासन से आरम्भ करना चाहिए फिर धीरे-धीरे पद्मासन, ऊर्ध्व व बद्ध पद्मासन का अभ्यास करना चाहिए। पाँच दस मिनिट से आरम्भ करके धीरे-धीरे समय बढ़ाना चाहिए। पिंडलियों व घुटनों में दर्द होने लगे तो उनको धीरे धीरे मल देने से ठीक हो जाएगा। प्रात: व सायंकाल के समय इसका अभ्यास किया जा सकता है।

(२) सिद्धासन

पद्मासन के बाद सिद्धासन का दूसरा स्थान है। कुछ योगी लोग इसे प्रथम स्थान देते हैं। उनकी राय में ध्यान की दृष्टि से यह आसन सभी आसनों से श्रेष्ठ है। इस आसन के सिद्ध हो जाने से बहुत सी सिद्धियाँ मिलती हैं। इसीलिए प्राचीन सिद्ध लोग इसी आसन का

अभ्यास करते थे। सिद्धों का आसन होने से ही इसका नाम सिद्धासन पड़ा है। मोटी जाँघों वाले भी इसका अभ्यास कर सकते हैं।

विधि

पहले दोनों पैर फैलाकर बैठ जाइए। फिर एक (बाएँ) पैर को मोड़कर उसकी एडी अंडकोष और गुदा के बीच में सीवन पर मज़बूती से जमाइए। तलुआ जाँघ से लगा रहे। अब दूसरे पैर को मोड़कर उसकी एड़ी लिंग के बिल्कुल ऊपर हड्डी पर अच्छी तरह जमा दीजिए। तलुआ दूसरे पैर की जाँघ से सटा रहे और पंजा जाँघ व पिंडली के बीच में दबा रहे। इस बात का बराबर ध्यान रखना चाहिए कि एड़ियाँ लिंग के ठीक ऊपर व नीचे हड्डियों पर मजबूती से जमी रहें। इसके पश्चात् ठोढ़ी को कंठ के नीचे मज़बूती से लगाकर जीभ को तालू में लगा दे व पलकों और आँखों को न हिलाकर दृष्टि भ्रू मध्य में रखना चाहिए। गुदा को सिकोड़कर अर्थात् मूल व उड्डियान बंध लगाकर भी यह आसन की जाती है। हाथों को पद्मासन की तरह रखे, परन्तु कुछ आगे की तरफ़ झुककर दोनों घुटनों पर ज़ोर देकर दोनों हाथों के पंजो को रखना अधिक उपयुक्त होगा। एड़ी और पंजों के बीच की गाँठें एक दूसरे पर रहनी चाहिए। इस आसन से सुषुम्ना नाड़ी जाग्रत होती है व प्राण तत्त्व उर्ध्व गति को प्राप्त होने लगता है।

इस आसन को सरल न समझना चाहिए और न इसके करने में जल्दी ही करनी चाहिए बल्कि बहुत ही सावधानी से करना चाहिए। किसी अनुभवी के तत्वावधान में इसे करना अधिक उपयुक्त होगा। कुछ लोगों के मतानुसार बाएँ पैर की एड़ी गुदा पर रखनी चाहिए। गुदा पर रखने से मूलबंध दृढ़ हो जाता है।

गोरक्ष संहिता अध्याय ११ में बाएँ पैर को योनि स्थान पर ही रखने के लिए लिखा है।

समय

पहले आठ दस मिनिट से आरम्भ करके धीरे धीरे अभ्यास बढ़ाना चाहिए। बढ़ाते-बढ़ाते एक वर्ष में बारह घन्टे तक बैठने का अभ्यास किया जा सकता है। प्रात: और सायंकाल दोनों समय इस आसन का अभ्यास किया जा सकता है।

लाभ

वीर्य रक्षा के लिए तो यह आसन सर्वोत्तम है। इसकें अभ्यास से मूत्रेन्द्रिय की नसें दबते-दबते निर्बल हो जाती हैं अतएव इसे गृहस्थ लोगों को न करके ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और सन्यासियों को ही विशेष रूप से करना चाहिए। इस आसन में लिंग, गुदा, तोंदी और आसपास की नस नाड़ियों को ऊपर खींचने से वीर्य स्थिर होता है। स्वप्नदोष नहीं होता। इसमें ठोड़ी छाती में लगाने से दिमाग़ी ताक़त बढ़ती है। पेट के सब विकारों को दूर करने और ब्रह्मचर्य से अधिक आयु बिताने की इच्छा रखने वाले को यह आसन अवश्य करना चाहिए। इस आसन से कुण्डलिनी व सुषुम्ना जाग्रत होती है। प्राणायाम की क्रिया नियमित हो जाती है व नाड़ियों के मल का शोधन होता है प्राण तत्त्व उर्ध्व गति को प्राप्त होने लगता है। फेफड़े व हृदय बलवान् होते हैं। पाचन क्रिया नियमित हो जाती है। खांसी, श्वास, जुकाम, हृदय रोग, जीर्ण ज्वर, अजीर्ण, अतिसार, पेचिस, शुक्र निर्बलता, बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। इसकी पक्व अवस्था में अपान प्राण में मिल जाएगा। योनि के पीड़न से अग्नि प्रदीप्त होगी। मूलबन्ध, उड्डियान व जालंधर व खेचरी मुद्रा करने से वायु प्राण में मिल जाएगा। इससे ईश्वर चिन्तन में मन लगता है व मोक्ष प्राप्त होता है। इस आसन से किसी प्रकार के अनिष्ट का भय नहीं है।

इस आसन द्वारा बहुत शीघ्र योग-सिद्धि प्राप्त होने का कारण यह है कि लिंग मूल में जीव तथा कुण्डलिनी शक्ति अवस्थित है। इससे वायु का पथ सरल हो जाता है। योगशास्त्र के अनुसार सिद्धासन मुक्ति के दरवाज़ें खोल देता है।

(३) सर्वांगासन

यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण आसन है जिसके अभ्यास से आश्चर्यजनक लाभ होते हैं। इस आसन में शरीर के सभी अङ्गों का व्यायाम हो जाता है इसीलिए इसको सर्वांगासन कहते हैं। कुछ लोग इसे विपरीतकरणी मुद्रा व ऊर्ध्व सर्वांगासन भी कहते हैं।

विधि

एक मोटे कम्बल पर चित्त लेट जाइए ओर शरीर को बिल्कुल ढीला कर लीजिए। दोनों हाथ ज़मीन (आसन) से चिपके रहना चाहिए। घुटने सीधे कड़े करके दोनों पैर मिलाकर धीरे-धीरे ऊपर उठाकर उनको वृक्ष की तरह बिल्कुल सीधे तानिए। दोनों हाथों से कमर को पीछे से सहारा देकर कुहनियों को ज़मीन पर टेक कर थामे रहिये। पीठ का कुछ भाग, कंधे और गर्दन ज़मीन पर लगे रहेंगे। शरीर हिलने न पावे और बिलकुल सीधा रहना चाहिए। समय पूरा होने पर धीरे-धीरे बग़ैर झटके के नीचे लाईए। इसमें सारा भार कंधों व कुहनियों पर पड़ता है। गर्दन पर ज़ोर नहीं पड़ना चाहिए। ठोड़ी छाती पर जालंधर बंध की तरह लगाना चाहिए। गर्दन के नीचे की स्नायु ग्रन्थि पर ध्यान जमाना चाहिए। मूल बंध लगाए रहना चाहिए व जब तक साँस रोकी जा सके रोके और न रोक सकने पर धीरे-धीरे नाक से निकाल दे।

यह आसन प्रातः व सांयकाल दोनों समय की जा सकती है। इसको करने के पश्चात् ही मत्स्यासन करना चाहिए ताकि गर्दन पर यदि ज़ोर पड़ा हो तो ठीक हो जाय।

समय

इस आसन को दो मिनिट से आरम्भ कर क्रमशः आधे घन्टे तक बढ़ाना चाहिए। प्रारम्भ में पूरी आसन तीन-चार दिन में करना चाहिए। एक दम करने से गर्दन आदि में झटका लगने व मोच आ जाने का भय रहता है।

लाभ

इस आसन से पेट के सभी रोग दूर होकर भूख अच्छी तरह लगती है। मिर्गी, वीर्य रक्षा, गठिया, गलित कोढ़, रक्त संचार, गर्दन व मस्तिष्क, गुर्दा आदि के लिए अत्यंत लाभकारी है। शीर्षासन की तरह यह भी लाभकारी है। इस आसन से शरीर में ताज़गी व स्फूर्ति आती है, मेरुदंड स्थित स्नायुओं में रक्त पहुँचता है और वह लचीला रहता है जिससे युवा अवस्था सदा क़ायम रहती है। स्वप्न दोष नहीं होते। नपुंसकता नष्ट हो जाती है। इस आसन से सरल अन्य साधन नहीं है जिससे रक्त-स्नायुविकार तथा मंदाग्नि आदि रोगों को जड़ से अच्छा किया जा सके। यदि आसनों के लिए समय न हो तो इस आसन को नित्य नियम पूर्वक करना चाहिए।

(४) हलासन

इस आसन के समय शरीर की आकृति हल की तरह हो जाती है।

विधि

आसन पर चित लेट जाइए। दोनों हाथ सीधे व हाथों की हथेलियाँ ज़मीन से चिपकी रहें। घुटने कड़े करकें दोनों पैर आपस में सटाकर धीरे-धीरे ऊपर उठाइए व सर के ऊपर से पीछे ले जाकर इतने झुकाइये कि पैर की उँगलियाँ ज़मीन से लग जाएँ। धड़ न झुके और पैर कडे रहें। ठोड़ी छाती से लगी रहे व साँस धीरे-धीरे नाक से लेते रहे।

इसकी दूसरी विधि यह है कि उपरोक्त प्रकार से आसन करने के पश्चात् हाथों को धीरे-धीरे अपनी जगह से हटाकर उनसे पैरों के अँगूठों को पकड़े। यह पहली विधि से अच्छी समझी जाती है समय हो जाने पर पैर धीरे-धीरे पूर्व स्थिति में ले आवे।

लाभ

हठ योग में मेरूदंड की बड़ी महिमा बतलाई गई है, क्योंकि सारा शरीर इसी पर स्थित है। इस आसन से मेरूदंड के स्नायु, पीठ की मांस पेशियाँ, रीढ़ की हड्डियाँ और मेरूदंड के दोनों तरफ जो ज्ञानतन्तु मंडल है वह उत्तेजित हो उठते है। सर्वांगासन के सभी गुण इसमें है।

(५) मत्स्यासन

मत्स्य मछली को कहते हैं। इस आसन को करने वाला जल पर मछली की तरह तैरता रह सकता है इसलिए इस आसन का नाम मत्स्यासन पड़ा है। जल पर तैरते रहने के लिए इस आसन के साथ प्लाविनी प्राणायाम करना पड़ता है।

विधि

आसन पर बैठकर या लेटकर पद्मासन लगाइए। दोनों बाहों को एक दूसरे से मिलाकर गुफनी सी बनाकर उस पर सर रखिए।

दूसरी विधि यह है कि सर को पीछे ले जाकर तालु को आसन से लगाइए और दूसरी तरफ़ नितम्ब (चूतड़) आसन से लगे रहें। इस प्रकार सर और नितम्बों के बीच का भाग पुल की डाट की तरह हो जाएगा, अब हाथों से या तो पैरों के अँगूठें पकड़ लीजिए या जाँघों पर रख दीजिए। घुटने आसन से न उठने पाएँ। पेट और कमर को जितना हो सके उतना ऊपर उठाकर स्थिर रखें।

पहले की अपेक्षा दूसरी विधि बहुत ही अधिक लाभकारी है।

इस आसन के करने के पहले पद्मासन का अभ्यास कर लेना चाहिए। आसन कर लेने के बाद सर को धीरे-धीरे दोनों तरफ़ हाथों के सहारे ढीला करके आसन खोलें।

सर्वांग आसन के बाद इस आसन का अभ्यास करना चाहिए ताकि सर्वांगासन के अभ्यास से जो गर्दन व अन्य अङ्ग कड़े पड़ जाते हैं वह इससे ठीक हो जाते हैं व सर्वांगासन का पूरा लाभ मिलता है।

इस आसन को बड़ी सावधानी से करना चाहिए क्योंकि जल्दी करने से गर्दन में मोच आ जाने का भय रहता है।

लाभ

इस आसन से मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है व दस्त साफ़ होता है। पेट के विकार दूर होते हैं। जल में तैरते-तैरते थक जाने पर इस आसन को लगाने से न तो हाथ पैर चलाने पड़ते हैं और न डूबने

का भय रहता है। दस-बारह मिनट में ही थकावट दूर होकर पहली शक्ति आ जायगी। इससे अजीर्ण व पांडु रोग, बद्धकोष्ठता नष्ट होती है। पुराना मल बाहर निकल जाता है। दमा, राजयक्षमा, पुरानी खाँसी आदि गहरी साँस लेने से अच्छे हो जाते हैं। इस आसन के करने से फेफड़े की जड़ तक प्राण वायु पहुँचता है। श्वास नलिकाएँ विकसित होने से ख़ूब गहरी श्वास आने जाने लगती है जिससे स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

समय

दो-तीन मिनिट से आरम्भ करके धीरे-धीरे पन्द्रह मिनिट तक किया जा सकता है।

(६) पश्चिमोत्तानासन

विधि

आसन पर बैठकर सामने दोनों पैर लम्बें फैलाकर एक दूसरे से सटाकर कड़े रखिए। इसके पश्चात् साँस को निकाल आगे झुक कर दोनों हाथों से दोनों पैरों के अँगूठे पकड़िए। धीरे-धीरे अभ्यास करने से माथा घुटनों में लगने व चेहरा घुटनों के बीच में जाने लगेगा। धड़ को झुकाते समय पेट को अन्दर खींचना चाहिए, कुछ दिन पश्चात् हाथ की कुहनियाँ ज़मीन से लगने लगेंगी। साँस को उस समय तक रोके रहना चाहिए जब तक सीधा न बैठ जायें।

जो लोग मुटाई आदि के कारण इसे न कर सकें उनको पहले अर्ध पश्चिमोत्तानासन करना चाहिए। इसमें एक पैर फैलाकर दोनों हाथों से उस पैर का अँगूठा पकड़कर माथे को घुटने से लगाना चाहिए। एक पैंर के बाद दूसरे पैर का, पश्चात् दोनों पैरों का अभ्यास करना चाहिए।

लाभ

इस आसन से पेट और पैरों के स्नायुओं का ख़ूब खिंचाव होता है और वे फैलते हैं जिससे पेट के विकार, कोष्ठबद्धता नहीं रहती। बढ़ा हुआ पेट पिचक जाता है। लम्बेंगो (पीठ कड़ी पड़ जाने वाला रोग) अर्थात् माँसपेशियों का गठिया दूर हो जाता है। बवासीर, बहुमूत्र मेदारोग, पांडुरोग, ताप, तिल्ली, कृमि, श्वास, खाँसी कमर दर्द व आँतों के रोग दूर होते हैं।

समय

पन्द्रह-बीस सैकिन्ड से आरम्भ करके धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। शारीरिक लाभ के लिए पाँच-सात मिनिट का अभ्यास काफ़ी है।

(७) मयूरासन

संस्कृत में मयूर मोर को कहते हैं। इस आसन को करते समय करने वाले की आकृति मोर की तरह हो जाती है। इस आसन को करने के लिए शरीर में बल चाहिए। जिमनास्टिक् करने वाले इसे सरलता से कर सकते हैं।

विधि

पहले घुटनों के सहारे आसन पर बैठ जाइए फिर दोनों हाथ ज़मीन पर ऐसे रखिए कि पंजे मिले हुए पीछे की ओर रहें। इसके पश्चात् दोनों हाथों को एक दूसरे से मिलाकर मज़बूती से ज़मीन पर टेके रहिए ओर पेट को कुहनियों के पास ले जाइए। अब ज़मीन की तरफ़ झुककर दोनों पैरों को जोड़कर पीछे की तरफ़ अँगूठों के बल रखिए और दोनों हाथों की कुहनियों को पेट के दोनों तरफ़ लगाकर,

छाती और सिर को आगे की तरफ़ दबाते हुए पैंरो को ऊपर उठाने का प्रयत्न कीजिए। जब पैर उठकर कुहनियों के बराबर आ जाए तब सिर और छाती को सीधा कर दीजिए अर्थात सारा शरीर हाथों की कुहनियों पर तराजू की तरह बराबर सीधा तुल जाय। दृष्टि सामने और साँस रोके रहना चाहिए। आसन कर चुकने पर साँस धीरे-धीरे निकालें।

आरम्भ में एक गद्दी सामने रख लेना चाहिए क्योंकि शरीर न सधने पर मुँह के बल गिरने और नाक आदि में चोट आने की सम्भावना रहती है। शरीर न सधने पर बजाय मुँह के, बगल के बल गिरना चाहिए। पहले दोनों पैर एक साथ न फैल सकें, तो एक -एक फैलावे, ज़रा आगे बढ़कर सिर झुकाने पर पैर अपने आप ही उठ जावेंगे तब पैरों को फैलाकर धीरे-धीरे सिर की सीध में ले जाना चाहिए।

लाभ

इस आसन से पेट के बहुत से रोग नष्ट हो जाते हैं। इससे थोडी ही देर में पूरी कसरत हो जाती है। पाचन शक्ति बढ़ती है। बुरे भोजनों का असर नहीं होता बल्कि विष तक पच जाता है और कोई असर नहीं होता। तिल्ली व जिगर ठीक होते हैं। कुंडलिनी जागृत होती है। पेट में वायु उत्पन्न नहीं हो पाती व निकल जाती है। पित्त व कफ़ समान हो जाते हैं। हाथ मज़बूत होते हैं।

समय

पाँच सेकिन्ड से पन्द्रह-बीस सेकिन्ड तक इसका अभ्यास क्रमशः बढ़ाना चाहिए। बाक़ी अभ्यास व शरीर बलिष्ठ होने पर दो तीन मिनिट तक की जा सकती है।

❖ ❖ ❖

(८) मत्स्येन्द्रासन

मत्स्येन्द्र ऋषि इस आसन को किया करते थे इसलिये उनके नाम से इस आसन का नाम पड़ा। योगी मत्स्येन्द्र शिवजी के शिष्य थे। कहा जाता है कि एक बार शिवजी एक द्वीप के किनारे पार्वती जी को योग आसनों का रहस्य समझा रहे थे। वहाँ एक मछली ने शिवजी का उपदेश सुन लिया। शिवजी को यह बात मालूम होने पर उन्होंने मछली को जल के छींटे मारे जिससे वह मछली योगी हो गई। इसी कारण उन योगी का नाम मत्स्येन्द्र पड़ा।

पश्चिमोत्तानासन और हलासन से रीढ़ आगे व धनुर, भुजंग और शल्भासन में पीछे मुड़ती है। रीढ़ को केवल आगे व पीछे मोड़ना ही पर्याप्त नहीं है और न इससे पूरा लाभ ही होता है। उसको दोनों बगलों की तरफ़ मोड़ना भी आवश्यक है। ताकि मेरुदंड लचीला हो सकता है। मत्स्येन्द्र आसन से इस कमी की पूर्ति हो जाती है।

विधि

पहले आसन पर पैर फैलाकर सीधे बैठ जाइए फिर बाएँ पैर का पंजा उठाकर दाहिनी जाँघ की जड़ में रखिए। पंजे का तलुआ पेट से मूत्रेन्द्रिय के ऊपर या पेट से मिलाकर रखें। अब दाहिने पैर को बाएँ घुटने पर इस तरह रखिए कि पैर खड़ा रहे और उसका पंजा घुटने के सहारे बाहर की ओर ज़मीन पर जमा रहे। इसके बाद बाएँ हाथ को दाहिने पैर के घुटने के बाहर से ले जाकर उसका अँगूठा मज़बूती से पकड़े। दाहिना पैर दृढ़ रहे। अब दाहिने हाथ को पीठ की तरफ़ घुमाकर ले जाए और बायीं एड़ी को पकड़ें जिससे मुँह और शरीर दाहिनी बगल पीठ की तरफ़ घूम जाते हैं। रीढ़ को मरोड़ें और नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाओं। छाती और गर्दन आगे की तरफ़

नहीं झुकना चाहिए। सीधें तने रहकर दूसरे अङ्ग पीछे की तरफ़ जितने घुमाए जा सकें, उतना घुमाए तथा साँस धीरे-धीरे लें।

यह आसन बारी-बारी से दाहिने बाएँ करना चाहिए। पहले अर्ध मत्स्येन्द्रासन करने से इसे करने में सरलता होगी। आरम्भ में शरीर साधने में कठिनाई हो तो हाथ पीठ की तरफ़ घुमाने की बजाय हथेलियों को ज़मीन पर रख सकते हो। इससे सहारा मिलेगा व सरलता होगी।

लाभ

इस आसन से मेरुदंड का पूरा व्यायाम हो जाता है। वह पूरी तरह घूम जाता है। मस्तिष्क से प्राण नाड़ी निकलती है वह गले के पीछे से जाकर मेरुदंड से मिलती है। मेरुदंड इसी तरह लगभग 32 मणियों को मिलाकर साइकिल की चेन की तरह एक दूसरे में फँसती चली जाती है। इसलिए हम मेरुदंड को सब तरफ़ घुमा लेते हैं। इस आसन से पूरा मेरुदंड शुद्ध और कार्यशील रहता है, जिसका प्रभाव यह होता है कि मस्तिष्क तेज़ और चैतन्य रहता है। इसके सिवाय पेट, पीठ, हाथ-पैर आदि सब शरीर के स्नायु खिंचने से रक्त शुद्ध और सब निर्मल हो जाते हैं। इस आसन से जठराग्नि प्रबल, पेट व आँतों के अङ्ग रोग, आमवात, कमर दर्द, कृमिरोग आदि नष्ट हो जाते है। जोड़ गतिशील हो जाते हैं। गठिया दूर हो जाता है। मूत्रेन्द्रिय पर एड़ी के दवाब से रक्त का दौरा पीछे की तरफ़ होने लगता है जिससे पीठ की सभी व प्राणवाहक नाड़ियाँ पुष्ट होती है। कुंडलिनी जागृत होती है।

समय

दो तीन सेकिन्ड से आरम्भ करके क्रमशः बढ़ाकर तीन मिनिट तक बढ़ाया जा सकता है।

(९) अर्द्ध मत्स्येन्द्रासन

प्रारम्भ में पूर्ण मत्स्येन्द्रासन के करने में कठिनता होगी इसलिए पहले इस आसन को करना चाहिए।

विधि

आसन पर सीधे बैठकर बाएँ पैर की एड़ी को गुदा और मूत्रेन्द्रिय के बीच में सीवन पर रखिए। एड़ी ऐसी मज़बूती से रखिए कि वहाँ से हट न सके। इसके पश्चात् दाहिने पैर की पिंडली को बाएँ पैर की जाँघ पर इस तरह रखे कि दाहिना पैर कमर के पास ज़मीन से छूता रहे। फिर दाहिने पैर के खड़े घुटने पर बाएँ हाथ की कुँहनी सीधी रखे। अब घुटने को पीठ की तरफ थोड़ा सा घुमावें जिससे वह कांख के पिछले भाग को स्पर्श करे। बाएँ घुटने को बाएँ हाथ से पकड़े और बाएँ कंधे के जोड़ पर ज़ोर देकर रीढ़ को धीरे-धीरे घुमावे व दाहिनी ओर अच्छी तरह घुमावे। अपना मुँह भी दाहिनी तरफ़ जहाँ तक हो सके घुमावे। इसे दाहिने कंधे के सीध में लावे। दाहिने हाथ को पीठ के पीछे जाकर उससे बायीं जाँघ को पकडे। इसी प्रकार दाहिनी ओर भी करे। इसमें आगे को झुकना नहीं चाहिए।

लाभ

इस आसन से जठराग्नि व भूख बढ़ती है। भयंकर बीमारियाँ दूर होती हैं। कुंडलिनी को जागृत करती है। तालु मूल में चन्द्र का निवास है, उससे जो अमृत स्रावित होता है वह जठराग्नि में मिलने से नष्ट हो जाता है, परन्तु इस आसन से वह रुकता है। पूर्ण मत्स्येन्द्रासन के लगभग सभी लाभ इसमें हैं।

समय

दो-तीन सेकिण्ड से आरम्भ करके क्रमशः दस सेकिण्ड तक

इसका अभ्यास बढ़ाइए।

(१०) शल्भासन

इस आसन में शरीर का आकार शल्भ (पतिंगे, टिड्डे) जैसा हो जाता है इसलिए इसे शल्भासन कहते हैं।

(१) विधि

आसन पर पेट के बल लेट जाइए। दोनों हाथों को दोनों तरफ़ आसन पर पीछे की तरफ़ सीधे व हथेली उल्टी रखिए। अब हाथों का सहारा लेते हुए पैरों को जाँघ तक ऊपर उठाइए परन्तु घुटने न मुड़ने पावें बल्कि सीधे तने हुए रहें। इसके पश्चात् सर, गर्दन, छाती और पेट को भी ऊपर उठाइए। इस आसन में शरीर कुछ हाथों और कुछ पेट के चारों और के चार-पाँच अँगुल हिस्से के सहारे साधना पड़ता है।

(२) विधि

हाथों को पंजो के बल सीने की बगल में जमाकर शेष क्रिया अर्थात् आगे व पीछे का हिस्सा ऊपर लिखी विधि के अनुसार ही उठाया जा सकता है।

दोनों प्रकार के अभ्यासों में धीरे-धीरे साँस खींचे (पूरक करे) और आसन होने तक उसे रोके रहे, पश्चात् धीरे-धीरे छोड़े, सारे बदन को कड़ा रखे। पैरों को ज़मीन से एक हाथ ऊपर उठावे। जाँघ, पैर व अँगूठा एक सीध में रहें। जाँघ और पेट का निचला हिस्सा भी कुछ उठा रहे। आसन समाप्त करते समय धीरे-धीरे फिर ज्यों का त्यों हो जाय। एक समय में तीन बार से धीरे-धीरे बढ़ाकर सात बार तक की

जा सकती है।

समय

पाँच-सात सेकिण्ड से आरम्भ करके एक मिनिट तक की जा सकती है।

लाभ

इस आसन से जाँघ, छाती, पैर, पेट के स्नायु तनते हैं व उक्त अङ्गों के सारे विकार दूर होते हैं। पश्चिमोत्तानासन, हलासन, सर्वांगासन जो कि रीढ़ को आगे की तरफ़ मोड़ते हैं उनके विपरीत यह पीछे की और मोड़ता है। मयूरासन की तरह यह पेट पर भी दबाव डालता है। यह आसन मलावरोध दूर करता है व गुदा को पुष्ट करता है।

(११) भुजंग या सर्पासन

सर और छाती ऊँची उठाने से इस आसन की आकृति फन उठाए हुये सर्प की तरह हो जाती है इसलिए इसे भुजंग या सर्पासन कहते हैं।

विधि

आसन पर पेट के बल लेट जाइए। नीचे के आधे धड़ को आसन से बिलकुल चिपकाए रखिए। हथेलियों को ठीक कंधों और कुहनियों के नीचे मज़बूती से जमा कर क्रम से सिर, गर्दन, छाती और पेट को धीरे-धीरे ज़मीन से उठाते हुए जहाँ तक ताना जा सके ऊपर तानिए। दृष्टि सामने रखिए, शरीर साँप के फन की तरह तना-खड़ा हो व नाभि के पास तक का भाग उठा रहे। रीढ़ पीछे की तरफ़ मुड़ी रहे। यह इन चार प्रकारों से की जाती है। आसन की पहली अवस्था में

शरीर के अङ्गों को ऊपर उठाते हुए साँस भीतर रोके। दूसरी आसन की अवस्था में हाथ ज़मीन से उठाकर पीठ पर लगा ले और साँस रोके। तीसरी अवस्था में दोनों घुटने भी ऊपर उठा ले और साँस रोके। चौथी अवस्था में केवल तोंदी के पास पेट के सहारे रहकर हाथ और घुटने दोनों ऊपर उठाले और साँस रोके। चारों क्रियाएँ कर चुकने पर साँस धीरे-धीरे छोड़े। इस प्रकार चारों क्रियाएँ करने में पाँच छः मिनिट लगेंगे।

लाभ

दो-तीन महीने नियम पूर्वक प्राणायाम के साथ इस आसन के करने से स्वप्नदोष कदापि नहीं होगा। प्राण-शक्ति बढ़ेगी। प्रारम्भिक क्षय-रोग नष्ट हो जाएगा और मन्दाग्नि व कोष्ठबद्धता जाती रहेगी। जमा हुआ मल निकल जाता है। पीठ व कमर का दर्द व पीठ की पेशियों का गठिया दूर हो जाता है। अग्नि को बढ़ाता व कुण्डलिनी को जागृत करता है।

यह आसन स्त्रियों के लिए भी अत्यन्त लाभकारी है। उनकी जननेन्द्रिय व गर्भाशय पुष्ट करने के लिए बहुत ही उपयुक्त है। इससे मासिक धर्म का न होना, मासिक धर्म के समय कष्ट होना व प्रदर आदि व गर्भाशय तथा जननेन्द्रिय सम्बन्धी अनेक रोग दूर हो जाते हैं। उन अङ्गों में रक्त का संचालन नियमित रूप से होने लगता है। इस सम्बन्ध में यह क्रिया उत्तम से उत्तम औषधियों से भी अधिक लाभदायक है। इससे सन्तानोत्पति नियमित रूप से होती रहेगी व प्रसव पीड़ा भी अधिक न होगी। गर्भावस्था में इसे न करना चाहिए।

समय

यह आसन कठिन नहीं है अस्तु धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाकर इसे दो-तीन मिनिट क्रमशः पन्द्रह मिनिट तक की जा सकती है।

(१२) धनुरासन

इस आसन में पीठ पीछे की तरफ़ मुड़ने व धनुष की प्रत्यंचा की तरह दोनों हाथों से पीछे की तरफ़ दोनों पैर पकड़ने से शरीर का आकार धनुष की तरह हो जाता है इसलिए इसे धनुरासन कहते हैं। यह भुजंगासन का सहायक व पूरक आसन है। भुजंग, शल्भ व धनुरासन लगभग एक सी ही हैं। यह आसन हलासन व पश्चिमोत्तानासन की पूरक है जो रीढ़ को आगे मोड़ती है।

विधि

आसन पर छाती के बल लेट जाइए। दोनों हाथ पीछे की तरफ़ रखिए। दोनों पैरों को पीछे की तरफ़ मोड़कर एड़ी की गाँठों की जगह दोनों हाथों से पकड़िए। धीरे-धीरे छाती और सर को ऊपर की तरफ तानिए। आगे व पीछे शरीर को धीरे-धीरे इतना उठाइए कि केवल पेट व पेडू ज़मीन पर लगी रहे। शेष भाग ऊपर खिंचकर धनुष की तरह हो जाय। दृष्टि सामने, सीना उठा हुआ रहे। साँस को रोक धीरे-धीरे छोड़िए। इसे दो, चार, छः जितनी बार आसानी से हो सके, करें। आसन के समय आगे -पीछे व दाएँ-बाएँ हिलने से पेट की मालिश हो जाती है।

लाभ

इस आसन से सीना चौड़ा होता है, पीठ का टेढ़ापन व पेट के रोग नष्ट होते हैं। पैरों व घुटनों की गठिया व दर्द दूर होता है। भूख बढ़ती है। आँतों के विकार नष्ट होते हैं व शरीर में स्फूर्ति आती है।

समय

पाँच मिनिट से पन्द्रह-बीस मिनिट तक धीरे-धीरे इसका अभ्यास बढ़ाना चाहिए।

❖ ❖ ❖

(१३) आकर्षक धनुरासन

यह आसन भी धनुरासन ही की तरह है। इसमें केवल अंतर यह है कि यह बैठकर की जाती है।

विधि

आसन पर बैठकर दोनों पैर सामने सीधे फैला दीजिए। दाहिने हाथ से बाएँ पैर के अँगूठे व बाएँ हाथ से दाहिने पैर के अँगूठे को पकड़िए। इसके पश्चात् दाहिने पैर को भीतर की तरफ़ मोड़कर ठुड्डी व कान तक धनुष की तरह लाइए और बाएँ पैर को ज्यों का त्यों अँगूठा पकड़े हुए रहने दीजिए। घुटना, काँख के व जाँघ, पेट के नजदीक आ जाएगी, इसी प्रकार दूसरे पैर से भी करे, एकदम ही कान आदि छूने का प्रयत्न न करके धीरे-धीरे अभ्यास करना चाहिए।

लाभ

इस आसन से हाथ-पैरों के स्नायु खिंचने के कारण निर्मल हो जाते हैं व घुटनों, जाँघ आदि के दोष दूर होकर मज़बूत हो जाते हैं। पहले प्रकार से यह अधिक लाभदायक है।

समय

एक मिनिट से क्रमशः आठ-दस मिनिट तक इसका अभ्यास किया जा सकता है।

(१४) गोमुखासन

इस आसन के समय गाय के मुँह की तरह आकार बन जाता है इसलिये इसे गोमुखासन कहते हैं।

विधि

यह आसन दो प्रकार से किया जाता है।

(१) बाएँ पाँव का घुटना दाहिने पैर पर रखकर दाहिने पैर की एड़ी की गाँठ बाएँ चूतड़ के नीचे गुदा के बाएँ भाग की तरफ़ बैंठते हैं। धीरे-धीरे दाहिनी एड़ी को दाहिनी चूतड़ से सटाना चाहिए। शेष क्रिया नीचे लिखे अनुसार ही की जाती है।

(२) आसन पर सीधे बैठकर पैरों को घुटनों तक पीछे मोड़े और उनके बल बैठकर बाएँ पैर की एड़ी को गुदा के बाएँ भाग के नीचे और इसी तरह दाहिने पैर को दाहिनी ओर रखे। दोनों घुटने आपस में मिले रहें। शरीर का भार एड़ियों पर रहे। अब बायाँ हाथ उठाकर पीठ की तरफ़ मोड़े और दाहिना हाथ पीठ के पीछे ले जाकर कोहनी के ऊपर को उठावे व बाएँ हाथ की उँगलियों को दाहिनी उँगलियों से पकड़े। शरीर तना हुआ रहे। हाथ बदल-बदल कर अभ्यास करें। उँगलियाँ पकड़ने के लिये जल्दी न करे। धीरे-धीरे अभ्यास करने पर कुछ दिन में उँगलियाँ पकड़ में आने लगेंगी।

लाभ

इस आसन में छाती, हाथ और पैरों के स्नायु तनने से वह मज़बूत होते हैं। ब्रह्मचर्य के लिये लाभप्रद है। अपान वायु को नीचे नहीं जाने देता। मूलबंध का अभ्यास हो जाने से प्राणायाम में सहायक होता है। टाँगों और जाँघों में खून की अधिकता व जमाव मालूम हो तो आसन समाप्त करके उनको हाथ से मल दें।

(१५) वज्रासन

इस आसन के करने से शरीर वज्र के समान मज़बूत हो जाता है इसलिये इसका नाम वज्रासन पड़ा।

विधि

यह आसन मुसलमान जिस तरह नमाज पढ़ने बैठते हैं उससे बिल्कुल मिलता जुलता है। आसन के ऊपर दोनों पिंडलियों को पीछे की तरफ़ मोड़कर इस तरह बैठिए कि चूतड़ पैरों पर रहे, पैरों के तलुए खुले रहें व घुटने आपस में जुड़े रहें। शरीर और गर्दन सीधी व नज़र सामने रहे। दोनों हाथ घुटनों पर रखे रहे। पिंडलियों का जितना भाग ज़मीन से छूता रहेगा उतना ही लाभ होगा, शरीर का सारा बोझ घुटनों और टखनों पर रहे। आरम्भ में पैरों में दर्द मालूम होगा परन्तु मल देने से व कुछ दिन के अभ्यास से ठीक हो जाएगा। योगी प्राय: साधारणतया भी इसी आसन से बैठे रहते हैं। कुछ लोग एड़ियाँ बिल्कुल अलग व गुदा और चूतड़ दोनों एड़ियों के बीच में तथा पैर जाँघों के बगल में रखते हैं।

लाभ

इस आसन से नाभि पर जहाँ से सब नाड़ियाँ निकलती है बहुत ही लाभप्रद प्रभाव पड़ता है। वायु गोले की शिकायत दूर होती है। भोजन के पश्चात् आध घन्टे तक इस आसन से बैठने से भोजन ख़ूब अच्छी तरह पचता है। पैर व जाँघों के स्नायु तनने से रक्त का संचालन अच्छी तरह होता है व वह सुडौल बन जाती है। आमाशय ख़ूब काम करता है।

समय

एक मिनिट से आरम्भ करके आधे घण्टे तक बढ़ाई जा सकती है। यह आसन सरल है अतएव विशेष तौर से अभ्यास करने के सिवाय भी इस आसन से बराबर बैठा जा सकता है।

(१६) पाद हस्तासन

इस आसन में खड़े होकर हाथों से पैर पकड़े जाते हैं इसलिए इसे पाद हस्तासन कहते हैं। इसे खड़े होकर पश्चिमोत्तानासन भी कह सकते हैं।

विधि

यह आसन पश्चिमोत्तानासन की तरह खड़े होकर किया जाता है। पहले सीधे खड़े हो जाइए और हाथों को ऊपर की तरफ़ खडे करके धीरे-धीरे ऊपर के धड़ सहित नीचे झुकाइए। दोनों पैर सटे व कड़े रखिए। पैर के अँगूठों को हाथ से पकड़िए। झुकते समय सांस धीरे-धीरे बाहर निकालिए व पेट को पीछे खींचिए। माथे को घुटनों के बीच में लगाएँ। मुँह घुटनों की दराज में घुसा रहे। पेट की पेशियों व गुदा को सिकोड़े रहें। अँगूठे पकड़ने में कठिनाई हो तो घुटनों को जरा झुकाकर अँगूठा पकड़ लेने पर फिर सीधे कर दीजिए। आरम्भ में विशेषकर मोटे आदमियों को कठिनाई होती है परन्तु कुछ दिन में अभ्यास हो जाता है। पहले अँगूठे पकड़ने के पश्चात् सिर घुटनों में लगाने का अभ्यास करें।

लाभ

इस आसन से पेट की चर्बी व तोंद छँट जाती है अर्थात् वादीपन दूर हो जाती है। नमक के साथ कडुये तेल की मालिश करने से पैर कुछ लम्बे हो जावेंगे। अपान वायु को नीचे जाने में सहायता मिलती है। पश्चिमोत्तानासन के सब लाभ इससे भी होते हैं।

समय

एक मिनिट से आरम्भ करके दस मिनिट तक करना पर्याप्त होगा।

(१७) चक्रासन

इस आसन में शरीर का आकार चक्र की तरह हो जाता है इसलिए इसका नाम चक्रासन पड़ा।

विधि

बचपन में यह आसन बड़ी सरलता से हो जाता है। बड़े हो जाने पर मेरुदंड के कड़े हो जाने से कठिनाई पड़ती है।

आसन पर ऊपर की तरफ हाथ उठाकर सीधे खड़े हो जावें और हाथ व ऊपर का धड़ धीरे-धीरे पीछे झुकावें। जब हाथ चूतडों के पास पहुँच जावें तब पैरों को घुटनों के पास धीरे-धीरे झुकाने से पीछे अधिक झुकने व हाथों से ज़मीन छूने में सरलता होगी। जल्दी करके ज्यादा झुकने की अपेक्षा धीरे-धीरे थोड़ा झुक कर अभ्यास करिये अन्यथा गिरने व नुकसान पहुँचने का भय है। प्रारम्भ में यह दीवाल के सहारे भी की जा सकती है।

इसकी दूसरी विधि यह है कि आसन पर चित्त लेट जाइए। दोनों हथेलियाँ सिर के बगल में और दोनों पैर जहाँ तक हो सके पीछे की तरफ़ जमाकर शरीर को ऊपर की तरफ़ उठाकर तानिये व महराव की तरह बनाइए इसमें गिरने का डर नहीं रहता। पश्चात् धीरे-धीरे हाथों

और पैरों को एक दूसरों के पास लगाने का प्रयत्न कीजिए। निगाह सामने रहे। कुछ दिन में एड़ियों को हाथ से पकड़ने का अभ्यास हो जायेगा।

अभ्यास करने पर ज़मीन पर केवल हाथ टेककर शरीर को पीछे की तरफ़ उछालकर यह आसन की जा सकती है और उसी प्रकार शरीर को दूसरी तरफ़ उछालकर पूर्वावस्था में लाया जाता है। स्कूल के विद्यार्थी व नट लोग इसे बड़ी आसानी व सफ़ाई से करते हैं।

लाभ

पेट और कमर के सब अङ्गों को इस आसन से पूरा लाभ पहुँचता है। कमर टेढ़ी नहीं होती। शरीर फुर्तीला होता है। सर्वांग आसन के बाद अगर बदन में दर्द मालूम हो तो इसे किया जा सकता है। धनुर, शल्भ व भुजंगासन के सब लाभ इससे प्राप्त होते हैं। सर्वांग आसन के विपरीत आसन का काम देती है।

समय

एक मिनिट से आरम्भ करके इसका आठ-दस मिनिट तक अभ्यास बढ़ाया जा सकता है।

(१८) गरुड़ासन

इस आसन के समय शरीर का आकार गरुड़ की तरह हो जाता है इसलिए इसे गरुड़ासन कहते हैं।

विधि

आसन पर सीधे खड़े हो जाइए और दाहिने पैर में बायाँ पैर बेल की तरह ऐसे लपेटिए जिसमें बाएँ पैर का घुटना दाहिने पैर के घुटने

पर रहे व इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि बाएँ पैर का पंजा दाहिने पैर के पंजे से छू जाए। लपेट में यदि दाहिने पैर का घुटना कुछ मुड़ जाय तो कोई हानि नहीं। शेष धड़ को बिल्कुल सीधा रखिए और दोनों हाथों को मुँह के सामने लाकर पैरों की तरह ही एक दूसरे में लपेटिए और दोनों हथेलियों को मिलाकर गरुड़ की चोंच की शक्ल बनाइए। बारी-बारी से हाथों व पैरों को बदलते रहे। इसके पश्चात् झुककर लिपटे हुए पैर के अँगूठे से ज़मीन छूने का प्रयत्न करे। इससे आसन का पूरा लाभ मिलेगा। झुकते समय कुछ सहारा लिया जा सकता है। ऐसा करते वक़्त दोनों पैरों को झुकाना पड़ेगा। इस आसन के समय वस्ति की जा सकती है।

लाभ

इस आसन से हाथ पैर मज़बूत व सुडौल होते हैं तथा उनकी नाड़ियाँ और हड्डियाँ दृढ़ होती हैं। हाथ और पैर लम्बे होते हैं। पोतों का बढ़ना अच्छा होता है।

समय

यह आसन कुछ कठिन है अतएव थोड़े समय से आरम्भ करके क्रमशः पाँच-दस मिनिट तक अभ्यास बढ़ाना चाहिए।

(१९) जानुशिरासन

इस आसन में सिर जानु में लगाया जाता है इसलिए इसको जानुशिरासन कहते हैं।

विधि

आसन पर बैठकर पैरों को सामने लम्बा फैला दीजिए फिर बाएँ पैर को मोड़कर पैर का तलुआ जाँघ की जड़ में चिपका दीजिए।

एड़ी तोंदी के सामने रहे। अब फैले हुए पैर के अँगूठे को दोनों हाथों से पकड़कर उसी के घुटने पर सिर रखिए। कुछ देर पश्चात् बायाँ पैर फैलाकर दाहिने पैर से भी वैसा ही कीजिए।

दूसरी विधि के अनुसार मोड़े हुए पैर की एड़ी गुदा जननेन्द्रिय के बीच में सीवन पद दबाकर लगाना चाहिए, शेष क्रिया पूर्ववत् ही होगी।

आसन करते समय साँस बाहर फेंके व पेट को भीतर करे, सिर को धीरे-धीरे झुकाकर माथे को सीधे पैर के घुटने में लगाए। यथा शक्ति करने के बाद कुछ देर ठहरकर फिर दूसरी तरफ़ करे अथवा पैर बदलते रहे। आसन के समय जितनी देर हो सके साँस रोके व गुदा को ऊपर खींचे रहे। मन में भावना करे कि ओजस शक्ति के रूप में वीर्य मस्तिष्क की तरफ़ जा रहा है। जल्दी ही सिर घुटने में लगाने का प्रयत्न न करे। धीरे-धीरे अभ्यास करने से कुछ ही दिन में सिर लगने लगेगा। एक ही समय में शक्ति के अनुसार चार-छः दफ़ा करे।

लाभ

इस आसन से आँतों के समस्त रोग अच्छे होते हैं। पेट के सब विकार दूर होकर पाचन शक्ति बढ़ती है व भूख ख़ूब लगती है। ब्रह्मचर्य की रक्षा होती है। वीर्य स्थित रहता है। पश्चिमोत्तानासन के सभी लाभ इसमें हैं। जीर्ण ज्वर, खाँसी, पांडुरोग, कमर दर्द, सिर का भारीपन, अरुचि,आँखों की जलन व मूत्रेन्द्रिय के दोष दूर होते हैं।

समय

पाँच सैकिण्ड से आरम्भ करके क्रमशः धीरे-धीरे समय बढ़ाकर आधे घंटे तक किया जा सकता है। दो चार मिनट में ज़्यादा लाभ नहीं हो सकता ।

(२०) गर्भासन

इस आसन में शरीर का आकार गर्भ के बच्चे की तरह हो जाता है इसलिए इसे गर्भासन कहते हैं। इसे उत्तान कूर्मासन भी कहते हैं।

विधि

आसन पर बैठकर पद्मासन लगाने के पश्चात् जैसे कि कुक्कुटासन में बतलाया है दोनों हाथों को जाँघों और पिंडलियों की संधि में इतना डालिए कि वे कुहनियों तक बाहर निकल आवें। फिर शरीर का सारा भार केवल नितम्बों पर रखकर दोनों कानों को दोनों हाथों से पकड़िए। अभ्यास करने पर कुछ दिन बाद हाथों को और ऊपर बढ़ाकर कानों के बजाय गले के पीछे उँगलियों को एक दूसरे में कैंची बनाकर गले में हाथों की माला सी पहननी चाहिए।

कान व गर्दन पकड़ने की क्रिया सावधानी से करे क्योंकि शरीर के लुढ़कने की सम्भावना रहती है और हाथों का सहारा नहीं लिया जा सकता। कुछ दिन के अभ्यास से शरीर नितम्बों पर सधने लगता है।

अभ्यास के लिए प्रारम्भ में पद्मासन में न बैठकर पहले हाथों को जाँघों के पीछे से डालकर कान पकड़ने का अभ्यास करे। इस प्रकार पैर नीचे रहने से गिरने का भय न रहेगा। इस तरह ऊपर की विधि के अनुसार अभ्यास करने में कुछ दिन में सरलता हो जायगी।

लाभ

इस आसन से पहले प्रकार में हाथ पाँवों व दूसरे में गले के स्नायुओं पर ज़ोर पड़ने से वह मज़बूत होते हैं। शौच साफ़ होने से पेट

साफ़ रहता है आँखों के अनेक रोग दूर होते हैं।

समय

कुछ सेकिण्डों से आरम्भ करके दस मिनिट तक यह आसन दोनों प्रकार से किया जा सकता है।

(२१) कुक्कुटासन

इस आसन के करते समय शरीर का आकार कुक्कुट (मुर्गे) की तरह हो जाता है इसलिए इसका नाम कुक्कुटासन पड़ा।

विधि

पद्मासन लगाकर आसन पर बैठ जाइए। पैरों को यथाशक्ति कमर की तरफ़ खींचे रहिए। पश्चात् दोनों जाँघों और पिंडलियों के बीच में दोनों हाथ डालिए। पहले दाहिना और फिर बायाँ हाथ डालिए फिर दोनों हाथों के पंजो को सामने बराबरी में जमा दीजिए। उँगलियाँ आगे की तरफ़ रहें। अब शरीर को धीरे-धीरे उठाते हुए पंजों के बल तौलिये। हाथ कुछ मुड़ जायेंगे व शरीर भी कुछ झुक जायगा। इस प्रकार बिल्कुल हाथों के आधार पर स्थिर होकर पीठ को जितना हो सके सीधी कर दीजिए। पद्मासन ढीली रखने से हाथ डालने में सुविधा होगी।

आरम्भ में जिनका शरीर स्थूल हो वह उकडूँ बैठकर दोनों हाथ सामने आसन पर बराबरी पर जमा दें। हाथ घुटनों के भीतर रहें। इसके पश्चात् छाती आगे झुकाकर शरीर का बोझ हाथों पर रखे और एक-एक करके दोनों पैर ज़मीन से उठावें।

लाभ

पद्मासन के सब लाभों के सिवाय इस आसन से हाथ विशेष रूप से मज़बूत होते हैं। गर्दन व छाती दृढ़ तथा चौड़ी होती है। हाथ लम्बे होते हैं। उँगलियों में कभी लर्जे(कंपने) का रोग नहीं होगा।

समय

इस आसन की दोनों विधि कठिन है इसलिए धीरे-धीरे करना चाहिए। जब शरीर सधने लगे तो आधे मिनिट से आठ-दस मिनिट तक की जा सकती है।

(२२) कंद पीड़नासन

इस आसन में कंद अर्थात् शक्ति का वह स्थान जहाँ से सब नाड़ियाँ निकलती है और जो कि जननेन्द्रिय व गुदा के बीच में होती है उन पर दबाव पड़ने के कारण इसे कंद पीड़नासन कहते हैं।

(१) विधि

आसन पर पैर फैलाकर बैठ जाइए और दोनों पैरों को मोड़ कर उनके पंजे आपस मे मिलाकर व दोनों हाथों से उनको पकड़ कर मूत्रेन्द्रिय के आगे इस तरह लाकर रखिए कि एड़ियाँ आगे रहें और मिले हुए अँगूठे नीचे ज़मीन पर। इसके पश्चात् अँगूठों को हाथ से आहिस्ता-आहिस्ता इस तरह खींचिए कि एड़ियाँ ज़मीन में लग जाएँ, दोनों घुटने दोनों ओर खिंचे रहें और पैर उलट कर उन पर बैठ जाइए। हाथ घुटनों पर रहें व बदन तना रहे। अर्थात् पैरों को धीरे-धीरे मरोड़कर एड़ियों को मूत्रेन्द्रिय तथा गुदा के मध्य में व अँगूठों को पीछे

की ओर गुदा से लगावें। इस प्रकार सारा शरीर दोनों एड़ियों और पैरों के किनारों पर ठहर जायगा।

(२) विधि

पैर फैलाकर बैठनें के पश्चात् एक पैर को हाथ से घुमाकर धीरे-धीरे पेट के ऊपर उठा ले जाए, इसी तरह दूसरे पैर का पंजा भी उठा ले जाए और दोनों के पंजे आपस में मिला दें। पैरों के तलवे अगल-बगल बाहर की तरफ़ निकले रहें, शरीर तना व घुटने ज़मीन पर जमे और जुड़े रहें ।

यह आसन मोटी जाँघ और पैर वालों के लिए ही नहीं बल्कि दूसरों के लिए भी कठिन है क्योंकि इसमें पैरों को विपरीत घुमाना पड़ता है। इसलिए इसे बहुत ही सावधानी से करना चाहिए। पहले कितने ही दिनों तक केवल पैरों के घुमाने का ही अभ्यास करना चाहिए। जब पैर बग़ैर कष्ट के घुमने लगें तब उनकी एड़ियाँ और पंजे उलट कर पेट तक ले जाने या नीचे दबाने का प्रयत्न करना चाहिए।

लाभ

इस आसन में कंद के स्नायुओं पर पूरा दबाव पड़ने से कुंडलिनी शक्ति जागृत होती है जो कि योगसाधन के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है।

समय

यह आसन बहुत ही कठिन है लगभग दो तीन महीने में पूर्ण रूप से हो सकेगा। इसका अभ्यास एक मिनिट से पाँच मिनिट तक किया जाय।

(२३) शीर्षासन

यह आसन सिर के बल किया जाता है इसलिए इसे शीर्षासन कहते हैं। प्राचीन ग्रन्थों से जिस विपरीतकर्णी मुद्रा को बहुत महत्त्व दिया गया है उसकी क्रियाओं से यह निश्चय होता है कि यह आसन ही विपरीतकर्णी है व इसे ही कपालासन भी कहते हैं।

विधि

इस आसन के करते समय आसन बहुत ही गुदगुदा होना चाहिए। यदि कोई गद्दी सम्भव न हो तो कम्बल के चौकोर आठ पर्त करके व उस पर और कोई कपड़ा बिछाकर या गेंडुरी बनाकर यह आसन करे ताकि मस्तिष्क पर आसन कड़े होने से हानिकारक प्रभाव न पड़ सके। इस आसन के समय तो विशेषकर लंगोट के सिवाय कोई कपड़ा न पहने बल्कि वह भी ढीला रखे।

आरम्भ में घुटने आसन पर टेक कर बैठ जाइए फिर दोनों हाथों की उँगलियाँ एक दूसरे में फँसाकर दोनों हाथ कुहनियों तक आसन पर घुटनों के सामने जमाकर रखिए अब अपना सिर दोनों फँसी हुई हथेलियों पर रखकर दोनों पैरों को धीरे धीरे ऊपर उठाने का प्रयत्न करिए। हाथ केवल सिर को इधर-उधर से सहारा देकर शरीर को संभालने के लिए रखे जाते हैं। शरीर का भार इन पर न रहकर सिर पर ही रहना चाहिए। जब पैर कमर तक पहुँच जावें तब पैरों को घुटने से पीछे की तरफ़ मोड़े रहिए। इस तरह जब शरीर सध जाय तब फिर पैरों को ऊपर धीरे-धीरे सीधे फैला दीजिए।

जब शरीर बिलकुल सीधा हो जाय तब आसन पूर्ण हुई समझना चाहिए। इस समय अपनी दृष्टि भृकुटी के बीच में या नासिका के अग्रभाग पर जमाकर ध्यान करना चाहिए। घुटने, पंजे व एड़ियाँ आपस में मिली रहें व शरीर हिले-डुले नही, आँखे ख़ूब खुली रहें, साँस

धीरे-धीरे नाक से लेवें और मुँह बन्द रखें। आरम्भ में किसी आदमी या दीवाल के सहारे पैर उठाए जा सकते हैं। अभ्यास करने के दस मिनिट बाद एक प्याला दूध व हलका जलपान व दूध पीना अत्यन्त आवश्यक है। गर्मी के दिनों में अधिक समय न करें। इस आसन को बहुत ही सावधानी व धीरे से करना चाहिए ताकि गर्दन में झटका न लगने पावे और खाली पेट करें। समय मिलने पर प्रातः व सायंकाल दोनों समय की जा सकती है। आसन करके हाथों को ऊपर उठावे व गर्दन पीछे झुकावे तथा आगे झुककर समाप्त करने पर कुछ समय तक सीधे खड़े होकर दोनों हाथों से दोनों पैरों के अँगूठे पकड़े। यह क्रिया पाँच बार करें। साथ ही पाँच पूरक-रेचक प्राणायाम पहले व बाद में करने से विशेष लाभ होगा।

इसके और भी कई प्रकार हैं। हाथों पर ज़ोर देकर सिर भी उठाया जा सकता है। हाथों की उँगलियाँ खोल कर पंजे फैलाकर हथेलियों के सहारे बाहुओं के बल शरीर को ज्यों का त्यों खड़ा रखा जा सकता है। इसके सिवाय हाथों को हटाकर केवल सिर के बल ही खड़ा हुआ जाता है। सर से हाथ हटाकर सामने इधर-उधर फैलाए, छाती लगा के व पैर मोड़कर नितम्बों से बारी-बारी से व साथ-साथ लगाए जा सकते हैं तथा पद्मासन भी लगाया जा सकता है और पैरों को ऊपर न मिलाकर अगल-बगल व आगे-पीछे फैलाया जा सकता है। चंचल चित्त वालों को इसमें आनन्द आता है, परन्तु ध्यान के विचार से पहली विधि ही उत्तम है।

आरम्भ में दीवाल या किसी मनुष्य का सहारा लेकर व बड़ी सावधानी से करें क्योंकि जल्दबाजी व इधर-उधर झोंका खाने या गिरने से सिर, गर्दन अथवा अन्य अङ्गों में चोट या मोच आ जाने का भय रहता है।

लाभ

कितने ही ऋषि, मुनि, योग तथा आसन के अभ्यासी लोगों ने इस आसन की बड़ी प्रशंसा की है और इसे बहुत ही महत्व पूर्ण व तत्काल फल देने वाला बतलाया है। इसीलिए इसका अधिक प्रचार है।

घेरंड संहिता में इस आसन को मृत्यु और बुढ़ापे से रक्षा करने वाला बतलाया है। मानव शरीर में ऊपर के अङ्ग बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। सब का राजा वीर्य हृदय में रहता है। रक्त शरीर की कांतिवान् जीवन प्रद और स्वस्थ रखने में समर्थ है अतएव उसे सारे शरीर में प्रवाहित व शुद्ध रखने की कितनी आवश्यकता है। साधारणतः शरीर का भार पैरो पर रहने के कारण रक्त का प्रवाह भी उसी तरफ़ रहता है अतएव सारे शरीर का रक्त पूर्ण रूप से प्रवाहित करने की पूर्ति इस आसन से हो जाती है।

मस्तिष्क में शुद्ध रक्त पहुँचने से बुद्धि तीव्र व स्मरण शक्ति बढ़ती है। वीर्य की ऊर्ध्वगति होने से मनुष्य कांतिवान् हो जाता है। वीर्यदोष व स्वप्नदोष नष्ट होकर उसका स्तंभन होता है। असमय में सफ़ेद होने वाले बाल एक वर्ष के निरंतर अभ्यास से काले हो जाते हैं। पेट के विकार दृष्टि-दोष दूर होते हैं। शरीर में रक्त पहुँचाने का कार्य हृदय करता है। अतएव ऊपर के अङ्गों में रक्त पहुँचाने में उसे बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। इस आसन में हृदय को विश्राम मिलने से वह अधिक दिनों तक कार्य करने में समर्थ होता है। फलतः मनुष्य की आयु बढ़ती है। सारे शरीर में वेग से शुद्ध रक्त का संचार होने से शरीर बलवान्, छाती, गले, सिर, पैर पेट व मुँह आदि के सब रोग, झुर्रियाँ आदि दूर होते हैं व आनन्द का अनुभव होता है। दिमाग़ी काम करने वालों के लिए यह बहुत ही लाभप्रद है। इसके अभ्यास से स्मरणशक्ति बढ़ती है। इससे प्राणायाम व समाधि के लिए अलहदा अभ्यास की आवश्यकता नहीं, इससे कुण्डलिनी भी जागृत होती है।

इस आसन के बाद बैठकर ध्यान लगाने से बड़ा लाभ होता है। अनाहत शब्द स्पष्ट सुनाई देने लगते हैं। इस आसन से बहरापन, सुजाक, बहुमूत्र, अर्श, श्वास, यक्ष्मा, पायोरिया, गर्मी, बवासीर आदि अनेक प्रकार के रोग नष्ट होते हैं। सारांश यह कि यह समस्त रोगों की रामबाण दवा व अमृत है। इसकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।

स्त्रियों के लिए यह आसन बहुत ही हितकारी व आशाप्रद है। इससे गर्भाशय व जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोग दूर होकर बाँझपन गायब हो जाता है। मासिक धर्म व गर्भ के स्थित होने पर आसन नहीं करना चाहिए।

कुछ लोगों का मत है कि यह आसन योग-साधन के अनुकूल नहीं है क्योंकि इसके बाद प्राणायाम आदि यौगिक क्रियाएँ, पूजा, मंत्र व जपादि नहीं किए जा सकते। अनेक योगाभ्यासी लोगों का कहना है कि इससे न तो शरीर बलिष्ट होता है और न चित्त ही लय होकर आनन्द प्राप्त करता है।

इस आसन का अभ्यास करते समय मनुष्य को यह धारणा करते रहना चाहिए कि उसका वीर्य ओज बनता हुआ मस्तिष्क में जमा हो रहा है। यह आसन गर्मियों मे ज़्यादा देर तक न करें।

समय

आरम्भ में इस आसन को पन्द्रह-बीस सेकिण्ड करें। प्रति सप्ताह एक-दो मिनट बढ़ाते हुए पन्द्रह मिनिट तक करें। छः महीने बाद आधे घन्टे तक व एक साल बाद एक घन्टे तक का अभ्यास बढ़ाया जाय। योगतत्त्व में लिखा है कि इस आसन को जो नित्य निरंतर तीन घंटे तक करते है वे काल को जीत लेते है। संध्या समय चार बजे से छः बजे के बीच या भोजन के दो घंटे पहले करें।

(२४) वृश्चिकासन

संस्कृत में वृश्चिक बिच्छू को कहते हैं। इस आसन में शरीर का आकार बिच्छू की तरह हो जाता है इसलिये इसका नाम वृश्चिकासन पड़ा है।

विधि

आसन पर बैठकर पहले दोनों हाथ कुहनियों तक ज़मीन पर जमाइए, पंजे खुले रहें। इसके पश्चात् पैरों को धीरे से उठाकर घुटनों तक मोड़कर सिर पर रखने का प्रयत्न कीजिए। प्रारम्भ में इसे दीवाल के सहारे करे। पहले पैरों को दीवाल से टेक दे और फिर पैरों को दीवाल से दो-तीन इंच दूर कर शरीर को स्थिर रखने का अभ्यास करे। शरीर जब स्थिर होने लगे तब धीरे-धीरे पैरों को घुटनों व कमर को पीछे सिर की तरफ़ मोड़ने व पैर की उँगलियों व तलुओं को सिर पर रखने का प्रयत्न करे। जो लोग वृक्षासन व शीर्षसन देर तक कर सकते है वे इसे शीघ्र ही कर सकते हैं।

लाभ

इस आसन में प्राय: सभी ओर विशेषकर पेट, हाथों व कमर के स्नायु तनने में सब अङ्ग शुद्ध और मज़बूत होते है। शरीर हल्का होकर मेदारोग, तिल्ली, पांडु, कृमि, आमवात व अजीर्ण नष्ट होते है।

समय

यह आसन भी कठिन है अतएव आसानी से जितने समय तक हो सके, करें।

(२५) द्विपाद शिरासन

इस आसन में दोनों पैर कंधों पर रखे जाते हैं इसीलिए इसे

द्विपादशिरासन कहते हैं।

विधि

आसन पर पालथी मारकर बैठ जाइए पश्चात् एक पैर उठा कर दोनों या एक हाथ से उसके पंजे को पकड़कर धीरे-धीरे सिर के पीछे से दूसरे कंधे की तरफ़ गर्दन पर रखिए, फिर इसी तरह दूसरे पैर को भी दूसरी तरफ़ रखने का प्रयत्न कीजिए। पैर रखते समय गर्दन को कुछ झुकाने से सरलता होगी, हाथों को सामने प्रार्थना की तरह जोड़िए। पूरा शरीर नितम्बों के बल रहेगा। यह आसन कठिन है अतएव पैर जल्दी ही गर्दन पर रखने का प्रयत्न न करके धीरे-धीरे अभ्यास कीजिए।

लाभ

इस आसन में पैरों, जाँघों व गर्दन के स्नायुओं पर ज़ोर पड़ता है अतएव ये अङ्ग बहुत ही मज़बूत हो जाते हैं। पैर, पीठ व हाथ -पैरों के रोग दूर होते हैं।

समय

गर्दन पर जब पैर रखने का अभ्यास हो जाय तब शक्ति के अनुसार पन्द्रह-बीस सेकिण्ड से पाँच मिनिट तक कर सकते हैं।

(२६) वकासन

इस आसन में शरीर का आकार बगुले की तरह हो जाता है इसलिए इसे वकासन कहते हैं।

विधि

आसन पर पंजों के बल बैठकर दोनों हाथ सामने पंजों के

बल मज़बूती से जमा दीजिए और दोनों हाथों के पास सटाकर धीरे-धीरे उनके घुटने कुहनियों पर चढ़ाकर शरीर के सब भार को हाथों के पंजों पर संभालिए। पैरों के पंजे मिले रहें। घुटने हाथों के बाहर व भीतर भी रखे जा सकते हैं।

लाभ

इससे विशेषकर हाथ व पंजे मज़बूत होते हैं और उँगलियों में कभी लर्जे (कँपने) की शिकायत नहीं होती।

समय

अभ्यास हो जाने पर इसे आधे घंटे तक किया जा सकता है।

(२७) पवन मुक्तासन

इस आसन से पेट की वायु निकल जाती है इसलिए इसे पवन मुक्तासन कहते हैं।

विधि

आसन पर चित लेट कर एक पैंर को घुटने से मोड़कर छाती के पास लाइए और दोनों हाथों की गुफनी बनाकर उस पैर को पेट की तरफ़ खूब ज़ोर से दबाइए। इसके पश्चात् उस पैर को सीधा करके दूसरे पैर को भी इसी तरह दबाइए। दोनों पैरों को भी एक साथ दबाकर भी किया जा सकता है। साथ ही नीचे लिखे अनुसार भी इसे किया जा सकता है।

(१) **पवन मुक्तासन**- पैरों के बल एड़ियाँ मिलाकर बैठ जाइए और दोनों घुटनों को छाती से लगाकर दोनों हाथों की गुफनी बनाकर छाती की तरफ़ दबाइए।

(२) **वाम पवन मुक्तासन**- दाहिने पैर को ज़मीन पर सीधा फैलाकर दूसरे पैर को ऊपर लिखे अनुसार मोड़कर हाथों से छाती की तरफ़ दबाइए।

(३) **दक्षिण पवन मुक्तासन**- इस आसन में बाएँ पैर को ज़मीन पर फैलाकर दाहिने को मोड़कर ऊपर लिखे अनुसार दबाया जाता है।

लाभ

इस आसन में पेट की अपान वायु के दबकर निकलने से पेट शुद्ध होता है। सुबह उठते ही थोड़ा-सा पानी पीकर लेटे-लेटे ही यदि यह आसन किया जाय और उसके बाद ही टट्टी जावे तो दस्त साफ़ और जल्दी होता है। जिसके पेट की वायु बिगड़ी व अधिक पैदा होती हो उसको यह आसन अवश्य करना चाहिए। इससे वायु शुद्ध व कम पैदा होती है।

समय

इस आसन को सुबह-शाम तीन मिनिट से दस-पन्द्रह मिनिट तक करना चाहिए।

(२८) द्विहस्त भुजासन

इस आसन को दोनों हाथों व भुजाओं से किया जाता है इसलिए इसे द्विहस्त भुजासन कहते हैं। जिन लोगों को द्विपाद शिरासन करने में कठिनाई हो उनको इस आसन के करने में सुविधा होगी और लाभ लगभग वही होगा।

विधि

आसन पर पालथी मारकर बैठ जाइए और एक-एक करके दोनों

पैरों को दोनों बाँहों पर रखिए। इसके पश्चात् बाहुओं को ऊपर करते हुए दोनों पैर कंधों पर रख दीजिए, साथ ही दोनों हाथों की उँगलियाँ आपस में फँसाकर गले में माला की तरह डालिए। आरम्भ में दोनों पैर कंधों पर रखने में कठिनाई होगी इस लिए पहले एक पैर रखने का अभ्यास कीजिए, पश्चात् दोनों पैरों के रखने का प्रयत्न कीजिए।

लाभ

इस आसन से द्विपाद शिरासन की तरह हाथ पैर मज़बूत होते हैं। इस आसन में भी हाथ, पाँव व गले के स्नायु तनने से उनका रक्त शुद्ध व प्रवाहित होता है।

समय

एक मिनिट से दस मिनिट तक इसका अभ्यास किया जा सकता है। पहले आधे मिनट से आरम्भ करें।

(२९) वातायनासन

इस आसन में वायु निकलने के लिए मार्ग खुला रहता है इसलिए इसे वातायनासन कहते हैं।

विधि

आसन पर सीधे खड़े हो जाइए और दोनों हाथों से दाहिना पैर ऊपर उठाकर उसे बायीं जाँघ पर रखिए। पैर का पंजा जाँघ से और एड़ी तोंदी के नीचे मिली रहे, अब बाएँ पैर को बायीं ओर इस तरह मोड़िए कि दाहिने पैर का घुटना बाएँ पैर की एड़ी के

टखने से लग जाय। इस आसन को पैर बदल-बदल कर करना चाहिए। दोनों हाथ प्रार्थना की तरह जोड़कर छाती के सामने रखे। शरीर सीधा व दृष्टि सामने रहे।

लाभ

इस आसन से पैरों के स्नायु खिंचकर रक्त शुद्ध होता है व पैरों में मज़बूती आती है।

समय

शक्ति के अनुसार इसे एक मिनिट से पाँच मिनिट तक किया जा सकता है।

(३०) गुल्फ जँघासन

इस आसन में पैरो का आकार गुल्फ की तरह हो जाता है इसीलिए इसे गुल्फ जँघासन कहते हैं।

विधि

आसन पर पैर सीधे फैला कर बैठ जाइए और बाएँ पैर को घुटने से मोड़कर उसकी एड़ी बायीं जाँघ के मूल में लगाइए और पंजा सामने सीधा रखिए। फिर दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर उसकी एड़ी दाहिनी जाँघ के मूल में लगाइए और पंजे को बाएँ पैर के पंजे के ऊपर रखिए। अब दोनों घुटनों को सीध में ख़ूब तान दीजिए ताकि वे एक लाइन में हो जावें। इसके पश्चात् हाथों को सीधा करके घुटनों पर इस तरह रखिए कि हाथों की उँगलियाँ घुटने के बाहर ज़मीन से छूती रहें। शरीर सीधा व दृष्टि सामने रहे।

लाभ

इस आसन से कमर और जाँघों के स्नायु खिंचने से बड़ा लाभ होता है और उनमें शुद्ध रक्त का प्रवाह होता है। जननेन्द्रिय को लाभ व मज़बूती प्राप्त होती है।

समय

शक्ति के अनुसार पाँच मिनिट से आधे घंटे तक यह आसन किया जा सकता है।

(३१) गुप्तासन

इस आसन में जननेन्द्रिय गुप्त रहती है इसलिए इसे गुप्तासन कहते हैं।

विधि

आसन पर सीधे पालथी मारकर बैठ कर दोनों पैरों की एड़ियों को जननेन्द्रिय पर रखिए। दोनों पैरों के टखने आपस में सटे रहें और दाहिने पैर का अँगूठा बाएँ पैर की जाँघ व पिंडली के बीच में तथा बाएँ पैर का अँगूठा उसी तरह दाहिनी जाँघ और पिंडली के अंदर घुसा रहेगा।

लाभ

इस आसन से ब्रह्मचर्य की रक्षा व स्वप्नदोष बन्द हो जाते हैं, पैर व जँघाएँ मज़बूत होती है। धातु सम्बन्धी अन्य विकार भी दूर होते हैं।

समय

यह आसन कुछ कठिन नहीं है अतएव पाँच मिनिट से आधे घंटे

तक सरलता से की जा सकती है। गृहस्थ लोगों को अधिक समय तक नहीं करना चाहिए।

(३२) स्वस्तिकासन

स्वस्तिक का अर्थ है सीधा। इस आसन में सीधा बैठा जाता है इसलिए इसे स्वस्तिकासन कहते हैं।

विधि

आसन पर सीधे बैठकर बाएँ पैर को मोड़कर दाहिनी जाँघ पर व दाहिने को बायीं पर रखिए। इस प्रकार दोनों पैर जाँघों और पिंडलियों के बीच में रहेंगे। मेरुदंड सीधा रहना चाहिए।

लाभ

यह बिल्कुल सरल आसन है। इसमें काफ़ी समय तक आराम से बैठा जा सकता है। इसीलिए यह ध्यान आदि के लिए अत्यन्त उपयुक्त आसन है।

समय

इस आसन का विशेषकर ध्यान आदि के लिए उपयोग किया जाता है अतएव कोई समय निश्चित करना आवश्यक नहीं है। ध्यान व भजन पूजन आदि के समय के अनुसार इस आसन से बैठने का अभ्यास करना चाहिए।

(३३) सुखासन

इस आसन से भी काफ़ी समय तक आराम से बैठा जा सकता है इसलिये इसे सुखासन कहते हैं। जो लोग तीस-चालीस से अधिक अवस्था हो जाने के कारण जप व ध्यान आदि के लिए पद्म, सिद्ध व स्वस्तिकासन से अधिक समय तक नहीं बैठ सकते उनके लिए यह आसन अत्यन्त उपयुक्त है। इससे वृद्ध लोग भी आराम से देर तक बैठ सकते हैं। युवक लोगों को इसे करने की आवश्यकता नहीं है।

विधि

आसन पर आराम से पैरों के बल उकड़ूँ बैठकर दाहिने पैर को बाएँ पैर की पिंडली से मिलाकर इस तरह रखिए कि दोनों घुटने अन्दर उठे रहें व तलुए ज़मीन पर रहें। अर्थात् नितम्ब और पंजों के बल बैठिए। इसके सिवा एक ढाई गज लम्बे कपड़े को शरीर के चारों तरफ़ अर्थात् कमर में घुटनों के नीचे इस तरह लपेटिए कि घुटने नीचे न गिरने पावें। दोनों हाथ भी दोनों पैरों से मिलाकर कपड़े के फैंटे के अन्दर रखिए।

लाभ

यह आसन शारीरिक उन्नति के लिए नहीं है, बल्कि अन्य आसनों से न बैठ सकने वालों के लिए, ध्यान, जप आदि के लिए अधिक समय तक बैठ सकने के लिये यह बहुत ही उपयुक्त और सहायक है।

समय

अपनी सुविधा, जप और ध्यान आदि के अनुसार इस आसन से किसी भी समय तक बैठा जा सकता है।

(३४) काम दहनासन

यह आसन काम सम्बन्धी उत्तेजना दबाने के लिए किया जाता है इसलिए इसे काम दहन आसन कहते हैं।

विधि

बज्रासन लगाकर अपने घुटनों को धीरे-धीरे उठावे और केवल पैरों के अँगूठों के बल खड़े रहे। हाथों का योगदंड, स्टूल या बेंच पर रखा जा सकता है ताकि आसन करने में सुविधा हो और देर तक बैठा जा सके।

लाभ

इस आसन के करने से काम सम्बन्धी उत्तेजना कम होती है। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए यह आसन बहुत ही उपयोगी है।

समय

पाँच सेकिण्ड से आरम्भ करके आठ-दस मिनिट तक इसका अभ्यास किया जा सकता है।

(३५) त्रिकोणासन

इस आसन में शरीर का आकार त्रिकोण हो जाता है इसलिए इसका नाम त्रिकोणासन पड़ा ।

विधि

सीधे खड़े होकर दोनों पैरों को एक दूसरे से दो फीट के फासले पर रखिए। दोनों हाथों को बगल में सीधे चिपकाए रहिए। इसके पश्चात् बाएँ पैर की तरफ़ उसी बगल में धीरे-धीरे झुकिए और उसी

तरफ़ के हाथ को ज़मीन से लगाइए। दाहिना हाथ ऊपर को सीधा उठाइए व पैरों को कड़ा रखिए। इस आसन में केवल कमर तक का हिस्सा झुकेगा। निगाह दाहिने हाथ की तरफ़ करिए।

लाभ

इस आसन से रीढ़ में दोनों तरफ़ झुकाव व लचीलापन आता है। योगी के लिए रीढ़ अथवा मेरुदंड बहुत ही महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसका सम्बन्ध समस्त स्नायु मंडल व नालिका से है। नालिका में ही मुख्य नाड़ी सुषुम्ना रहती है जिसका कुण्डलिनी चक्र से विशेष सम्बन्ध है। यह आसन मेरुदंड व पेट के अङ्गों को दृढ़ करता है। मलावरोध दूर करके शरीर को हल्का करता है। इससे मनुष्य का कद बढ़ सकता है।

समय

दो मिनिट से पन्द्रह–बीस मिनिट तक इस आसन का अभ्यास किया जा सकता है।

(३६) योगासन

इस आसन को प्रायःयोगी लोग करते हैं इसलिए इसे योगासन कहते है।

विधि

इस आसन में दाएँ पैर को बाएँ घुटने पर और बाएँ को दाहिने घुटने पर रखिए। तलवे ऊपर की तरफ़ रहें। हथेलियों को ऊपर उठाए हुए दोनों तरफ़ बगल में ज़मीन पर रखिये। दृष्टि सामने रखें।

लाभ

यह आसन जप और ध्यान आदि के विचार से योगियों के लिए उत्तम है।

समय

शक्ति, जप व ध्यान के अनुसार ही इसका अभ्यास किया जा सकता है।

(३७) शवासन

इस आसन में शरीर को बगैर हिलाए डुलाए बिल्कुल मुर्दे की अवस्था में रखने के कारण इसे शवासन कहते हैं।

विधि

आसन पर चित लेटकर हाथों को बिलकुल सीधा फैला दीजिये। सब अङ्गों को शिथिल कर दीजिए, धीरे-धीरे साँस लीजिए। जिस स्थिति में भी हाथ पैरों को रखने में आराम मिले उसी तरह उनको रखिए और यह ध्यान करिए कि हमारे सारे अङ्ग पेट, छाती मस्तिष्क, नेत्र, शरीर की नसें बिल्कुल ढीली पड़ गई है। ॐ का जप व आत्मा या भगवान् का ध्यान करिए। सो न जाइए। सब आसनों के करने के बाद इस आसन को अवश्य करें।

लाभ

इस आसन से शरीर और मस्तिष्क को विश्राम, शांति व आनन्द

प्राप्त होता है। आसनों आदि के करने से जो थकावट हो जाती है वह इस आसन से तुरन्त ही दूर हो जाती है।

समय

जितनी देर आसन आदि की हो उसी के अनुसार इस आसन का भी समय रखा जा सकता है। साधारणतया आठ-दस मिनिट करना उचित होगा।

(३८) लोलासन

मयूरासन के अभ्यास में पद्मासन लगाकर दोनों हथेलियों के सहारे सारे शरीर को उठावें। इससे सारा शरीर हिल उठेगा।

शरीर का शिथिली करण

शरीर की मांस पेशियों को शिथिल करने का अभ्यास करने से शरीर और मस्तिष्क दोनों को विश्राम मिलेगा और आसन आदि से होने वाला तनाव ठीक हो जाएगा। जो लोग शिथिली करण विज्ञान को जानते हैं उनकी शक्ति का कभी क्षय नहीं होता।

कुछ गहरी-गहरी साँसें लेकर शवासन से चित लेट जाइए। सिर से पैरों तक सब मांस पेशियों को बिल्कुल शिथिल कर दीजिए। फिर एक करवट, फिर दूसरी करवट लेटकर सब अङ्गों को बिल्कुल ढीला कर दीजिए। शरीर के विशेष अङ्गों के भिन्न-भिन्न अभ्यास हैं। इस प्रकार सिर, आँख, कंधे, हाथ, उँगलियाँ, पेट, कमर, जाँघें, टाँगें आदि सभी ढीले किए जा सकते हैं। इस अभ्यास के समय मन को शांत और दृढ़ रखें।

मन का शिथिली करण

इसी प्रकार मन को भी शिथिल किया जा सकता है। क्रोध और चिन्ता के भावों को नष्ट कर देने से बड़ी मानसिक शांति मिलती है। चिन्ता और क्रोध के मूल में भय की स्थिति है। चिन्तित रहने से मनुष्य चिड़चिड़ा हो जाता है। अतएव चिन्ता, क्रोध व भय से मुक्त होने के लिए मन के शिथिली करण का अभ्यास करना चाहिए। शरीर के शिथिल होने से मन भी शिथिल हो जाता है।

शरीर को शिथिल करके आराम के साथ आँखें मूँद कर चित लेट जाइए और सब तरह के विचार हृदय से निकाल कर मन को स्थिर कीजिए। ऐसा विचार कीजिए कि शरीर एक तरह का पात्र है और आप शरीर से अलग हो। सर्व व्यापक आत्मा के साथ अपना एकीकरण कीजिए और ऐसा विचार कीजिए कि, सारे संसार का जीवन आपके द्वारा संचारित हो रहा है। इसके पश्चात् आँख खोलने पर आप अपने में महान् मानसिक शक्ति, स्फूर्ति व बल का अनुभव करेंगे।

आसन और उनके लाभ

नाम आसन	लाभ
१-पद्म, सिद्ध, स्वास्तिक व सुखासन	ध्यान, जप व स्वाध्याय।
२-शीर्ष, सिद्ध, भुजंग व मत्स्य, सर्वांगासन	ब्रह्मचर्य, कुण्डलिनी जागरण, क्षय,दमा, स्मरण शक्ति, प्रमेह, बांझपन, स्वप्नदोष, मूत्राशय रोग, शूल, गठिया, मधुमेह, पायोरिया, नाक, आँख, कान के रोग, आतशक, अजीर्ण

	बद्धकोष्ठता दूर होती है।
३-शवासन	थकावट मिटती है।
४-पश्चिमोत्तान, बज्र, सर्वांग व बद्ध पद्मासन	पाचन बढ़ता है।
५-चक्र, मयूर, शीर्ष व सर्वांगासन	जीर्ण ज्वर जाता रहता है।
६-पश्चिमोत्तान, शीर्ष, वृश्चिक व सर्वांग	गठिया दूर होता है
७- शीर्ष व सर्वांग	सिर दर्द ठीक होता है।
८- सर्वांग, शीर्ष, पश्चिमोत्तान व पद्मासन	दीर्घ आयु व सर्व रोग नाशक है।
९- शीर्ष, उर्ध्व व पूर्ण सर्वांगासन	रक्त दोष नहीं होता।
१०- पद्म, गोमुख, कुक्कुट,महामुद्रा	बवासीर जाती रहती है।
११- शीर्ष व उर्ध्व सर्वांगासन	बालों के रोग, बाल सफ़ेद से काले।
१२- मत्स्य, धनुर् पादहस्त,हल व मयूर	मन्दाग्नि दूर होती है।
१३- शीर्ष, उर्ध्व, सर्वांग पद्य व मयूरासन	दिमाग़ की कमज़ोरी व अशक्तता मिटती है।
१४- बद्ध पद्मासन व कुक्कुटासन	आँव बन्द हो जाती है।
१५- शीर्षासन	मिर्गी ठीक हो जाती है।
१६- शल्भ, भुजंग, सर्वांग व पश्चि-मोत्तानासन	जननेंद्रिय व गर्भाशय के रोग, मासिक-धर्म के विकार न होना तथा प्रदर दूर होते हैं।
१७- शल्भ व मत्स्येन्द्रासन	श्वास रोग जाता रहता है।
१८- त्रिकोण, गरुड़ व उत्कटासन	फील पाँव, हाथ व पोते बढ़ना बन्द हो जाता है।
१९- बद्ध पद्मासन,मयूर,सर्वांग व	यकृत् व प्लीहावृद्धि रुक

हलासन	जाती है।
२०- महामुद्रा, शीर्षासन व सर्वांगासन	कुष्ठ मिट जाता है।
२१- शीर्ष व मयूरासन	उदरशूल चला जाता है।
२२- शीर्ष,सर्वांग,चक्र व जानुशिरासन	कृमिरोग ठीक होता है।
२३- शीर्ष, सर्वांग व जानुशिरासन	खाँसी व श्वास रोग नहीं रहते।
२४- सर्वांग, जानुशिरासन व पश्चिमोत्तानासन	कमर दर्द जाता रहता है।
२५- शीर्ष, चक्र सर्वांग, वृश्चिक व मत्स्येन्द्रासन	ताप, तिल्ली ठीक होती है।
२६- शीर्ष, ऊर्ध्व, सर्वांग, पश्चिमो-त्तान व जानुशिरासन	जोड़ व घुटनों का दर्द जाता रहता है।

नोट-- इन आसनों के साथ प्राणायाम, जप भी करना चाहिए। शीघ्र लाभ न हो तो घबड़ाना न चाहिए और विश्वास व दृढ़तापूर्वक अभ्यास करते रहना चाहिए। यदि नियमानुसार करने पर भी कोई विपरीत प्रभाव होता हो तो उस आसन को छोड़कर दूसरा करना चाहिए। मासिक धर्म व गर्भ के समय स्त्रियों को अभ्यास स्थगित कर देना चाहिए।

जिस प्रकार प्रणायाम का अभ्यास आरम्भ करने के पहले आसन सिद्ध करना अत्यन्त आवश्यक है, उसी प्रकार मुद्राओं व बंधों का अभ्यास कर लेना भी अनिवार्य है।

मुद्राएँ

तान्त्रिक साधना में मुद्रा सबसे श्रेष्ठ है। मुद्राएँ, आसन, प्राणायाम, धारणा और ध्यान आदि सभी क्रियाएँ सम्मिलित हैं। मुद्राओं की सहायता से साधक सर्व शक्तिवान् होकर शिव की पदवी प्राप्त कर सकता है।

घेरंड, शिव व दत्तात्रेय आदि संहिताओं में मुद्राओं का वर्णन है, परन्तु उनको किसी अनुभवी गुरु से ही सीखना चाहिये। गुरु व महान् पुरुष की कृपा से आसन, मुद्राएँ व प्राणायाम आदि सहज ही में आ जाता है।

घेरंड, संहिता के अनुसार आगे लिखे अनुसार २५ प्रकार की मुद्राएँ हैं।

(१) महामुद्रा(२) नभोमुद्रा(३)महाबंध (४)महावेध (५)खेचरी (६) विपरीत करणी(७)योनि (८)बज्रोली (९)शक्ति चालनी (१०) ताड़गी (११)मांडवी (१२)शाम्भवी(१३)अधोधारणा(१४)आम्भसी धारणा (१५)वैश्वानरी धारणा (१६)वायवी धारणा(१७)नभो धारणा (१८)अश्विनी (१९) पाशिनी (२०) काकी (२१) मातंगी (२२) भुजंगिनी (२३) मूलबंध (२४) उड्डियानबंध (२५)जालंधर बंध।

शिव संहिता के अनुसार आगे लिखी हुई दस प्रकार की मुद्राएँ हैं।

(१)महामुद्रा (२)महाबंध (३) महाभेद (४)विपरीत करणी (५) बज्रोली (६) शक्ति चालन (७) खेचरी (८) मूलबंध (९) उड्डियान बधं (१०)जालंधर बंध।

उपर्युक्त मुद्राओं के अलावा योनि, शाम्भवी, योग, अगोचरी, भूचरी, चाचरी व ज्ञान मुद्रा व षड्मुखी मुद्रा का विवरण भी आगे दिया जा रहा है।

इन सब मुद्राओं का एक मात्र आधार कुण्डलिनी शक्ति है सुषम्ना

मुख से इस शक्ति के जाग्रत होने पर षट्चक्रों-ग्रन्थियों का भेद हो जाता है और सुषुम्ना के मार्ग से प्राणवायु सुखपूर्वक आने जाने लगती हैं। बिना किसी अवलम्ब के चित्त स्थिर हो जाने पर काल को वंचित किया जा सकता है अर्थात् मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। अतएव चित्त शक्ति को स्थिर करने के लिए मुद्राओं का अभ्यास करने की विशेष आवश्यकता है उनके अभ्यास से शीघ्र ही समाधि प्राप्त होती है व जरा अवस्था दूर रहती है। ये मुद्राएँ सिद्धों व योगियों को बड़ी प्रिय हैं।

यहाँ पर विस्तार भय से पूर्व लिखित सब मुद्राओं का लिखना कठिन है अतएव योगी व सिद्ध लोग जिन मुद्राओं का अधिकतर अभ्यास करते हैं उनमें से कुछ विशेष मुद्राओं का विवरण आगे दिया जाता है।

महामुद्रा, महाबंध और शक्ति चालनी मुद्रा करने से अर्थात् गुदाद्वार और मूत्रद्वार के बीच में दो अंगुल मध्यस्थान को एड़ी से दबाने से प्राण वायु व कुण्डलिनी जाग उठती है।

(१) महामुद्रा

(१) बाएँ पैर की एड़ी को गुदा और मूत्रेन्द्रिय के बीच में सीवन पर अच्छी तरह दबाकर रखें और दाहिने पैर को पूरा फैला कर उसके अँगूठे को ज़ोर से दोनों हाथों से पकड़े। नवों द्वारों को संयम करने के पश्चात् पूरक,जालंधर व उड्डियान बंध लगाकर यथाशक्ति कुम्भक करके धीरे-धीरे रेचक कर दे। देखने में यह जानुशिरासन की तरह मालूम होती है।

प्राणायाम की जितनी संख्या दाहिना पैर फैलाकर करे उतनी ही व उसी तरह बायाँ पैर फैलाकर करे। दृष्टि भ्रूमध्य में रखें।

इसके करने से बड़े-बड़े कष्ट दूर हो जाते हैं किसी तरह के रोग नहीं होते। क्षय, बवासीर, प्लीहा,अपच,कुष्ठ व मलावरोध नष्ट होकर

आयु बढ़ती है,बुढ़ापे का आक्रमण नहीं हो पाता तथा शरीर पर लावण्य आ जाता है। मनोवांछित फल व सिद्धियों की प्राप्ति होती है। इसका अभ्यास बहुत गुप्त रूप से करना चाहिए।

(२) बाएँ पैर की एड़ी सीवन (गुदा व अंडकोष के मध्य) में लगाकर दाहिना पैर लम्बा करके और दोनों हाथ, एक नासिका के ऊपर दूसरा घुटने के पास रखकर दोनों नासिकाओं से पाँच घर्षण करे। फिर बायीं नासिका से पूरक करे, कुंभक के समय लम्बे किए हुए पैर के अँगूठे को दोनों हाथों से पकड़े रहें और सिर को घुटने पर लगाने का प्रयत्न करे तथा मन में यह भावना करे कि मेरी कुंडलिनी शक्ति जागृत हो रही है और मैं इसे ब्रह्मरंध्र में ले जाता हूँ। यथाशक्ति कुम्भक करके नासिका से धीरे-धीरे रेचक करे। इस प्रकार बायीं अङ्ग से जितनी मुद्रा करने का विचार हो, इकट्ठी कर लें, फिर दाहिने पैर से भी विपरीत क्रम से उतनी ही मुद्रा करे जितनी बाएँ से की थी, परन्तु दाहिने अङ्ग में पूरक दाहिनी नाक से और रेचक बायीं से करे तथा दाहिने पैर की एड़ी सीवन में लगाई जाय। यह मुद्रा कपिल मुनि ने की थी।

इसके अभ्यास से अविद्या, अस्मिता (सूक्ष्म अहंकार),राग द्वेष, अभिनिवेष (मरणभय) यह पंच क्लेश, क्षय, गुल्म, भगन्दर,प्रमेह और कोढ़ का नाश होता है तथा अष्ट प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

(२) महाबंध

(१) सिद्धासन से बैठकर मूलबन्ध को बराबर दृढ़ता से लगाकर दोनों हाथ चूतडों के पास रखकर पाँच घर्षण करें, फिर नासिका के दोनों छिद्रों से पूरक करे। कुम्भक के समय "मैं कुंडलियनी को जागृत करता हूँ" ऐसी भावना करे और स्थिरासन सहित ऊपर उठ उठकर कंद स्थान को रगड़े। यथाशक्ति कुम्भक करके नासिका के दोनों छिद्रों से धीरे-धीरे रेचक करे।

(२) पद्मासन से बैठकर बायीं नाक से पाँच घर्षण करे। फिर उसी नाक से पूरक करे। कुम्भक के समय लोलासन से स्थित हो और यह भावना करे कि "मैं कुंडलिनी को जागृत कर रहा हूँ" यथाशक्ति कुम्भक करके दाहिनी नाक से धीरे-धीरे रेचक करे। इस प्रकार बाएँ अङ्ग में भी जितनी मुद्राएँ करनी हो उतनी करके दाहिने अङ्ग में उसके विपरीत क्रम से उतनी ही मुद्राएँ करें ।

(३) बाएँ पैर की एड़ी से गुदा और अंडकोष के बीच का भाग कसकर दबाए और बायीं जाँघ पर दाहिना पैर रखकर रीढ़ को सीधा करके बैठे, फिर गुदा को सिकोड़ते हुए पाँच घर्षण करके बायीं नासिका से पूरक करे और अन्त में जालंधर बंध करके ठोड़ी को छाती में लगा दे व योनि स्थान (सीवन) का आकुंचन कर मन को सुषुम्ना में प्रविष्ट करे और यह भावना करे कि मैं कुंडलिनी शक्ति को जागृत करके ब्रह्मरन्ध्र में ले जा रहा हूँ। यथा-शक्ति कुम्भक करके धीरे-धीरे रेचक करे। कुम्भक के समय दोनों हाथों को तान कर दाहिने पैर के घुटने को पकड़े रहे और फिर दाहिने पैर की एड़ी सीवन पर लगाकर बायाँ पैर दाहिनी जाँघ पर रखकर पहले की तरह फिर प्राणायाम करे व कुम्भक के समय दोनों हाथों को फैलाकर बाएँ पैर के घुटने को पकड़े रहे। दोनों अभ्यासों की संख्या बराबर रहे। इस अभ्यास से इड़ा व पिंगला का संगम भ्रूमध्य से होता है जहाँ से ब्रह्मरंध्र की राह गई है। इसका भी महामुद्रा जैसा फल होता है।

योगी लोग साधारणतया महामुद्रा, महाबंध व महावेध करते हैं। इन तीनों का अच्छा मेल है। इन तीनों के अभ्यास से अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है।

(३) महावेध

इसका अभ्यास करते समय दोनों तरफ़ हथेलियों को अपने दोनों तरफ़ पृथ्वी पर जमा दे और फिर धीरे-धीरे चूतड़ों को ऊपर उठावे। इस तरह धीरे-धीरे उठाने से प्राणवायु इड़ा व पिंगला छोड़कर सुषुम्ना में प्रवेश करने लगेगा। महावेध किए बिना महामुद्रा और महाबंध करना निष्फल है। इसको प्रहर-प्रहर में करना उचित है। इसके अभ्यास से वायु ताड़न के कारण छहों चक्रों के मध्य में रहने वाले देवता काँप उठते हैं। और कुण्डलिनी के लिए राह खुल जाती है जिससे वह ब्रह्मरंध्र में प्रवेश करने लगती है।

इस मुद्रा से खाल का सिकुड़ना, बालों की सफ़ेदी व सिर का हिलना तथा पाप नष्ट हो जाते हैं।

(४) विपरीतकरणी

(१) पृथ्वी पर चित लेटकर पीठ (कंधों की तरफ़) का कुछ हिस्सा व सिर पृथ्वी पर रखकर शेष धड़ सीधा ऊपर को उठावे और नितम्बों को हाथों से साधे, यह सर्वांगासन की तरह ही है। अन्तर यह है कि इसमें नितम्ब साधे जाते हैं सर्वांग में कमर। इसका अभ्यास प्रातःकाल करे।

इसके अभ्यास करने पर दूध का सेवन अच्छी तरह करे। इससे जठराग्नि तीव्र व जरा और मृत्यु दूर रहते हैं। एक मिनिट से आरम्भ कर धीरे-धीरे तीन घंटे तक बढ़ाइए।

(२) दोनों पैरों को लम्बे फैलाकर हाथों को घुटनों पर रख कर पाँच घर्षण करे। फिर नासिका के दोनों छिद्रों से पूरक करके यथाशक्ति कुम्भक करे। कुम्भक के समय महाबंध में बतलाई हुई भावना करे। फिर पूर्व स्थिति में आकर नासिका के दोनों छिद्रों से

धीरे-धीरे रेचक करे।

नाभि के मूल में सूर्य नाड़ी है और तालु के मध्य में चन्द्र नाडी है। सहस्रार कमल से निकली हुई अमृतधारा का नाभि स्थिति सूर्य नाड़ी पान किया करती हैं। इसी से मनुष्य को मृत्यु के वश में होना पड़ता है। यदि तालु के मूल में स्थित चन्द्र नाड़ी के द्वारा योगी उस सुधा धारा को पी सके तो उसे मृत्यु के वश में नहीं होना पड़ता। अतएव योग के द्वारा सूर्य नाड़ी को ऊपर और चन्द्र को नीचे ले आना चाहिए। इसका उपाय यह है कि मस्तक को पृथ्वी पर रखकर दोनों हाथ उसके नीचे दोनों ओर लगा दे और दोनों पैरों को सीधे ऊपर उठाकर कुम्भक करे।

इस मुद्रा को प्रथम प्रत्येक सीढ़ी पर दो-दो सेकिण्ड ठहरते हुए करे। पश्चात् पूर्ण मुद्रा को दो बार आरम्भ करके प्रत्येक पक्ष में एक-एक बढ़ाते हुए पाँच बार तक ले जावे तथा प्रत्येक बार दस सेकिण्ड तक स्थिर रखे।

छः मास में चेहरे की झुर्रियाँ व सफ़ेद बालों का लोप हो जायेगा। मृत्युजंय देर तक अभ्यास करने के बाद हल्का नाश्ता या दूध पीना चाहिए।

(५) बज्रोली

योग शास्त्र में यह मुद्रा अत्यन्त कठिन मानी जाती है। जो इसे जानता है वह अन्य यौगिक क्रियाओं के बिना किये ही अणिमादि सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है।

अभ्यासी पहले मूत्रेन्द्रिय में एक चाँदी की नली डालकर उसके द्वारा पहले पानी भीतर की ओर बारह इंच तक चढ़ाते हैं फिर दूध, तेल व शहद और अन्त में पारा चढ़ाते हैं। पश्चात् बिना नली के ही यह पदार्थ चढ़ाये जाते हैं। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए यह क्रिया बड़ी ही सहायक व लाभदायक है। पहले दिन नली को केवल एक इंच

ही भीतर चढ़ाना चाहिए, एक इंच के डालने में सरलता व अभ्यास होने पर दो इंच, फिर तीन इंच, इसी प्रकार क्रमशः बारह इंच तक भीतर ले जाने का अभ्यास करना चाहिये।

जो इस क्रिया को करता है उसका एक बूंद भी वीर्य बाहर नहीं जा सकता। यदि बाहर जावे भी तो वह इस मुद्रा से उसे भीतर ही रख सकता है। जो योगी वीर्य को ऊपर खींचकर उसे सुरक्षित रख सकता है। वह मृत्यु पर विजयी हो सकता है। उसके शरीर से सुगंध निकलती है।

भगवान् कृष्ण इस मुद्रा में बड़े कुशल थे। यही कारण है कि गोपियों के बीच रहने पर भी वे नित्य ब्रह्मचारी कहे जाते हैं।

यह हठयोग की एक आवश्यक यौगिक क्रिया है। इसमें सफलता प्राप्त करना बड़ा कठिन है। इस क्रिया के जानने वाले योगी बहुत कम मिलेंगे। इसका अभ्यास जानकार गुरु द्वारा ही सीखना चाहिए।

(६) शक्ति चालन

(१) एकांत कमरे में सिद्धासन से बैठे-बैठे बलपूर्वक पूरक द्वारा वायु खींचे और उसे अपान वायु में मिला दे। जब तक वायु सुषुम्ना में प्रवेश न करे मूलबंध किए रहे। वायु को रोके रहने से कुण्डलिनी दम घुटने का अनुभव कर जागृत होती है और सुषुम्ना द्वारा ब्रह्मरंध में पहुँचती है।

(२) सिद्धासन से बैठे व टखने के पास पैर को पकड़े और पैर से धीरे-धीरे नितम्ब को पीटे, परन्तु यह ताड़न क्रिया है। इस साधन से भी कुण्डलिनी जाग्रत होती है। इसके अभ्यास से साधक सिद्ध हो जाता है।

यह बज्रोली मुद्राएँ अत्यन्त गोपनीय और सर्व साधारण के लिए ज्ञातव्य भी नहीं है। इसलिए केवल किताबों में पढ़कर ही कोई इनको

न करे बल्कि किसी अनुभवी गुरु के तत्वावधान में उनके आदेशानुसार ही करे।

पतंजलि योग दर्शन के पढ़ने से योग सम्बन्धी बहुत-सी बातों का ज्ञान हो सकता है।

(७) खेचरी

जीभ को उलटकर कपाल कुहर में प्रविष्ट करके भ्रूमध्य में स्थिर करे। कपाल कुहर में जब जीभ लगने लगे तब पहले नमकीन फिर मिर्च, खट्टा, दूध का, शहद का पश्चात् घी का स्वाद मालूम होता है। घी का स्वाद मालूम होने पर इस मुद्रा का सिद्ध हुआ समझना चाहिए। दोहन से जब जीभ इतनी लम्बी हो जाय कि नासाग्र को छूने लगे तब उलटकर कपाल कुहर में प्रविष्ट कर सकती है।

जीभ के निचले भाग में जिह्वामूल और जीभ के साथ जो नाड़ी जुड़ी है उसे काटकर जीभ के उस निचले भाग पर, जीभ के अग्रभाग को सदा चलाते रहना चाहिए और मक्खन से जीभ को दोहन करके लोहे की शलाका से उसे खींचना चाहिए। इस प्रकार अभ्यास करने से जीभ लम्बी हो जाती है। जीभ को इतनी लम्बी कर लेना चाहिए कि वह भौहों के बीच के स्थान को छूने लगे। जीभ को क्रम-क्रम से तालु के बीच में ले जाना चाहिए। तालु के बीच में जो गड्ढा है जिसे कपाल कुहर कहते हैं उसमें जीभ को ऊपर की ओर उल्टाकर घुसा देना चाहिए और दोनों भौंहों के बीच में दृष्टि जमाना चाहिए।

'ख' का अर्थ है आकाश और 'चर' का अर्थ है चलना। योगी आकाश में चलता है। इसलिए इसे खेचरी कहते हैं। गुरु की संरक्षता में ही इसका अभ्यास करना चाहिए। इस मुद्रा व योग गुटिका द्वारा मनुष्य हवा में उड़कर कहीं भी जा सकता है।

इस मुद्रा द्वारा ब्रह्मरंध्र से बहने वाली सोमधारा को पान करने से

अमृत समान नशा होता है। सिर घूमता है, नेत्र स्वयं अधमुन्दे और स्थिर रहते हैं व भूख-प्यास जाती रहती है तब यह मुद्रा सिद्ध होती है। इसके साधन से ब्रह्मरंध्र से सोमधारा झरती है वह साधक के सारे शरीर को अमृत से प्लावित करती है। इससे साधक शिथिलता, जरा आदि से रहित होकर दृढ़काय, पराक्रमी व कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है। नाना रसों के स्वाद मिलते हैं। दूध का स्वाद अनुभूत होने पर रोग नष्ट हो जाते हैं और घी का स्वाद मिलने पर अमरत्व प्राप्त होने लगता है।

वास्तविक रूप में इस मुद्रा के साधन से साधक सब रोगों से मुक्त हो जाता है। क्षीणता, तन्द्रा, भूख, प्यास व मूर्च्छा के आक्रमण नहीं होते ओर न किसी कर्म-बंधन में फँसने पाता है तथा न काल का भय ही सताता है। काया-सिद्धि प्राप्त होती है। यह सब मुद्राओं में श्रेष्ठ हैं। राजा भर्तृहरि इसे बड़ी कुशलता से करते थे।

खेचरी सिद्ध करने के लिए जिह्वा छेद बतलाया गया है। छेदन के पश्चात् दोहन है। जिह्वा तीन प्रकार की होती हैं।(१) नाग, (२) हस्ति (३) धेनु जिह्वा। नाग जिह्वा स्वतः लम्बी होती है। शेष दोनों छेदन योग्य होती हैं। जिनकी जिह्वा नासिका अग्रभाग में लग जाती है, उनको छेदन की आवश्यकता नहीं, केवल दोहन की है। दोहन के लिये पहले बच (उग्रगंधा) के चर्ण से जिह्वा को मलना पड़ता है। इससे कफ़ादि दोष नष्ट हो जाते हैं। बहेड़ा चूर्ण से दोहन करे और सेंधा नमक से जिह्वा का छिदा भाग घिसे। छेदन गुरु के समीप रहकर ही करे। डाक्टर द्वारा छेदन कराने से वाचा शक्ति नष्ट हो जाती है। खेचरी सिद्ध हो जाने पर प्राणायाम करके खेचरी करे। इसका अभ्यास होने पर प्राण शक्ति सिद्ध करने के लिए शक्ति चालनी मुद्रा बतलाई है। इस मुद्रा से कुण्डलिनी मणिपुर चक्र तक आती है। बाद में जालंधर बंध से रुद्र ग्रंथि का भेदन होता है और प्राण शक्ति उड्डियान बंध के सहारे विशुद्ध

चक्र से मणिपुर चक्र तक आकर कुंडलिनी को ऊपर ले जाती है। इसके पश्चात् वह आज्ञाचक्र से ललना चक्र मनश्चक्र और सोमचक्र से होकर सहस्त्रार में पहुँचती है।

गुरु जीभ की निचली संयोजक शिरा को तेज चाकू से प्रति सप्ताह थोड़ा-थोड़ा काट देगा। नमक व हल्दी का चूर्ण छिड़क देने से कटे हुये किनारे फिर नहीं जुडेंगे। जीभ ताज़े मक्खन से रगड़े और बाहर निकाले, उँगलियों से पकड़कर इधर-उधर हिलावे। जिस प्रकार ग्वाला गाय के थन को दुहता है उसी प्रकार जीभ को पकड़कर दुहो। सप्ताह में एक बार जीभ के निचले सिरे को काटते जाने का क्रम छः मास तक नियमित रूप से जारी रखना चाहिए इस प्रकार जीभ ललाट तक पहुँचने लगेंगी। यह प्रारंभिक अंश है।

(८) योनिमुद्रा

सिद्धासन से बैठकर दोनों अँगूठों से दोनों कान, दोनों तर्जनियों से दोनों आँखें, दोनों मध्यमाओं से दोनों नाक के छिद्र और दोनों अनामिकाओं से मुँह बन्द कर लेना चाहिए। काफ़ी मुद्रा के द्वारा प्राणवायु को खींचकर अपान वायु के साथ मिला देना चाहिए। देहस्थित छहों चक्रों का ध्यान करके 'हुं' और 'हंस' इन दो मंत्रों के द्वारा सोई हुई कुण्डलिनी देवी को जगाना चाहिए और जीवात्मा के साथ मुक्त कुंडलिनी शक्ति को सहस्त्रदल कमल पर ले जाकर ऐसा चिन्तन करना चाहिए कि 'मैं स्वयम् शक्तिमय होकर शिवजी के साथ नाना प्रकार के विहार कर रहा हूँ। फिर दृढ़ चित्त से ऐसा चिन्तन करना चाहिए कि 'शिवशक्ति के संयोग से आनन्द स्वरूप होकर मैं ही ब्रह्म स्वरूप में स्थित हूँ। यह देवताओं के लिए भी दुर्लभ व गोपनीय है। इसके साधन करने से सिद्धि-प्राप्त व समाधि लगने लगती है। इसके अभ्यास के समय बहुत ही

सावधानी रखे व पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहे ।

(९) शाम्भवी मुद्रा

(१) मन को आज्ञाचक्र में स्थिर करके दृष्टि को सम स्थल में अधिक से अधिक दो हाथ और कम से कम एक बालिस्त के अन्तर से किसी मनोनीत पदार्थ की कल्पना में केन्द्रित रखकर स्थिर करना,अथवा चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते व काम करते समय अपने में अपना लक्ष्य रखकर अलक्ष्य का लक्ष्य करना। परा का स्फुरण यशवंती बनकर मध्यमा वैखरी के अर्थ शब्दों की एकता करता है या नहीं इसी का निरीक्षण करना ही अन्तर लक्ष्य है। इसी मुद्रा के करने के कारण शिवजी का नाम शाम्भवी पड़ा।

(२) नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाना चाहिए। इसका यह भाव है कि यदि साधक नेत्रों को अधिक खोलेगा तो विक्षेप होगा और सर्वथा बंद रखने पर आलस्य से चित्त का लय होगा। अतएव भृकुटी के मध्य (अन्तर तत्त्व) में लक्ष्य रखें। अर्थात् नेत्रों को किंचित् खुला रखे जिससे चित्त का लक्ष्य अन्तर्मुख (ध्येयाकार) रहे। दृष्टि बाहर की ओर अर्थात् नेत्र खुले रहते हैं किन्तु बाह्य पदार्थ दिखाई नहीं देते। यह सम्पूर्ण शास्त्रों में गुप्त 'शाम्भवी मुद्रा' कहलाती है।

(३) दोनों भृकुटियों के बीच में दृष्टि जमाकर स्थिर मन से ध्यान के द्वारा परमात्मा का दर्शन करना चाहिए। यह मुद्रा सभी तंत्रों में गोपनीय है। जिसको इस मुद्रा का पूर्णरूप से साधन हो जाता है वह ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। महादेव जी ने इस बात को तीन बार सत्य कहकर निरूपण किया है।

(१०) योगमुद्रा

पद्मासन से बैठकर हथेलियों को एड़ियों पर रखिए। धीरे-धीरे साँस बाहर निकालकर व आगे झुककर माथे को ज़मीन से लगाइए।

यदि अधिक समय तक अभ्यास करना हो तो साधारण ढंग से व पहली अवस्था में आकर साँस ले। हाथों को एड़ियों पर न रखकर पीठ पर भी रखा जा सकता है। बायीं कलाई को दाहिनी कलाई से पकड़े। इससे पेट के सभी विकार दूर हो जाते हैं।

(११) अगोचरी

नासिका के अग्रभाग पर मन को दृढ़ता पूर्वक स्थित करने को अगोचरी मुद्रा कहते हैं।

(१२)भूचरी

नासिका के अग्रभाग से चार अँगुल दूर आकाश में मन को पूर्ण रूप से स्थिर करने को भूचरी मुद्रा कहते हैं।

(१३) चाचरी

आज्ञाचक्र में मन को स्थिर करना। पक्षान्तर में इसे चाचरी मुद्रा भी कहते हैं।

(१४) ज्ञानमुद्रा

पद्‌म-सिद्ध अथवा अन्य किसी ऐसे ही आसन से बैठकर दोनों हाथों के पंजे घुटनों पर खोलकर रखे फिर तर्जनी अँगुलियों को अँगूठों के बीच में इस तरह लगावे कि गोल छल्ला सा बन जावे। इस मुद्रा से ध्यान जमता है।

(१५) षड्‌मुखी मुद्रा

अँगूठों से दोनों कान बंद करना, तर्जनी और मध्यमा से नेत्र बन्द करना और अनामिका-कनिष्ठिका से नासारंध्र को बन्द करके ध्यान लगाने से प्रकाश का साक्षात्कार होता है।

जिनको कब्ज रहता हो उनको योग मुद्रा बहुत देर तक नहीं करनी चाहिए। हृदय की साधारण निर्बलता वालों को उड्डियान व कपालभाति नहीं करना चाहिए तथा जिनके फेफड़े कमज़ोर हों उनको कपालभाति, भस्रिका व उज्जाई कुम्भक करना उचित नहीं, किन्तु केवल रेचक व पूरक उज्जाई करने में हानि नहीं।

उड्डियान, कपालभाति, भस्त्रिका और उज्जाई प्रातःकाल करना चाहिए । कपालभाति, भस्रिका व उज्जाई करने के पहले शौच हो लेना चाहिए। इसका अभ्यास पद्म व सिद्धासन से सुगमता से होता है। कपालभाति व भस्रिका के लिए तो पद्मासन ही अधिक लाभदायक है।

योगमुद्रा, उज्जाई व कपालभाति शाम को भी की जा सकती है।

प्राणायाम में पूर्ण सफलता बंधों की सहायता के बिना नहीं प्राप्त हो सकती। अतएव पहले उनका अभ्यास करना अत्यन्त आवश्यक है। बिना बंध के प्राणायाम कदापि न करना चाहिए अन्यथा लाभ की अपेक्षा हानि होने की सम्भावना रहती है।

बंध तीन प्रकार के होते हैं। (१) मूलबंध (२) जालंधर बंध (३) उड्डियान बंध।

मूलबंध आरम्भ से अन्त तक रहता है। शेष दोनों समयानुसार खोले व बंद किए जाते हैं। प्रत्येक प्रकार पूरक, कुम्भक व रेचक के साथ दो बंध रहते हैं। पूरक के साथ मूलबंध, कुम्भक के साथ मूल व जालंधर ओर रेचक के समय मूल व उड्डियान बंध अवश्य लगाए रहना चाहिए। पूरक समाप्त करते ही कुम्भक के साथ-साथ जालंधर बंध व रेचक के साथ ही उड्डियान बंध लगाना अत्यन्त आवश्यक है।

(१) मूलबंध

गुदा को दृढ़तापूर्वक ऊपर को सिकोड़कर व अपान वायु को ऊपर

खींचने को मूलबंध कहते हैं। प्राणायाम के समय मूलबंध आरम्भ से अन्त तक दृढ़तापूर्वक लगा रहना चाहिए। इस बंध के दृढ़ होने से मलमूत्र का त्याग नियमित रूप से होगा। मलावरोध न होगा। रक्ताभिसरण क्रिया बलवती बनने से नाद खुल जावेंगे। कुण्डलिनी जाग्रत होगी। इसके दृढ़ न होने से फुफ्फुस निर्बल हो जावेंगे। मलावरोध होकर मल बकरी की मेंगनी सा हो जायेगा।

इस बंध के अभ्यास से ब्रह्मचर्य की रक्षा व धातु पुष्ट होती है। कोष्ठ बद्धता दूर होकर जठराग्नि बढ़ती है। वृद्ध लोगों को भी युवा अवस्था प्राप्त होती है। बाल कभी सफ़ेद नहीं होते। जिसने इसे पक्का कर लिया उसके सब विघ्न मिट जाते हैं।

अपान वायु जो मल को बाहर लाती है उसका नीचे की ओर जाने का स्वभाव होता है। इसके अभ्यास में गुदा के सिकोड़ने ओर अपान वायु के बलपूर्वक ऊपर खींचने से वह ऊपर की ओर जाती है। प्राण वायु का अपान वायु से संयोग होकर संयुक्त अपान व प्राण वायु को सुषुम्ना नाड़ी में ले जाती है। तब योगी को योग में पूर्णता प्राप्त होती है। यह योग का एक महत्वपूर्ण रहस्य है। उस अवस्था में योगी संसार के लिए मृतवत् होकर अमरत्व प्राप्त करता है। वह सहस्रार में शिव पद और सभी दैवी विभूतियाँ तथा ऐश्वर्य प्राप्त करता है।

अपान का प्राण से संयोग होने पर अनहद व अन्य अनेक नाद स्पष्ट सुनाई देते हैं। समाधि लग जाती है तथा प्राण, अपान, नाद व बिन्दु का संयोग हो जाता है और योगी को योग में पूर्णता प्राप्त हो जाती है। अग्नि की दीप्ति से मल-मूत्र कम हो जाता है।

(२) जालंधर बंध

गले को आगे झुकाकर ठुड्डी को छाती से कंठकूप की जगह दृढ़तापूर्वक लगाने को ही जालंधर बंध कहते है वायु की उर्ध्वगति को रोकना इस बंध का काम है। इससे सोलह आधारों का बंधन होता है।

इस बंध को भी पूरक के अन्त व कुम्भक के पहले किया जाता है। उक्त क्रिया द्वारा प्राण ब्रह्म नाड़ी से होकर जाता है। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है। सरस्वती नाड़ी को जाग्रत करके प्राण को वश में कर लेना चाहिए। पहले दिन चार बार, दूसरे दिन दस बार और फिर पाँच बार अतिरिक्त कुम्भक करे। तीसरे दिन बीस बार करना पर्याप्त होगा। इसके उपरांत फिर अन्य बंधों के साथ प्रतिदिन पाँच बार बढ़ाते हुए करे।

इस बंध के अभ्यास से प्राण की गति ठीक मार्ग से होती है। उसका अपान से संयोग हो जाता है। इड़ा पिंगला नाड़ी बन्द हो जाती है। जठराग्नि जिसका निवास नाभि प्रदेश है, उस अमृत का पान करती है जो तालुरंध्र द्वारा सहस्रार के बाहर स्रवित होता है। इस प्रकार नष्ट होते हुए अमृत को रोकने के लिए योगी को इस बंध का अभ्यास करना चाहिए। इससे योगी अमृत का पान करता हुआ अमरत्व प्राप्त करता है। जालंधर बंध और महामुद्रा यह दोनों मृत्यु को हटाने वाले हैं।

पूरक के पश्चात् तुरन्त ही इसे लगाना चाहिए। इससे दृढ़ होने से कुम्भक के समय फुफ्फुसों में से वायु उछलकर घण्टिका के ऊपर के भाग में आघात नहीं करती। इस बंध से शरीर के समस्त ज्ञानतन्तु बलवान् होते हैं। क्योंकि उस बंध(विशुद्ध चक्र) का सम्बन्ध पादांगुष्ठ, गुल्फ, जानु (घुटने), उरू(जँघा), सीवनी, नाभि,हृदय, ग्रीवा, विशुद्ध चक्र के नीचे का भाग,कंठदेश (विशुद्ध चक्र के ऊपर का भाग) लम्बिका (घण्टिका),नासिका, भ्रू, कपाल, मूर्द्धा (कान के पीछे का भाग) और ब्रह्मरंध्र इन सोलह आधारों से है। प्राणायाम के समय मस्तिष्क को वायु के आधातों से बचाना इसी बंध पर निर्भर करता है। उसके दृढ़ होने से मस्तिष्क व समस्त ज्ञानतन्तु का रक्षण होता है। इसके दूषित होने से नासिका, नेत्र, मस्तिष्क और कंठ स्थान में विकार व प्रकोपजन्य व्याधि भी हो जाती है।

(३) उड्डियान बंध

पेट को नाभि के नीचे और ऊपर के भाग को रीढ़ अर्थात् मेरुदंड की तरफ़ बलपूर्वक खींचने व ढीला छोड़ देने को उड्डियान बंध कहते हैं। इस बंध को दिन में चार बार करने से प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाभि चक्र तथा सब नाड़ियाँ शुद्ध रहती हैं। यह क्रिया बैठे-बैठे, घुटनों पर हाथ रखकर खड़े-खड़े व दीवार के सहारे की जाती है।

प्राणायाम करते समय कुम्भक के बाद रेचक करते समय उड्डियान बंध खोल देना चाहिए।

उड्डियान बैठकर

पद्मासन से बैठकर हाथ घुटनों पर रखे तथा कुछ आगे झुक कर व पेट को आगे की तरफ़ सिकोड़कर तथा ज़ोर से रेचक करके पेट बिलकुल खाली करने के पश्चात् कुम्भक करे। उसके उपरान्त साँस न लेते हुए अन्दर लेने के समान ही पसलियों को ऊपर उठावें और पेट की नसों को ढीला छोड़ दे। आँतों और नाभि को सिकोड़ कर पीछे की तरफ़ खींचने से पेट ऊपर की ओर उठकर पीठ से सट जाएगा। इस प्रकार पेट पाँच की संख्या की तरह अन्दर-अन्दर की ओर सिकुड़ कर गोलाकर हो जाएगा। अर्थात् नाभि पीछे खिंचकर मेरुदंड से मिल जायगी, इससे फुफ्फुस बलवान् होते हैं।

खड़े होकर

दोनों पैरों के बीच में कुछ अन्तर छोड़ते हुए खड़े होकर कुछ आगे झुकिए व घुटनों को मोड़िए तथा हाथ जाँघों या घुटनों पर रखे व पेट की नसों को पूरी तौर पर अन्दर की तरफ़ सिकोड़ कर पूर्ण रेचक करिए और बाह्य कुम्भक करके साँस बाहर ही रोकिए। जिस प्रकार पूरक करते समय पसलियाँ ऊपर उठती है व पेट की नसें शिथिल

हो जाती हैं उसी तरह साँस अन्दर न लेते हुए पसलियों को ऊपर उठाइए व पेट की नसों को ढीला छोड़ दीजिए। इस प्रकार पेट अन्दर की तरफ़ सिकुड़कर गोलाकार हो जाएगा।

उड्डियान बंध का निरंतर अभ्यास करने से अभ्यासी युवा होकर मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है। सभी बंध कुंडलिनी जागृत करते हैं। यह बंध कुंभक के अन्त और रेचक के आरम्भ में किया जाता है, क्योंकि प्राण इस बंध में उड्डियान करता हुआ उड़कर सुषुम्ना में पहुँचता है। यह मानव जाति के लिए एक बहुत ही उत्तम (सुखप्रद) क्रिया है। इसके अभ्यास से सुन्दर स्वास्थ्य, शक्ति, बल और जीवन शक्ति प्राप्त होती है। जब इसका नौली क्रिया से संयोग हो जाता है जिसमें पेट को मथा जाता है तो यह पेट और आँतों को मुलायम करने मे बहुत ही उपयोगी होता है। पाचन प्रणाली के आमाशय रस और आँतों के विकारों व दुर्बलता, कोष्ठबद्धता दूर करने के लिए योगियों के पास यह दो बड़े शक्तिशाली अस्त्र हैं। इन दो अभ्यासों द्वारा ही पेट के सम्पूर्ण आंतरिक यंत्रों की मालिश व पुष्टि होकर सब विकार दूर हो जाते हैं।

जो लोग नौली का अभ्यास करना चाहें उनको आरम्भ में इस बंध का अभ्यास करना चाहिए। पेट के पूर्व व पश्चात् व्यायामों में इस बंध व नौली का मुक़ाबला कोई भी व्यायाम नहीं कर सकता।

अपान वायु जिसकी स्वाभाविक गति नीचे की ओर रहती है, शरीर को नीचे झुकाकर उर्ध्वगति कर दी जाती है, ऐसा करने पर जब अपान वायु अग्नि स्थान में पहुँचता है तो अग्नि प्रदीप्त हो जाती है, पश्चात् अग्नि और अपान का प्राण की उष्णावस्था से मेल हो जाता है। इस अग्नि से एक प्रकार की ज्वाला निकलती है जो सुषुम्ना व कुंडलिनी को जगा देती है। उस समय कुंडलिनी चोट खाये हुए सर्प की भाँति फुफकार मारती हुई ब्रह्म नाड़ी (सुषुम्ना) के रंध्र में प्रवेश करती है।

पूर्व लिखे अभ्यास के पश्चात् बज्रासन में बैठकर तथा दोनों पैर के अँगूठों को पकड़कर सरस्वती नाड़ी की गति को धीरे-धीरे पहले हृदय तब गर्दन की ओर ले जाना चाहिए। सरस्वती नाड़ी का स्थान पेट के पश्चिमी भाग में नाभि के ऊपर है। जब प्राण नाभि के संधि स्थान पर पहुँचता है तब वह नाभि सम्बन्धी सभी रोगों को दूर कर देता है। अतएव इस बंध का पूरा अभ्यास व उपयोग किया जाना चाहिए, इसे प्राणायाम के समय के सिवाय साधारणतया भी करना चाहिए। इससे त्रिधातु से उत्पन्न होने वाले सब रोग नष्ट हो जाते हैं। इसे शास्त्रकारों ने "मृत्यु मातंगकेसरी" अर्थात् मृत्युरूपी हाथी को पछाड़ने वाला केसरीसिंह बतलाया है। इसके दोषयुक्त होने से फुफ्फुस व आमाशय निर्बल हो जाते हैं।

षट्कर्म

नाड़ी शुद्धि के उपाय

मूल प्रकृति त्रिगुणात्मक होने के कारण प्राणी मात्र के शरीर वात, पित्त व कफ़ इन त्रिधातुओं के नाना प्रकार के रूपान्तरों से सम्मिश्रण हैं। अतः कुछ शरीर वात प्रधान, कुछ पित्त प्रधान और कुछ कफ़ प्रधान होते हैं और आहार-विहार, देशकाल व जलवायु का उक्त धातुओं पर अच्छा बुरा प्रभाव पड़ता है। इन त्रिधातुओं से मल कुपित होने पर नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। इन व्याधियों को उत्पन्न न होने देने व हो गये हों तो उनको दूर करके देह को पूर्ववत् स्वस्थ बनाने के लिए जैसे आयुर्वेदाचार्यो ने स्नेहपान, स्वेदन, वमन, विरेचन व बस्ति यह पंच कर्म बतलाए हैं वैसे ही हठयोग प्रवर्तक महर्षियों ने साधकों के शरीर की शुद्धि के लिए षट्कर्म निश्चित किए है। यह

सब साधकों को करना ही चाहिए ऐसा उनका आग्रह नहीं है। षट्कर्म से होने वाले लाभ प्राणायाम से भी होते हैं, अन्तर केवल समय का है। शरीर के मल को शीघ्र ही दूर करने के लिए षट्कर्मों की आवश्यकता है। समय और अनुभव से यह सिद्ध हुआ है कि प्राणायाम से जितने समय में मल दूर किया जाता है उससे कहीं कम समय में षट्कार्मों से किया जा सकता है। त्रिधातुओं के सम होने पर इन षट्कर्मों को करने की आवश्यकता नहीं है।

षट्कर्म की छः क्रियाएँ नित्य नहीं तो सप्ताह में एक या दो बार करने से पूर्ण शुद्धता होगी ।

षट्कर्म

(१) धौति (२) बस्ति (३) नेति (४) नैलि(५) कपाल भाति(घर्षण) व (६) त्राटक। भक्ति सागर के रचयिता श्री चरणदास जी के कपाल भाति के स्थान पर गजकर्म बतलाया है और फिर कपाल भाति, धौंकनी, वाघी और शंख परवाल को षट्कर्मों के अन्तर्गत कर दिया है।

(१) धौति

चार अंगुल चौड़ा और पन्द्रह हाथ लम्बा साफ़ उम्दा मलमल का कपड़ा लेकर कपड़े की किनारें अच्छी तरह सिल लेना चाहिए जिससे उसके धागे इधर-उधर न निकलें। इस कपड़े को अभ्यास करते समय गर्म पानी में भिगोकर निचोड़ लेने के बाद उसे धीरे-धीरे चबाते हुए पेट के अन्दर पहुँचाकर फिर धीरे-धीरे बाहर निकालना चाहिए। पहले दिन फुट भर बाद में धीरे-धीरे बढ़ाते जाना चाहिए। उसे निगलने के पहले काफ़ी पानी पी लेना चाहिए। आरम्भ में उबकाई आती है परन्तु दो-चार दिन बाद फिर नहीं आती। आठ-दस दिन में पूरा कपड़ा निगलने का अभ्यास हो जाता है। कम

से कम एक हाथ कपड़ा मुँह के बाहर अवश्य निकला रहना चाहिए।

सूत की चढ़ाव उतार अर्थात् क्रमशः पतली व मोटी रस्सी से भी यह क्रिया की जाती है। जैसे-जैसे उसे निगलते हैं वैसे-वैसे ही जल बाहर आने लगता है और रस्सी के अन्दर जाने में सुविधा होती है।

इस क्रिया के अभ्यास से गुल्म, उदर के रोग जैसे कुपच, पित्त की कै, घटिका, कंठ नालिका, वमन, आमाशय में शोथ, ग्रहणी अतिसार, मुँह से रक्त गिरना, कफ़, ज्वर, लम्बगो, दमा, तिल्ली, कुष्ठ, चर्म रोग व कफ़ और पित्त से उत्पन्न होने वाले रोग अच्छे होते हैं। इस क्रिया को रोज़ न करे तो कोई हानि नहीं। सप्ताह में एक दिन कर लेना यथेष्ट है। कपड़े को साबुन से धोकर बिल्कुल साफ़ कर लेना चाहिए। क्रिया के करने के बाद ही कुछ दूध पी लेना चाहिए अन्यथा बड़ी खुश्की होती है।

(२) बस्ति

बस्ति दो प्रकार की होती है (१) पवन बस्ति (२) जल बस्ति। नौलि द्वारा अपान वायु को ऊपर खींचकर पुनः मयूरासन से त्यागने को बस्ति कहते हैं। पवनबस्ति सध जाने पर जल बस्ति सुगम हो जाती है क्योंकि जल को खींचने का कारण पवन ही है। जब जल में डूबे हुये पेट से नौलि हो जाय तब नौलि से जल ऊपर खिंच जाएगा।

इस क्रिया का अभ्यास बाँस या सरकंडा की छः अँगुल लम्बी पुल्ली (जिसमें कनिष्ठिका अँगुली जा सके) अथवा बिना पुल्ली के भी हो सकता है, परन्तु पुल्ली का होना अधिक अच्छा है। साफ़ पानी से भरे हुये टब में उत्कटासन से बैठे। इस प्रकार बैठने से बदन का सारा बोझ पैरों के पंजों पर रहेगा और एड़ियों को खड़ी रखकर उन पर चूतड़ रहेंगे। पुल्ली में वैसलिन, अंडी का तेल या साबुन लगाकर गुदा के अन्दर धीरे-धीरे चार अँगुल डाले और दो अँगुल बाहर रखे तथा गुदा को सिकोड़े पानी धीरे-धीरे गुदा के अन्दर पुल्ली में से जाने लगेगा। पानी के अन्दर पहुँच जाने पर पेट को ख़ूब हिलाने के बाद पानी को बाहर निकाल दे।

इस क्रिया के करने के बाद शीघ्र ही खिचड़ी आदि हल्का भोजन कर लेना चाहिए अन्यथा हानि होने की सम्भावना रहती है। बग़ैर पुल्ली के यह क्रिया करने से भी हानि का भय रहता है। पानी के कीड़े पेट में न जा सकें इसलिये पुल्ली में नीचे की तरफ़ बारीक़ कपड़ा लगा देना चाहिए और पानी पेट से निकालते समय उस कपड़े को हटाकर खड़ा पश्चिमोत्तान आसन करना चाहिए। नदी और तालाबों में इस क्रिया के करने में कीड़ों के जाने का डर रहता है। इस क्रिया को ज्यादा ठंडे पानी में नहीं करना चाहिए। अतएव टब या किसी बड़े बर्तन में शुद्ध और सहन करने योग्य पानी में करना ही उचित होगा। इस क्रिया को करने के पहले धौति और नेति करना चाहिए इसको रोज़ाना न करें।

क्षय, संग्रहणी, भगन्दर, मलाशय, सन्तत ज्वर, मोतीझरा, श्वास प्रकोप वालों आदि को न करना चाहिए।

इस क्रिया के अभ्यास से गुल्म, प्लीहा, मूत्ररोग, जलोदर,पाचन सम्बन्धी विकार, तिल्ली और आँतों के रोग, वायु पित्त और कफ़ के विकार, लिंग व गुदा के रोग भी नष्ट हो जाते हैं। इस क्रिया को सुबह खाली पेट करना चाहिए और क्रिया के बाद एक प्याला दूध पीना या कुछ खा लेना चाहिए। योग सागर में पुराने गुड़, त्रिफला व चीते की छाल के रस से बनी गोली देकर अपान वायु को वश में करके बस्ति का अभ्यास करना चाहिए।

(३) नेति

नेति दो प्रकार की होती है। (१)जल (२) सूत्र ।

(१) **जलनेति**- पहले करना चाहिए। प्रातःकाल मुँह धोने के बाद जो साँस चलती हो (जिस नकुए से) उसी से चुल्लू में जल लेकर और दूसरा नकुआ बन्द कर जल नाक द्वारा खींचे। जल मुख में चला

जाएगा और सिर के पिछले सारे हिस्से में जहाँ मस्तिष्क का स्थान है, गुदगुदाहट, सनसनाहट आदि उत्पन्न होगी। अभ्यास बढ़ने पर यह बन्द हो जाएगी। कुछ लोग नासिका के एक छिद्र से जल खींचकर दूसरे छिद्र से निकालने की क्रिया को जल नेति कहते हैं। एक समय में आध सेर से लेकर एक सेर तक जल जो अधिक ठंडा न हो, एक नासापुट से चढ़ाकर दूसरे से निकाला जा सकता है। एक मर्तबा एक तरफ़ से तो दूसरे समय दूसरी तरफ़ से चढ़ाना चाहिए। इस क्रिया से नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। स्कूल व कालेज के विद्यार्थियों के लिये भी हितकर है। तीक्ष्ण नेत्र रोग अम्ल पित्त और नये ज्वर की दशा में इसे नहीं करना चाहिए। कुछ लोग रोज़ सुबह नासापुट से जल पीते हैं। यह हितकर नहीं, क्योकि जो दोष नाक में होते हैं वह आमाशय में चले जावेंगे। अतएव ऊषापान मुँह से ही करना चाहिए। जल नेति के अभ्यास के अनन्तर सूत्र नेति करना चाहिए।

(२) **सूत्रनेति**- महीन सूत की दस पन्द्रह तार की एक हाथ लम्बी बिना बटी डोर जिसका छः सात इंच लम्बा एक सिरा बटकर क्रमशः पतला बना दिया गया हो। पिघले हुए मोम से चिकना करके जल में भिगो लेना चाहिए। फिर स्निग्ध भाग को भी उसी रीति से कुछ मोड़कर जिस नकुए से श्वास चलती हो उस छिद्र में लगाकर ओर नाक का दूसरा छेद अँगुली से बन्द करके खूब ज़ोर से बार-बार पूरक करने से सूत का भाग मुँह में आ जाता है। उसे तर्जनी और अँगूठे से पकड़कर बाहर निकाल लें। पुनःनेति को धोकर दूसरे छिद्र में डालकर मुँह में से निकालें। कुछ दिन के अभ्यास के बाद एक हाथ से सूत को मुँह से खींचकर और दूसरे नाक वाला हिस्सा पकड़कर धीर-धीरे चालन करे। इसको घर्षण नेति कहते हैं। इसी प्रकार नाक के दूसरे रंध्र से भी, जब वायु उस रंध्र से चल रहा हो, अभ्यास करें इससे भीतर लगा हुआ कफ़ पृथक् होकर नेति के साथ बाहर आ जाता है। नाक के एक छिद्र से दूसरे छिद्र में भी सूत चला जाता है। कुछ

लोग इसे दोष युक्त मानकर इसकी उपेक्षा करते हैं। उसका क्रम यह है कि सूत्र नाक के एक छिद्र से पूरक द्वारा जब खींचा जाता है तो रेचक मुख द्वारा न कर दूसरे रंध्र द्वारा करना चाहिए। इस प्रकार सूत एक छिद्र में आ जाता है इस क्रिया के करने में किसी प्रकार का भय नहीं है। क्रिया सध जाने पर हर तीसरे दिन करना चाहिए। जल नेति रोज़ाना की जा सकती है। नेति डालने से किसी-किसी को छीकें आने लगती हैं, इसलिए एक दो सेकिण्ड ठहर कर नेति डालना चाहिए, डोर बारह अँगुल लम्बी बगैर गाँठ की होनी चाहिए।

इस क्रिया से ललाट शुद्ध होती है, दिव्य दृष्टि होती है। स्कंध, भुजा और सिर की संधि के ऊपर के सारे रोगों को नेति नष्ट करती है। कफ़ से या नेति के कारण नासिका के ऊपर के भाग में दर्द हो, रक्त निकले या जलन हो तो गौघृत दिन में दो तीन बार सूँघे।

पीलिया, कामला, अम्ल पित्त, उर्ध्व रक्त पित्त, पित्त, ज्वर, नासिका में दाह, नेत्र दाह, नेत्रों की लाली, मस्तिष्क दाह, पित्त प्रकोप जन्य रोगों में से कोई रोग हो तो नेति का अभ्यास न करें। पित्त प्रकोप के समय जल नेति का उपयोग हितकर है।

(४) नौलि

(१) पेडू की पेशियों की सहायता से उदर को मथने को नौलि कहते हैं। सिर को नीचे झुकावे, पेट के अन्दर से मुँह के द्वारा जितनी हो सके श्वास बाहर निकाल कर व उसे बाहर ही रोक कर बग़ैर शरीर हिलाए, पेट पीठ की तरफ़ अन्दर खींचे और दाहिने-बाएँ चलावे।

(२) पद्मासन,सिद्धासन अथवा उत्कटासन लगाकर जब शौचादि से निवृत्त हो जाने पर पेट हलका हो जाय तब अभ्यास आरम्भ करे। पेट की हवा मुँह के द्वारा बाहर निकाल दे और पेट को अन्दर पीठ की तरफ सटावे। ऐसा करने से पेट के बीच में दोनों तरफ़ दो नल जुटकर मूलाधार से हृदय तक खम्भे की तरह खड़े हो जाने व बंध जाने पर नौलि सुगम हो जाती है और प्रयत्न करने पर दाहिने-बाएँ

घूमने लगती है। इसी प्रकार अभ्यास करने पर नौलि सिद्ध हो जाती है। इसके आरम्भ करने के पहले पश्चिमोत्तानासन और मयूरासन का कुछ अभ्यास कर लेने से यह जल्दी सिद्ध होती है। जब तक आँत पीठ के अवयवों से भली भाँति पृथक् न हो जाय तब तक आँत उठाने की क्रिया सावधानी से करे अन्यथा आँतें निर्बल हो जाने से रोग उत्पन्न होने का भय रहता है। इस क्रिया को शांतिपूर्वक करना चाहिए।

हृदय की साधारण निर्बलता वालों को नौलि नहीं करना चाहिए।

इस क्रिया से मंदाग्नि का भली प्रकार दीपन,अन्न का पाचन होकर वातादि रोग दूर हो जाते हैं। यह हठ योग की सारी क्रियाओं में श्रेष्ठ है क्योंकि इसके हो जाने पर तीनों बंध सुगम हो जाते हैं, इसलिए प्राणायाम की यह सीढ़ी है।

आँतों में शोथ, क्षतादि दोष, पित्तप्रकोप, पेचिस, संग्रहणी आदि के रोगी को यह क्रिया हानिकारक है।

(५) कपाल भाति

(१)लोहार की भस्त्रा(भाति) के समान अत्यन्त शीघ्रता से क्रमशः रेचक पूरक प्राणायाम को शांतिपूर्वक करना कफ़-दोष का नाशक है। इसी को कपाल भाति कहते हैं। जब सुषुम्ना से अथवा फुफ्फुस से श्वास नलिका द्वारा कफ़-बार-बार ऊपर आता हो अथवा जुकाम हो गया हो तब सूत्र नेति और धौति क्रिया से इच्छित शोधन नहीं होता तब यह कपाल भाति लाभदायक है। इस क्रिया से फुफ्फुस और समस्त कफ़ वहा नाड़ियों में जमा हुआ कफ़ कुछ जल जाता है और कुछ प्रस्वेद द्वारा बाहर निकल जाता हैं। जिससे फुफ्फुस दोषों की शुद्धि होकर फुफ्फुस बलवान् होते हैं। साथ-साथ सुषुम्ना, मस्तिष्क और आमाशय की शुद्धि होकर पाचन शक्ति प्रदीप्त होती है। इस क्रिया को न तो वेग से और न शक्ति से अधिक करना चाहिए। इस क्रिया से आमाशय में जमा संगृहीत दूषित पित्त, पाक न होकर शेष

रहा हुआ आहार रस और विकृत श्लेष्म जल में मिश्रित होकर वमन के साथ बाहर आ जाते हैं। इस क्रिया के करने वालों को भोजन में खिचड़ी या दूध भात खाना हितकर है।

अजीर्ण, धूप में भ्रमण से पित्त वृद्धि, पित्त प्रकोप अन्य रोग, जीर्ण कफ़ व्याधि, कृमि, रक्त विकार व त्वचा रोगादि को दूर करने के लिए यह क्रिया हितकारी है।

उर:क्षत, हृदय की निर्बलता, वमन रोग, उबाक, हिक्का, स्वरभंग, मन की भ्रमित अवस्था, तीक्ष्ण ज्वर, निद्रानाश, उर्ध्व रक्त पित्त, अम्ल पित्त इत्यादि दोषों में, यात्रा में जिस वक़्त वर्षा हो रही हो उस समय यह क्रिया न करे। इस क्रिया को न तो वेग से और न शक्ति से अधिक करना चाहिए।

आवश्यकता न होने पर इस क्रिया को रोज़ न करे। शरद् ऋतु में स्वाभाविक पित्त वृद्ध रहती है उस समय आवश्यकतानुसार यह क्रिया की जा सकती है।

(२) इस क्रिया से साधक भस्त्रिका प्राणायाम के लिए तैयार होता है। पद्मासन से बैठकर हाथ घुटनों पर रखे। लुहार की धौकनी की तरह पूरक और रेचक तीव्र गति से व ज़ोर से करे। इससे शरीर पसीने से तर हो जायेगा। इसमें कुम्भक नहीं है। तीव्र अनुक्रम से एक प्रश्वास के बाद दूसरा बाहर निकाला जाता है। यह शक्तिशाली अभ्यास है। इससे सभी मांस तन्तु कोष, रस, अस्थि-मास, संयोजक शिराएँ और परमाणु काँपने लगते हैं। आरम्भ में प्रति सेकिण्ड एक प्रश्वास की गति रखे और प्रातःकाल दस प्रश्वास का एक चक्र करे। दूसरे सप्ताह में एक चक्र सुबह व एक शाम को करे। तीसरे सप्ताह में दो सुबह व दो शाम को, चौथे में तीन सुबह व तीन शाम को करे। एक चक्र के बाद कुछ देर विश्राम कर ले। बाद में प्रत्येक चक्र में दस प्रश्वास बढ़ाते हुए प्रत्येक चक्र में एक सौ बीस प्रश्वास फेंकने लगे।

इसका अभ्यास खोपड़ी,श्वास प्रणाली और नासिका रंध्रों को शुद्ध करता है। कफ़ के रोग दूर करता है। श्वास की नाली के मरोड़ को दूर करने से दमा अच्छा होता है। फेफड़ों की नलिकाओं में अधिक मात्रा में प्राणप्रद वायु के पहुँचने से क्षय के कीटाणु नहीं ठहर सकते, फलतः क्षय का निवारण होता है। रक्त शुद्ध व उसके विकार दूर होते हैं। हृदय ठीक काम करता है। रक्त, श्वास और पाचन प्रणालियों की अत्यधिक पुष्टि होती है।

इसको प्राणायाम का ही एक अंग समझना चाहिए।

(६) गजकर्म अथवा गजकर्णी

हाथी जैसे सूँड़ से जल खीचकर फेंक देता है, उसी तरह यह क्रिया की जाती है। इसीलिए इसे गजकर्म या गजकर्णी कहते हैं। यह क्रिया भोजन से पहले करना चाहिए। विषयुक्त या दूषित भोजन करने में आ गया हो तो बाद में भी की जा सकती है। रोज दंत धावन के बाद इच्छा भर जल पीकर मुँह में उँगली डालकर उल्टी कर दे। क्रमशः अभ्यास बढ़ जाने पर इच्छा मात्र से जल बाहर निकल आवेगा। पिये हुए जल को नौलि कर्म से भ्रमाकर बाहर निकाल देना अच्छा होता है। जब जल स्वच्छ आने लगे तब समझना चाहिए कि अब मैल मुँह की राह में नहीं है।

(७) त्राटक

बिना पलक गिराये छोटी-सी वस्तु या बिन्दु को एकाग्र चित्त से उस वक्त तक देखें जब तक आँखों से आँसू न गिरने लगें। इससे आँखों के सब रोग अच्छे हो जाते हैं। मन की चंचलता नष्ट होकर शाम्भवी सिद्धियाँ प्राप्त होती है। इच्छा शक्ति बढ़ती है व नेत्र रोगों का नाश होता है। शक्ति उत्पन्न होती है। सफ़ेद दीवाल या कागज़ पर सरसों बराबर काला चिन्ह (बिन्दु) बनाकर उसी पर दृष्टि स्थिर

करते-करते चित्त समाहित और दृष्टि शक्ति सम्पन्न होती है।

उपनिषदों में त्राटक के तीन भेद किए है (१)आन्तर(२) बाह्य (३) मध्य। हठयोग में भेद नहीं है। हृदय व भ्रूमध्य में नेत्र बन्द कर एकाग्रतापूर्वक चक्षुवृत्ति की भावना करने को 'आन्तर त्राटक' चन्द्र नक्षत्र,पर्वत शिखर व दूरवर्ती लक्ष्य पर दृष्टि स्थित करने की क्रिया को 'बाह्य त्राटक' कहते हैं। सूर्य पर त्राटक वर्जित है। काली स्याही से सफ़ेद कागज़ पर लिखे ॐ, बिन्दु, किसी देव की मूर्ति, चित्र, नासिकाग्र या समीपवर्ती अन्य लक्ष्य पर दृष्टि स्थित करने को 'मध्य त्राटक' कहते हैं। केवल भ्रूमध्य की क्रिया को प्रारम्भ में अधिक न करे। त्राटक का अभ्यास करने के पहले कुछ समय तक दीप शिखा की ओर एकटक देखना चाहिए। सफ़ेद पत्थर व स्फटिक के शिवलिंग के अग्रभाग को देखने की पद्धति है। जब दृष्टि स्थिर होने लगे तब एकाग्रता के साथ नासापुट को देखना चाहिए। उससे दिव्य-शक्ति प्राप्त होती है और नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। चाक्षुषी ज्योति बढ़ने पर कुछ भी अदृश्य नहीं रह जाता । त्राटक का अच्छी तरह अभ्यास हो जाने पर पहले आँखें बन्द करके ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार साधन करने पर ध्यान-सिद्ध प्राप्त होती है और इसी का दूसरा नाम ध्यान-योग है। किसी जड़ या कल्पित मूर्ति का ध्यान सिद्ध हो जाने पर फिर सच्चिदानन्द का ध्यान भी हो सकता है। निवातस्थ दीप-ज्योति की ओर त्राटक करने से प्रकाश का साक्षात्कार होता है।

जिनका पित्त प्रधान हो, मस्तिष्क, नेत्र, नाक व हृदय में दाह रहता हो, नेत्रों में जाला, फूला या अन्य रोग हों वे केवल आन्तर त्राटक करें उनको बाह्य त्राटक से हानि होगी। जिनकी दूर की दृष्टि कमज़ोर हो, वात प्रधान हो, शुक्र की निर्बलता हो वे समीप का त्राटक न करें। चन्द्रादि उज्ज्वल लक्ष्य पर त्राटक करे। दोष रहित, त्रिधातु सम, कफ़ प्रधान, नेत्रों की ज्योति पूर्ण वाले मध्य त्राटक करें। गर्मी, सुजाक अम्ल

पित्त, जीर्ण ज्वार, विषम ज्वर, पित्ताशय आदि से पीड़ित, तम्बाकू गाँजा आदि मादक पदार्थ के व्यसनी किसी प्रकार का त्राटक न करें। मानसिक चिन्ता, क्रोध शोक, अध्ययन, सूर्यताप आँच का सेवन करने वाले भी यह अभ्यास न करें। आसनों के अभ्यास के परिपक्व काल में यह अभ्यास करना अधिक लाभदायक है। प्रातःकाल दृष्टि को धीरे-धीरे दाएँ बाएँ, नीचे व ऊपर चलाने से आँखों की नसें दृढ़ होती है। त्राटक के अभ्यास से नेत्र और दिमाग़ में उष्णता बढ़ती है। रोज़ सुबह त्रिफला के या गुलाब जल से नेत्रों को धोवे। कब्ज़ करने वाले पदार्थ न खावे। आँसू आ जाने पर फिर अभ्यास न करे। अभ्यास के लिए रात को दो बजे से पाँच बजे तक का समय उपयुक्त है। एक साल करने से साधक के संकल्प सिद्ध होने लगते हैं। दूसरे मनुष्यों के हृदय के भाव व दूर स्थान के पदार्थ तथा घटना चक्र तक का बोध होने लगता है।

नौलि मध्यम

(१) खड़े होकर आगे उड्डियान में बतलाई अवस्था में ही तत्काल जँघा स्थित के ऊपरी भाग को (पेट के निचले हिस्से को) नीचे दबा व आगे ले जाने वाला इस प्रकार का धक्का दो जिससे कि पेट के आसपास के स्नायु अन्दर सिकुड़कर मध्य के स्नायु अर्थात् नल बाहर निकल आवें इसी समय हाथों से घुटनों पर ज़ोर दे । इस तरह पेट के नल इकट्ठे होकर आसपास के स्नायुओं से अलग हुए दिखेंगे ।

(२) कमर से झुककर दोनो घुटनों पर दोनों हाथ रखें, पेट अन्दर की ओर खींच कर पीठ के नल नीचे की तरफ़ ढकेलने से पेट के नल आप ही आगे आ जाते हैं। स्थूल शरीर वालों से बिना पेट

पिचकाए यह क्रिया नहीं हो सकती। पेट पिचकाने के लिए यह उड्डियान नितांत आवश्यक है।

दक्षिण नौलि

मध्यम नौलि की अवस्था में ही सब शरीर को दाहिनी तरफ़ अधिक परिमाण में आगे फेरकर दाहिने हाथ से दाहिनी जाँघ पर अधिक ज़ोर डाले, पेट के बाएँ भाग को ढीला छोंड दे । ऐसा करने से पेट का दाहिना स्नायु अर्थात् नल सिकुड़कर आगे तथा दाहिनी ओर के कोने में चला जायगा तथा पेट का बायाँ स्नायु अर्थात् नल ढीला पड़ जाएगा। यही दक्षिण नौलि है ।

वाम नौलि

(१) मध्यम नौलि की अवस्था ही में सारे शरीर को बायीं ओर अधिक परिणाम में आगें फेरकर बाएँ हाथ से बायीं जाँघ पर अधिक ज़ोर डाले तथा उसी समय पेट के दाहिने भाग को ढीला छोड़ दे। ऐसा करने से पेट का बायाँ नल सिकुड़कर आगे तथा बायीं तरफ़ के कोने में चला जाएगा और दाहिना नल ढीला पड़ जाएगा।

(२) दाहिनी ओर का पेट अन्दर खींचकर मध्यम व दक्षिण नौलि में बतलाई गई क्रिया के अनुसार वे ही जल दाहिनी ओर से बायीं ओर कुछ देर तक एक रंग चलावे जैसे मथानी चलाई जाती है। इसी प्रकार फिर बायीं ओर से दाहिनी ओर चलावे । जो नौलि करना जानता है उसे पेट का कोई रोग कभी नही हो सकता और जो रोग पहले ही से हो वे भी दो चार महीनों मे ही इस क्रिया से बिना औषधि के दूर हो जाते हैं। यह पूर्ण अनुभविक सत्य है।

प्राणायाम क्या है ?

हमारे धर्मग्रन्थों में लिखा है कि प्राणयाम के साधक के इस जन्म

के ही क्या पूर्व जन्मों तक के पाप नष्ट हो जाते हैं । अतएव इसका अभ्यास करने के पहले यह समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है कि 'प्राणायाम' क्या है । भगवान् पिप्पलाद के एक शिष्य ने उनसे एक मर्तबा यह प्रश्न किया था कि महाराज ! **'कुतः एवं प्राणो जायते'** अर्थात् यह प्राण कहाँ से उत्पत्र होते हैं। तब उन्होंने शिष्य को उत्तर देते हुए समझाया था कि **'आत्मन एव प्राणो जायते'** अर्थात् आत्मा ही से प्राण पैदा होते हैं।

प्राण का इतिहास वर्णन करते हुए उन्होने बतलाया था कि सबसे पहले प्रजापति ने 'रवि' एंव 'प्राण' को उत्पन्न किया । रवि ही प्राण है एवं चन्द्रमा ही रवि (भोग पात्र) है । उन्होंने सब कुछ मूर्त एंव अमूर्त को प्राणरूपी सूर्य के तेज़ का लक्ष्य बताया है ।

उन्होने कहा कि 'जो तप से, श्रद्धा एंव ज्ञान द्वारा आत्मा को ढूंढकर सूर्यलोक को प्राप्त होते हैं वे पुनः जन्म धारण नही करते । कारण कि सूर्य ही प्राणों का आश्रय है, वही मोक्ष है, वही अभय पद है। इसलिए कर्म करने वालों को यह परमाश्रय मिला हुआ है। 'सारांश यह कि प्राण ही सूर्य का रूप है। सूर्य जब अपने आप को खींच लेता है तब प्राणी रूप आदि विभिन्न गुणों से हीन होकर मुक्त हो जाता है क्योंकि प्राणों के द्वारा ही शरीर का सम्बन्ध है। अतएव प्राणों का आश्रय सूर्य इनको खींचकर प्राणी को मुक्त कर देता है।

प्राण की महिमा का वर्णन करते हुए हमारे महान् पुरूषों ने लिखा है कि 'प्राण अग्निरूप से तपता है, सूर्य, मेघ, इन्द्र, वायु, पृथ्वी, रवि (चन्द्रमा का भोग) यही है, सत् एवं असत् भी यही है एवं यही अमृत है।

यह प्राण ही विराट् रूप होकर गर्भ में रहता है, उत्पन्न होता है एंव अन्य प्राणों से स्थित रहता है। देवों आदि को बल प्राण ही पहुँचाता

है, प्राण ही इंद्र है, तेज़स्वी होने के कारण प्राण ही रुद्र है, यही रक्षक है, यही सूर्य का रूप धारण किए हुए आकाश में विचरता है, नक्षत्रों का पति है व मेघ रूप होकर वर्षा करता है तथा प्रजा के प्राणों की रक्षा करता है ।

इसी प्राण के नियंत्रण का नाम प्राणायाम है । प्राणायाम करते समय सप्त व्याहृति (१)भू: (२)भुव: (३)स्व: (४)मह:(५) जन:(६) तप:(७)सत्यम् सहित गायत्री मंत्र का मन से चिन्तन करता हुआ नेत्रों को बन्द करके पूरक करें व पश्चात् उपर्युक्त मंत्र की तीन आवृत्ति करता हुआ कुम्भक करे, इसके बाद एक बार स्मरण करता हुआ रेचक करे। लेकिन कुछ योगाचार्यों का कहना है कि उक्त मंत्र का ध्यान असम्भव है । अतएव प्रणव का जाप करने से ही प्राणायाम सिद्ध हो जाता है। प्रणव की संख्या निश्चित करके उससे पूरक करे, उससे चार गुना प्रणव का जप करते हुए कुम्भक करे और पूरक की दुगनी संख्या में रेचक करे । इस अभ्यास से यम, नियम, आसन, धारणा और ध्यान स्वत: सिद्ध हो जाते हैं। इसके उपरांत समाधि प्राप्त हो जाती है व समाधि के द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार हो जाता है ।

प्राण पूजा स्वात्म पूजा है अत: परमात्मा की एवं चेतन की पूजा है। इस पूजा में ज़रा भी मन लगाने वाला संसार से पार हो सकता है क्योंकि प्राणवायु ही पंचमहावायुओं में मुख्य होने के कारण मुक्ति को प्रदान करने वाली है। अतएव जो पुरूष प्रणव मंत्र ॐका जप करते हुए प्राणायाम करता है वह सूर्य में निवास करता है और पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में वास करता हुआ परमात्मा में लीन हो जाता है ।

प्राण क्या है?

श्रीमद्भगवत् गीता महात्म्य में भी लिखा है कि प्राणायाम परायण

पुरुष के इस जन्म के ही क्या पूर्व जन्म तक के पाप नहीं रहते, यही कारण है कि सभी लोग इसे जानने को उत्सुक रहते हैं। अतएव पहले यह जान लेना भी अत्यन्त आवश्यक है कि प्राण क्या है ? अस्तु यदि प्राण शब्द की व्याख्या कर दी जाय तो प्राणायाम के अर्थ शीघ्र ही समझ में आ जावेंगे ।

उपनिषद् की कथा है कि एक बार शरीर के सभी अभिमानी देवताओं ने अपने-अपने वश की हुई इन्द्रियों द्वारा विचार कराया कि उन सब में कौन श्रेष्ठ है? आकाश, वायु, अग्नि, पृथ्वी, वाणी, मन, चक्षु व श्रोत्र ने अपनी-अपनी महिमा वर्णन करते हुए कहा कि हम ही इस शरीर को धारण किये हैं । तब प्राण ने कहा अरे मूर्खों! आत्मा के लिये पाँच रूप में विभक्त होकर मैं ही इस शरीर को धारण किये हूँ, परन्तु उनके विश्वास न करने पर जब प्राण शरीर छोड़कर जाने लगा तब सब इन्द्रियाँ नष्ट होने लगीं । अतएव जब सभी ने प्राणों को विनय करके रोका तब सब स्थित रह सके। प्रश्नोपनिषद् में प्राण को 'व्रात्य' कहा है। 'व्रात्य' का अर्थ है जिसके परे कोई न हो। प्राणों के सम्बन्ध में उसमें आगे यह भी कहा है- **'प्राणस्वेदं वशे सर्वं त्रिदिवेयत्प्रतिष्ठितं मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि न इति'** अर्थात् यह सब प्राण के वश में है और स्वर्ग में जो कुछ है वह हे प्राण! तेरे वश में है। हे प्राण! माता के समान पुत्रों का पालन कर। लक्ष्मी एवं सरस्वती व श्री एवं प्रज्ञा को हमें दे। इसी प्राण के नियंत्रण को प्राणायम कहते हैं।

जैसे सम्राट् अपने अधीन राजाओं का शासन बाँट देता है इसी प्रकार यह प्राण दूसरे प्राणों को अलग-अलग उपदेश देता है। उपनिषद् में अपान आदि वायु भी प्राण के नाम से पुकारे जाते है। उसमें लिखा है कि मुँह व नाक में प्राण वायु रहता है। इस प्राण को सप्तार्चिष कहा है क्योंकि दो कान, दो नेत्र, दो नासारंध्र व एक मुँह। यह प्राण की

सात अग्नि स्वरूप ज्योतियाँ हैं।

श्रुति का यह महत्वपूर्ण वाक्य है कि जिसने प्राण तत्त्व को जान लिया उसने वेद को जान लिया। इसी कारण वेदान्त सूत्रों में भी यह लिखा है कि श्वास प्रश्वास ही परब्रह्म है। क्योंकि उसी की सहायता से हम सब काम करते हैं। इस ब्रह्मांड में जो कुछ भी शक्ति है प्राण उसका मूल तत्त्व है। प्रकृति की सारी शक्तियों का आधार प्राण ही है अर्थात् मनुष्य व अन्य सब प्रकार की गुप्त व प्रकट शक्तियों का आधार प्राण ही है। प्राण का सम्बन्ध परमात्मा से है। यदि मन के द्वारा कार्य करने वाली प्राण की साधारण क्रियाओं को अपने वश में कर लें तो हम प्राण के भेद को भली भाँति सीख लेंगे। जो योगी इस भेद को अच्छी तरह जान जाता है वह किसी भी शक्ति से नहीं डरता क्योंकि उसे विश्व की प्रत्येक शक्ति पर पूर्ण अधिकार हो जाता है। प्रलय के समय यह प्राण सूक्ष्म रूप में पड़ा रहता है और प्रलय के पश्चात् आकाश में कार्य करना आरम्भ कर देता है जिसके फलस्वरूप तमाम वस्तुओं का निर्माण होता है। प्राण और पदार्थ के मिश्रण से ही ब्रह्मांड और पिंड बनते हैं।

इच्छा शक्ति के अधिकार में विचारों को करके उनके अनुसार श्वास लेने से एक अपूर्व शक्ति प्राप्त हो सकती है। इस शक्ति द्वारा आत्मोन्नति, अपने तथा दूसरों के असाध्य रोग और दुःख दूर किये जा सकते हैं। अपने जीवन में इसका बड़ी सुगमता से प्रयोग किया जा सकता है। कितने ही महात्माओं ने व योगियों ने इसका प्रयोग किया है व कर रहे हैं। प्राणायाम व श्वास सम्बन्धी अन्य क्रियाओं को करके आप भी वैसा कर सकते हैं। प्राणायाम के करते समय प्राण की अदृश्य शक्तियों का अपने अन्दर अनुभव कीजिए। योगी बनकर अपने चारों ओर प्रसन्नता, प्रकाश व शक्ति का अनुभव कीजिए।

प्राण का महत्त्व

महर्षि पिप्पलाद ने भरद्वाज ऋषि से कहा था कि यह प्राणादि जिससे उत्पन्न हुए हैं वह आत्मा इसी शरीर में अंगुष्ठ मात्र होकर हृत्कमल में निवास करता है। सृष्टि के विषय में उसने बिचार किया कि सबका आश्रय तो मैं हूँ मेरा आश्रय क्या होगा, तब उसने प्राण की उत्पत्ति की। प्राण से श्रद्धा उत्पन्न की, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, दशों इन्द्रियाँ, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म एवं लोक प्रसिद्ध नामादि रचे। जो इस महाप्राण व इसके महत्त्व को जानता है वह अमर हो जाता है

स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आवरीवर्ति भुवनेष्वन्तः

ऋ०वे०१/१६४/३१/१०/१७७/३

इस मंत्र के दृष्टा दीर्घतमा ऋषि कह रहे हैं कि मैनें प्राण को देखा है, साक्षात्कार किया है। यह प्राण सब इन्द्रियों का गोपा (रक्षक) है। यह कभी नष्ट होने वाला नहीं है। यह भिन्न-भिन्न मार्गों अर्थात् नाड़ियों के द्वारा आता और जाता है। मुख तथा नासिका के द्वारा क्षण-क्षण यह शरीर में आता है और फिर बाहर चला जाता है। यह प्राण शरीर में अध्यात्म रूप में, वायु के रूप में है, परन्तु अधिदैवत रूप में सूर्य हैं।

इस समस्त विश्व के देव, मनुष्य तथा पशु आदि समग्र प्राणी प्राण वायु के द्वारा व्याप्त हैं। प्राण अमृतरूप है। जब तक इसका देह में वास है, यह शरीर मृत्यु को प्राप्त नहीं होता।

यह प्राण शरीर में स्वधा-अन्न के द्वारा ही स्थित है। यह मलमूत्रादि के निकालने के लिए अधोभाग में जाया करता है। तथा साँस के लिए मुखादि उर्ध्व भाग में संचरण किया करता है। अर्थात् वह अपान तथा प्राण के रूप में शरीर में सर्वदा संचार किया करता है। प्राण अमर्त्य

है-अर्थात् मृत्यु रहित है, परन्तु वह मरण धर्म वाले शरीर के साथ सदा एक स्थान पर निवास करता है। यह प्राण और शरीर विविध व्यापार सम्पन्न हैं तथा आपस में विरूद्ध हैं। क्योंकि मृत्यु हो जाने पर शरीर पृथ्वी पर गिर जाता है, परन्तु प्राण ऊपर लोकान्तर में चला जाता है। इन दोनों में देह को मनुष्य अन्नपान के द्वारा बढ़ा सकता है, परन्तु प्राण को अन्न और पान से कोई भी नहीं बढ़ा सकता।

प्राण का स्थान

अन्तःकरण ही प्राण का स्थान है। यद्यपि अन्तःकरण भी एक ही है फिर भी उसके भिन्न-भिन्न कार्यों के अनुसार चार रूप माने जाते हैं। (१) मानस (२)बुद्धि (३) चित्त (४) अहंकार।

वायु दस प्रकार की होती हैं।(१)प्राण (२) अपान,(३) व्यान (४) उदान (५) समान (६)नाग (७) कूर्म (८)कृकल (९) देवदत्त (१०) धनंजय।

प्राण वायु का आधार अपान वायु है, अपान, व्यान के अधीन है, व्यान, उदान पर अवलम्बित है और उदान का नैसर्गिक सम्बन्ध समान वायु से है। समान वायु की समानता, एकरसता, अखंड रूप से बनी रहे बस इसी में आनन्द, कल्याण और शांति है। उसके असमान होने पर ही काल प्राणी पर अपना अधिकार जमा लेता है।

यद्यपि प्राण एक ही है फिर भी इसके भिन्न-भिन्न कार्यों के अनुसार आगे लिखे पाँच रूप माने जाते है।

(१) प्राण (२) उदान (३)व्यान (४)समान और (५) अपान। इसे वृत्त भेद व प्रधान प्राण को मुख्य प्राण कहते हैं। प्राण के रहने का स्थान अन्तःकरण है। उपर्युक्त वायुओं के भिन्न-भिन्न स्थान व कार्य आगे लिखे जाते हैं।

(१) प्राण वायु का स्थान शिर है। हृदय के ऊपर के कार्य प्राण वायु द्वारा होते हैं। थूकना, छींकना, डकार, श्वास को छोड़ना, अन्न प्रवेश आदि इसके कार्य हैं। याद रहे कि श्वास-प्रश्वास प्राण वायु नहीं बल्कि वह प्राण है।

(२) उदान वायु का प्रधान स्थान वक्ष,विचरण स्थान कंठ, नाभि, नासिका व गला हैं। प्रवृत्ति, स्मृति, बल, पराक्रम, सुमति, वरण, वाणी व प्रयत्न आदि इसके कार्य हैं।

(३) व्यान का प्रधान स्थान हृदय है। इसका सब अङ्ग में संचार रहता है। बड़ा वेग वाला, नीचे ऊपर को फेंकना, गति, निमेष व उन्मेष आदि इसके कार्य हैं।

(४) समान का स्थान अन्याशय के समीप है। कोष्ठ अर्थात् आमाशय से गुदा तक विचरण करता है। अन्न को ग्रहण, पाचन व अलहदा करता व फेंकना इसका कार्य है।

(५) अपान वायु का स्थान गुदा है। कंठ, वस्ति, मूत्रेन्द्रिय, जानु व योनि में विचरण करता है। वीर्य, मासिक धर्म, मल, मूत्र व गर्भ बाहर निकालना इसके कार्य हैं।

श्वास की गति

मनुष्य के शरीर में आने-जाने वाली श्वास की गति का प्रमाण व उसके निरोध से होने वाले लाभ अलहदा प्रकरण में दिए गए हैं।

प्राणायाम की व्याख्या

पातंजल योग का सूत्र है- **'श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः'**

यह श्वासायाम योग है प्राणायाम नहीं। श्वास की अपेक्षा प्राणशक्ति अधिक सूक्ष्म है इसलिए सूत्र का अभिप्राय यह मालूम होता है कि श्वासायाम साधने से पीछे प्राणायाम स्वत: होने लगेगा। पातञ्जल योग सूत्र के अध्याय २ सूत्र ४८ की व्याख्या के अनुसार इच्छानुसार श्वाँस लेने और छोड़ने की क्रिया पर अधिकार प्राप्त करने का नाम प्राणायाम है, जो कि आसन सिद्ध होने पर ही प्राप्त होती है।

प्राणायाम एक पूर्ण वैज्ञानिक विद्या है। नासिका द्वारा अन्दर ली जाने वाली साँस को 'श्वास' और नसिका ही से बाहर जाने वाली श्वास को 'प्रश्वास' कहते हैं। श्वास जीवनदाता प्राण का बाह्य तथा स्थूल रूप है। स्थूल श्वास के सूक्ष्म रूप को ही प्राण कहते हैं। स्थूल श्वास के ऊपर नियंत्रण करने से सूक्ष्म प्राण के ऊपर भी नियंत्रण किया जा सकता है। प्राण के ऊपर नियंत्रण होने से मन पर नियंत्रण हो जाता है। प्राण की सहायता बिना मन काम ही नहीं कर सकता। प्राण की गति से ही मन मे चंचलता उत्पन्न होती है। यह सूक्ष्म प्राण ही है जिसका मन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। श्वास शरीर के लिए उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि इंजन का वह पहिया जिसके चलाने से वह चलता और रुक जाता है। जिस तरह ड्राइवर द्वारा उस पहिये के रोकने ही से इंजन के सब कल पुर्जों का काम करना रुक जाता है उसी तरह योगी के श्वास रोकते ही शरीर के सब अङ्ग काम करना बन्द कर देते हैं। इसी प्रकार यदि आप स्थूल श्वास पर अधिकार कर सकते हैं तो जीवन दाता प्राण पर भी सफलता पूर्वक पूर्ण अधिकार हो जाएगा। जिस उपास से श्वास और प्रश्वास की गति पर नियंत्रण किया जाता है अर्थात प्राणों के आयाम को प्राणायाम कहते हैं।

गीता अध्याय ४ श्लोक २९ में लिखा है कि अपान वायु में प्राण वायु का तथा प्राण वायु में अपान वायु का प्रवेश करे और फिर प्राण व अपान दोनों की गति को रोके। इसी क्रिया का नाम प्राणायाम है।

योगिराज काकभुशुण्डि जी ने वशिष्ठ जी को बतलाया था कि १६ मात्रा काल बाहर जाने की तरह यादि प्राण १६ मात्रा ही भीतर भी लिया जाय तो वह प्राण शरीर के लिए बहुत लाभदायक हो, परन्तु स्वाभाविक रीति से १२ मात्रा ही प्राण श्वास के साथ अन्दर जाता है। जो लोग अभ्यास के द्वारा श्वास और प्रश्वास में आने जाने वाले प्राण की मात्रा बराबर कर लेते हैं वे अमर सुख भोगते हैं।

जो प्राण वायु भीतर १२ मात्रा तक रोका जा सके उसे पूरक वायु कहते हैं। जब अपान वायु बाहर से शरीर में बिना किसी परिश्रम के प्रवेश करता है उसे भी पूरक कहते हैं। जब अपान वायु भीतर जाकर लोप हो जाता है और प्राण वायु हृदय में परिपूर्ण हो जाता है इतने समय को कुम्भक कहते हैं। इन सब का अनुभव योगी लोग करते रहते हैं। शरीर में जब प्राण वायु हृदय के बाहर सर्वत्र व्याप्त हो जाता है और मस्तिष्क को बिना कष्ट पहुँचाए बाहर निकलता है तो उसे रेचक कहते हैं। जब बाहर से प्राण वायु नासिका में प्रवेश करता है और वही नासिका की जड़ में रुका रहता है तब उसे बाह्य पूरक कहते है। जब वह वहाँ से चलता है तो १२मात्रा तक नीचे चला जाता है। तब भी वह बाह्य पूरक कहलाता है। जब यह प्राण वायु बाहर आकर रोक दिया जाता है और अपान भीतर प्रवेश करता है तथा रोका जाता है तब उसे बाह्य कुम्भक कहते हैं। जब अपान वायु शरीर में उर्ध्व गति की ओर चलता है तब यह बाह्य रेचक कहा जाता है। यही सब अभ्यास मोक्ष के साधन हैं। अतः इन पर सदा विचार करना चाहिए। जिन्होंने इनको समझ लिया है और बाह्य तथा अभ्यन्तर कुम्भक का अच्छी तरह अभ्यास कर लिया है, वे लोग आवागमन से मुक्त हो जाते हैं।

ऊपर लिखे मेरे बताए हुए आठों उपयों का अभ्यास करने से मोक्ष प्राप्त होती है। इनका रात दिन अभ्यास करना चाहिए। जो लोग शान्तिपूर्वक इनका अभ्यास करते हैं तथा अपने मन को वश में करके

स्थिर कर लेते हैं उनको कुछ समय में निर्वाण पद की प्राप्ति हो जाती है। इसका अभ्यास करने वाले चाहे वे चलते हों, खड़े हों, जागते-सोते सदा अभ्यास करते रहते हैं।

बाहर गया हुआ प्राण १२ मात्रा काल में फिर लौटकर हृदय में प्रवेश करता है। इसी तरह बाहर निकला हुआ अपान वायु भी १२मात्रा काल में हृदय में लौट आता है। अपान चन्द्र(इड़ा नाड़ी का संचारी) होने से अपने संचार काल में सारे शरीर को शीतल रखता है, परन्तु प्राण वायु की सूर्य संज्ञा होने से उसके संचार के समय शरीर में गर्मी पैदा होती है और इस समय पेट की हरएक चीज़ पक कर पच जाती है। उस मनुष्य के शरीर में जो ऐसी उच्चावस्था में पहुँच चुका है जहाँ प्राण(सूर्य) अपान(चन्द्रमा)की कलाओं को अपने में लीन करता रहता है, तथा जिस अवस्था में प्राण (सूर्य)की कलाओं का पान अपान (चन्द्रमा) करता है,क्या ऐसी अवस्था में सुख लूटने वाले का पृथ्वी पर फिर जन्म होगा? इस सम अवस्था मे पहुँचकर जहाँ प्राण अपान का (सूर्य चन्द्रमा)और अपान प्राण का (चन्द्र सूर्य का)परस्पर पान करते हैं, जीव जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है। जहाँ प्राण और अपान एक दूसरे में लीन होते रहते हैं ऐसी समानावस्था का निरन्तर आनन्द लेने वाली आत्मा (साधक) धन्य है। जहाँ प्राण और अपान दोनों जाकर लीन होते हैं। ऐसे नासाग्र पर आकाश विहारी चिदात्मा का वास है, जिनका साधक निरन्तर ध्यान करता है। इसी तरह प्राणों पर अधिकार प्राप्त करने के उपाय द्वारा साधक सर्वोच्च, विशुद्ध तथा सब प्रकार के द्वन्द्वों से रहित तत्त्व को पाता है।

प्राणायाम का महत्त्व

भारतवर्ष में प्राणायाम का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। प्रातःकाल, दोपहर व सायंकाल प्रत्येक मनुष्य के लिए पूजा, संध्या व प्राणायाम करना अत्यन्त आवश्यक है। हिन्दुओं के सभी धार्मिक कार्य प्राणायाम से ही आरम्भ होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि प्राणायाम से मन के उसी कार्य में लग जाने से सफलता अवश्य प्राप्त होगी।

संसार में प्रत्येक वस्तु का संचालन जीवनशक्ति करती है और जो मानसिक संसार में विचार के रूप में रहती है उसी का नाम प्राण है। मनुष्य के स्नायुओं से निरन्तर निकलने वाली जीवन शक्ति को अधिकार में लाने की क्रिया को प्राणयाम कहते हैं। यही प्राणशक्ति मांस पेशियों का चालन करती है और बाह्य जगत् का अनुभव कराती है व इसी से आभ्यन्तरिक विचार उत्पन्न होते हैं। इसी शक्ति को हम पाशविक शरीर का शक्तिसार कह सकते हैं। प्राणायाम द्वारा इसी शक्ति पर अधिकार करना योगियों का लक्ष्य होता है। जो इस शक्ति पर अधिकार कर लेता है वह स्थूल और सूक्ष्म जगत् में अपनी स्थिति पर ही नहीं बल्कि सारे विश्व पर विजय प्राप्त कर लेता हैं। प्राण ही विश्व जीवन का सार है, इसी के सूक्ष्म सिद्धान्त पर सारे ब्रह्मांड का रूप प्रस्तुत हुआ है और यही दैवी शक्ति विश्व को अन्तिम लक्ष्य तक ले जाती है। सारा विश्व ही योगी का शरीर है। जिन पदार्थो से उसका शरीर बना है उसी से विश्व की उत्पत्ति हुई। अर्थात् जिस महाशक्ति के द्वारा सारे विश्व का संचालन हो रहा है उससे उसके शरीर को संचालन करने वाली शक्ति भिन्न नहीं है। अतएव शरीर के ऊपर विजय प्राप्त करने के अर्थ हैं प्रकृति की शक्ति के ऊपर अधिकार करना।

प्रकृति की सारी शक्तियाँ विश्व प्राण के ही भिन्न रूप में हैं। प्राण

से ही यह विभिन्न नामधारी शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं और प्राणों में ही लीन हो जाती है। सारांश यह कि इस विश्व की सब तरह की शारीरिक व मानसिक शक्तियों का आधार यही मूल प्राण शक्ति है। किसी भी पदार्थ में इन दोनों के सिवाय और कोई तीसरी चीज़ नहीं होती। योग के अनुसार प्राणायाम का वास्तविक अर्थ है वह साधन जिससे हम जीवन शक्ति प्राण के रहस्य का ज्ञान और उस पर अधिकार प्राप्त करें।

उक्त प्राण पर जिसने अपना अधिकार कर लिया उसने विश्व जीवन के मर्म को जान लिया। जिसने इस पर अपना नियन्त्रण कर लिया उसने केवल अपने शरीर पर ही नहीं बल्कि विश्व के सब आकारवान् जीवों और वस्तुओं पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार प्राणायाम, जिसके अर्थ हैं प्राण पर अधिकार, वह साधन है जिसके द्वारा योगी अपने शरीर में विश्व जीवन का अनुभव और विश्व की सारी शक्तियों पर अधिकार प्राप्त कर पूर्णता प्राप्त करता है।

प्राणायाम के अभ्यास के आरम्भ में पसीना आने लगता है फिर पद्मासन से बैठा हुआ योगी मेढ़क की तरह उछल कर आगे बढ़ने लगता है। कुछ और अधिक अभ्यास करने पर वह भूमि से ऊपर उठने व पश्चात् अन्य अद्भुत कार्य करने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। कैसा ही कम या अधिक दर्द का उसके शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। योगी मानसिक तथा शारीरिक विकारों से परे हो जाता है। थोड़ा और अधिक अभ्यास करने से उसमें भूचर ऐसी महत्त्वपूर्ण सिद्धि प्राप्त करने की शक्ति आ जाती है जिससे कि वह समस्त प्राणियों को अपने वश में कर सकता है। योगी का शरीर कामदेव की भाँति अत्यन्त सुन्दर हो जाता है और वीर्य धारण करने से उसके शरीर से सुगन्ध निकलने लगती है।

शरीर कुछ दुबला परन्तु बलवान् और स्वस्थ हो जाता है। चेहरे पर

तेज़ आ जाता है। आँखों में हीरे जैसी ज्योति चमकने लगती है। शरीर सुन्दर, वाणी मधुर व सुरीली हो जाती है। सर्व प्रकार के रोगों से छुटकारा पा जाता है। ब्रह्मचर्य स्थिर हो जाता है। अप्सराओं के आलिंगन करने पर भी वह ब्रह्मचर्य से नहीं डिगता। अनहत्त शब्द सुनाई देने लगता है। रजोगुण व तमोगुण का नाश हो जाता है। मन धारणा और ध्यान के उपयुक्त हो जाता है। मल त्याग कम होता है। दृढ़ अभ्यास से दिव्य ज्योति जगती है।

प्राणायाम के अभ्यास से संसार को स्थाई बनाने वाला राग, रूप, मोह शनै-शनैः नष्ट हो जाता है और धारणा ध्यान के लिए सामर्थ्य प्राप्त हो जाती है। मनु महाराज ने कहा है कि:-

दहन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।

तथेन्द्रियाणां दहन्ते दोषाः प्राणस्य संक्ष्यात्।।

अर्थात् जिस तरह सुवर्ण आदि धातु अग्नि में तपाने से उनका मैल दूर हो जाता है, उसी तरह प्राणायाम से इन्द्रियों के दोष दग्ध हो जाते हैं।

'तपो न परं प्राणायामात्ततो विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्येति'

अर्थात् प्राणायाम के बराबर दूसरा कोई तप नहीं है, इससे दोषों की शुद्धि और ज्ञान की दीप्ति होती है। यह बड़ा ही उत्तम साधन है इसके सिद्ध होने से विवेक ज्ञान को आवृत करने वाले पाप और अज्ञान का क्षय हो जाता है तथा मन स्थिर होकर धारण के योग्य हो जाता है।

प्राणायाम के समय प्रणव का उच्चारण अ,उ,म्(ओउम्)तीनों मात्राओं के साथ करने से पूर्व जन्म के पापों का नाश हो जाता है। प्रणव मंत्र सभी पापों और बाधाओं को नष्ट कर देता है। इसका अभ्यास करने से योगी आरम्भावस्था को प्राप्त करता है। योगी के

शरीर से पसीना निकलने लगता है, जब पसीने से शरीर तर हो जावे तो योगी को चाहिए कि वह हाथों को मल ले। शरीर में कपकपी होने लगती है व कभी-कभी शरीर मेंढ़क की भाँति उछलने लगता है।

घटावस्था

श्वास को निरन्तर दबाने से दूसरी घटावस्था प्राप्त होती है। जब प्राण अपान का, मन और बुद्धि का या जीवात्मा और परमात्मा का बिना किसी विरोध के पूर्ण मिलाप हो जाता है तभी घटावस्था प्राप्त होती है। इस अवस्था को प्राप्त योगी पहले बतलाए हुए समय के चतुर्थांश काल तक ही अभ्यास कर सकता है, दिन भर में तीन घंटे तक ही अभ्यास हो जाना चाहिए। दिन भर में एक बार कुम्भक का भी अभ्यास होना उचित है। श्वाँस निरोध के समय इन्द्रियों को पूर्ण रीति से इन्द्रिय सुख पदार्थों से हटाना ही प्रत्याहार कहा जाता है। सभी जगह वह आत्मा का ही रूप आत्मा का ही शब्द सुनता है व आत्मा के रूप में ही स्पर्श करता है। तभी योगी भिन्न-भिन्न प्रकार की अद्भुत शक्ति प्राप्त कर लेता है और तभी वह क्षण में सैकड़ों कोस दूर जा सकता है, अद्भुत भाषण शक्ति प्राप्त कर लेता है, अदृश्य भी हो सकता है तथा लोहे को सोना बनाने आदि की शक्ति प्राप्त कर लेता है, परन्तु उसे इन शक्तियों का प्रयोग न कर तथा अज्ञानियों की भाँति रहकर अपनी शक्तियाँ गुप्त रखना चाहिए, जो कोई इन कार्यों में लग जाता है वह योगाभ्यास भूल जाता है। अतः गुरु के वचनों का स्मरण करते हुए सिवाय निरन्तर योगाभ्यास के और कोई अभ्यास न करना चाहिए। इस प्रकार योगी घटावस्था को भी पार कर लेता है।

परिचयास्था

इसी प्रकार अभ्यास करने से परिचयावस्था प्राप्त होती है। कठिन अभ्यास से वायु, अग्नि के साथ विचार बुद्धि से कुंडलिनी को

बेधता हुआ सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करता है। प्राण के साथ चित्त सुषुम्ना में प्रवेश करता है तो वह कपाल में सर्वोच्च स्थान पर पहुँचता है। जब योगी योगाभ्यास से क्रिया शक्ति प्राप्त कर लेता है ओर षट्चक्रों को बेधता हुआ परिचयावस्था में पहुँचता है तब वह कर्मफल के तीनों रूपों को भली-भाँति समझ लेता है। उस समय योगी प्रणव (ॐ)की सहायता से कर्म के अनेकत्व को मिटा दे। ''कायव्यूह''की पूर्ति करे। ''कायव्यूह'' वह रहस्यमय अवस्था है जिसमें शारीरिक बंधों द्वारा अनेक शरीर धारण करते हुए पूर्व कर्मो को पूनर्जन्म की आवश्यकता के बिना निःशेष कर दिया जाता है। उस समय महायोगी पाँच प्रकार की धारणाओं का अभ्यास करे अर्थात् ध्यान के वे रूप जिससे कि पंचतत्त्वों पर अधिकार प्राप्त होता है ओर फिर हानि का भय नहीं रहता। पंचतत्त्वों पर अधिकार प्राप्त करने के अभ्यास की विधि 'पंचतत्त्वों की धारणा' शीर्षक प्रकरण में दी गई है।

निष्पत्ति अवस्था

यह प्राणायाम की चौथी अवस्था है। धीरे-धीरे अभ्यास करने से योगी इस अवस्था को प्राप्त कर लेता है। इसमें योगी अपने सभी कर्म बीजों का नाश करके अमरत्व रूपी अमृत का पान करता है। उसे भूख, प्यास, निद्रा आदि नहीं सताते। वह बिल्कुल स्वाधीन होकर कहीं भी बिना रोक टोक के जा सकता है। उसे पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता। वह सभी रोगों व शरीर के वृद्धत्व व नाश से मुक्त हो जाता है तथा समाधि के आनन्द का उपभोग करता है। उसे फिर योगाभ्यास की आवश्यकता नहीं रहती, वह जिह्वाग्र से वायु पान कर सकता है और प्राण व अपान की क्रियाओं व नियमों को जानकर मोक्ष का अधिकारी हो जाता है।

योग का धीर अभ्यासी जैसे-जैसे नियमानुकूल अभ्यास में उन्नति करता है वैसे-वैसे वह स्वभावतः सभी अवस्थाओं का अनुभव करने लगता है। अधीर अभ्यासी शीघ्रता व अनियमितता के कारण किसी

भी अवस्था को नहीं प्राप्त कर पाता।

प्राणायाम का मन्त्र

प्राणायाम करने के समय का मंत्र ईश्वर गीता में बतलाया गया है। कुम्भक के समय का अभ्यासी आरम्भ में सप्त व्याहृतियों के साथ तीन बार गायत्री का जप करे और अन्त में शिरस और आदि व अन्त में प्रणव (ॐ) कहे। इसी को श्वास प्राणायाम का नियंत्रण कहते हैं। प्राणायाम के पूरक, कुम्भक व रेचक तीनों अङ्ग प्रवण के तीनों अक्षरों से मेल खाते है अतएव प्रणव ही को प्राणयाम कहा गया है।

योगी याज्ञवल्क्य जी के मतानुसार 'प्राण और अपान' वायुओं को प्राणयाम द्वारा रोक कर अर्थात् कुम्भक के समय प्रणव का जप करना चाहिए।

स्मृतियों की आज्ञा है कि पूरक, कुम्भक व रेचक करते समय क्रम से नाभि, हृदय और ललाट में क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और शिव का ध्यान करते हुए उक्त स्थानों पर मन को केन्द्रीभूत करे । परमहंसों के लिए सब अवस्थाओं में केवल ब्रह्म के ध्यान करने की व्यवस्था है। श्रुति की आज्ञा है कि जितेन्द्रिय सन्यासी प्रणव का जप करता हुआ ब्रह्म का ध्यान करे ।

प्राणायाम करते समय पद्मासन से बैठकर नासाग्र पर लाल मुख, कोटि चन्द्रमाओं के समान प्रभावाली, गदा लिए हुए हंस पर सवार गायत्री देवी का ध्यान करना चाहिए। ओंकार के 'अकार' की गायत्री देवी साक्षात् प्रतिमा है । ओंकार का 'उ' सावित्री देवी का रूप है, जो गौर वर्ण बालिका के रूप में चक्र धारण किये गरूड़ पर सवार है। ओंकार का 'म' सरस्वती का रूप है जो श्याम वर्ण की प्रौढ़ा

महिला के रूप में है। वे त्रिशूल लिए हुए सांड पर सवार हैं। प्राणायाम का अभ्यास करने वाला पूर्ण ओंकार का जो सर्व श्रेष्ठ प्रभावाला और तीनों अ+उ+म् से युक्त है ध्यान करे। गायत्री मंत्र के साथ भी प्राणायाम किया जाता है जो कि अन्यत्र संध्या विधि के साथ दैनिक कार्यक्रम में दिया गया है। पूरक के समय ओंकार के 'अ' का, कुम्भक के समय 'उ' का और रेचक के समय 'म्' का ध्यान करना चाहिए।

प्रणव के समान महत्त्व और किसी अक्षर व बीज मंत्र को नहीं मिला है वे प्रणव (ॐ) की जो मात्राएँ (१) अ, (२) उ, (३) म् (ओउम्) हैं। ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत आदि भेदों के अनुसार त्रिमात्र हैं अतएव प्राणायाम परायण पुरूष यदि एक मात्रा वाले प्रणव का ध्यान करता है ('अ') अक्षर की उपासना करता है, तो वह निश्चय करके ज्ञान प्राप्त कर लेता है एवं मृत्यु के उपरांत तुरन्त ही संसार में मानुषी जन्म धारण करता है, पूर्व संस्कारों से उसकी बुद्धि प्राणायाम विषय में प्रवृत्त होती है। उसे ऋग्वेद द्वारा मनुष्ययोनि मिलती है संस्कारवश वह पुरुष तपस्या और ब्रह्मचर्य से श्रद्धापूर्ण होकर ऐश्वर्य का अनुभव करता है।

यदि कोई दो मात्रा वाले प्रणव से (अ, उ इन दो मात्राओं से) मन में प्रणव को धारण करता है वह यजुर्वेद के मंत्रों से अन्तरिक्ष में चन्द्रलोक को प्राप्त करता है। वह वहाँ ऐश्वर्य भोग करके पुण्य क्षीण होने पर फिर इस लोक में जन्म लेकर कैवल्य पद प्राप्त कर लेता है।

जो पुरुष तीन मात्रा वाले पूर्ण प्रणव ॐ अक्षर से उस परम पुरूष की प्राणायाम परायण होकर उपासना करता है वह तेज स्वरूप सूर्य में निवास करता है और जैसे साँप पुरानी केचुली से स्वतः मुक्त हो जाता है उसी प्रकार वह पाप से मुक्त होकर सामवेद मंत्रों से ब्रह्मलोक व परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। ॐकार की अलग-अलग एक

एक-एक मात्रा आवागमन के बंधन को नष्ट नहीं कर सकती।

इस प्रकार साधक ऋग्वेद से मनुष्य लोक को, यजुर्वेद से चन्द्रलोक को जाता है किन्तु जो साधक ऋषियों के जाने हुए सामवेद के मंत्रों से ब्रह्मलोक ले जाया जाता है ऐसा विद्वान् साधक प्रणव प्राणायाम के द्वारा ही वृद्धावस्था (मृत्यु) से रहित हो जाता है। (मृत्यु से रहित का अर्थ यह है कि शरीर के नाश हो जाने पर ज्ञान व स्वप्रकाश विभूति की विस्मृति नहीं होती) अर्थात् शान्ति को पाता हुआ परमात्मा को प्राप्त करके उसी में लीन हो जाता है।

प्राणायाम से लाभ

प्राणायाम करते समय मस्तिष्क, नाभिमूल, नासिकाग्र और पैरों के अँगूठों में प्राणों का केन्द्रीयकरण करने का ध्यान करते हुए पेट में श्वास भरे, ऐसा करने से साधक सब तरह की थकावट और रोगों से मुक्त हो जाता है। नासिकाग्र पर केन्द्रित करने का ध्यान रखते हुए करने से वायु तत्त्व पर अधिकार होता है। नाभिमूल पर केन्द्रित करने का ध्यान रखते हुए करने से सब तरह के रोगों का नाश होता है। पैर के अँगूठे पर ध्यान करने से शरीर हल्का होता है। जीभ से वायु पान करने वाले के सब रोग व थकावट और प्यासादि नष्ट होती है। दोनों संध्याओं अर्थात् प्रातःकाल व सायंकाल व दोपहर के समय जो वायुपान करते हैं उनकी जिह्वा पर सरस्वती वास करती है। वह वृहस्पति के समान चतुर वक्ता होता है। ऐसा करने से मनुष्य सम्पूर्ण रोगों से मुक्त हो जाता है।

पातंजल योग दर्शन में बतलाया है कि प्राणायाम के समय नासिका के अग्रभाग पर चित्तवृत्ति के संयम करने से दिव्य गन्ध का, जिह्वा में करने से दिव्य रस का, तालू में करने से दिव्य रूप का,

जिह्वा के मध्य में दिव्य स्पर्श का, जिह्वा के मूल में दिव्य शब्द का, हृदय कमल में चित्त के प्रत्यक्ष का, अस्मिता का तथा इष्टदेव का संयम करने से चित्तवृत्ति का निरोध होता है।

सिद्ध योगियों का मत है कि प्राणायाम द्वारा शरीर स्वस्थ रहने व आत्म ज्ञान प्राप्त होने में सहायता मिलती है।

अनियमित प्राणायाम से हानि

प्राणायाम में यदि नियमों का ठीक ठीक पालन न हुआ तो नाना प्रकार की व्याधियाँ हो सकती है। दूषित वायु पैदा होकर बार-बार डकारें आने पर प्राणायाम बन्द करके आसनों का अभ्यास करना चाहिए।

मैले कुचेले, वायु बिगड़े, वृक्ष के नीचे, मिट्टी के तेल के लेम्प आदि जलाकर, बदहज़मी की दशा में प्राणायाम नहीं करना चाहिए।

जिस प्रकार नियमपूर्वक प्राणायाम करने से सर्व रोग मुक्त हो जाते हैं उसी प्रकार अनियमित रूप से करने से हिचकी, दमा, खाँसी, आँख कान, नाक, सिर आदि की नाना प्रकार की बीमारियाँ हो जाती है।

प्राणायाम के भेद

पातंजल योग के अध्याय २ सूत्र ५० के अनुसार प्राणायाम की सूक्ष्मता व दीर्घता उसके तीनों अङ्गों से ज्ञात होती है जो क्रम से बाह्य आन्तरिक और स्थिर है। स्थिरता का निरूपण देश, काल व संख्या से निश्चित होता है।

श्वास निकालना अर्थात् रेचक प्राणायाम का प्रथम अङ्ग है। श्वास का अन्दर लेना अर्थात् पूरक प्राणायाम का द्वितीय अङ्ग है। प्राण को

(श्वास को रोकना) अर्थात् कुम्भक प्राणायाम का तृतीय अङ्ग है। कुम्भक के अभ्यास से मनुष्य की आयु व आन्तरिक आध्यात्मिक शक्ति, श्रोत्र और जीवनी शक्ति भी बढ़ती है। श्वास लेकर उसे एक मिनिट रोकने से भी आयु में वृद्धि होती है। योगी लोग ब्रह्मरंध्र में श्वास चढ़ाकर मृत्यु देवता तक को भी पराजित कर देते हैं और मृत्यु पर विजय प्राप्त करते हैं।

रेचक, पूरक और कुम्भक देश, काल और संख्या से नियमित होते हैं। देश का यहाँ अर्थ है शरीर के बाहर या भीतर श्वास की लम्बाई चौड़ाई व वह विशेष अङ्ग जहाँ प्राण केन्द्रीत किया जाय। भिन्न भिन्न व्यक्तियों में बाहर जाने वाली श्वांस की लम्बाई भिन्न भिन्न व्यक्तियों में भिन्न होती है। चालू तत्त्वों के अनुसार आने जाने वाली श्वांस की लम्बाई में अन्तर होता जाता है। पृथ्वी, जल, तेज़, वायु व आकाश तत्त्वों के अनुसार श्वांस की लम्बाई क्रम से १२, १६, ४, २ व ० अँगुल होती है। तत्त्वों के अनुसार श्वास का आकार आने और जाने वाली श्वास दोनों में एक सा रहता है।

प्रत्येक तत्त्व के अस्तित्व के समय को काल कहते हैं जिसकी गणना मात्रा से भी की जाती है। एक मात्रा एक सेकिण्ड के बराबर होती है। मात्रा एक तरह का माप है। काल का अर्थ यह भी है कि कितने समय तक किसी अङ्ग में प्राण को रोकना चाहिए।

संख्या का अर्थ है कि कितनी बार प्राणायाम किया गया। योग के अभ्यासियों को क्रमशः प्राणायामों की संख्या बढ़ाकर ८० तक ले जाना चाहिए। प्रातःकाल, दोपहर, संध्या व अर्धरात्रि अर्थात् चार बार में ३२० प्राणायाम करना चाहिए। प्राणायाम का फल समस्त आध्यात्मिक शक्तियों का उदय, सोती हुई कुंडलिनी को जगाना और मुख्य उद्देश्य प्राण और अपान का संयोग करके सम्मिलित प्राण और अपान को

ब्रह्मांड तक ले जाना।

अभ्यास के समयानुसार प्राणायाम अल्प या दीर्घ होता है। प्रथम प्रयत्न का नाप ३६ मात्रा होता है इसे कोमल प्रयत्न कहते हैं। द्वितीय प्रयत्न इसका दूना मध्यमावस्था वाला कहा जाता है। तीसरा प्रयत्न बड़ा उग्र होता है और वह प्राणायाम है जिसका नियंत्रण संख्या से होता है।

रेचक अर्थात् निकलने वाली श्वास का स्थान नासाग्र के आगे 12 अँगुल तक माना गया है। इसका निर्णय एक सींक में रूई लगाकर होता है। पूरक अन्दर आने वाली श्वास का स्थान सर से लगा कर पैर के तलवों तक माना गया है। इस का निर्णय चींटी की चाल का सा अनुभव होने लगने से होता है। रेचक और पूरक दोनों को लेकर कुम्भक का सम्बन्ध बाहर और भीतर दोनों स्थानों पर रुकने की योग्यता पर है। इसका निश्चय उपरोक्त दोनों क्रियाओं की अनुपस्थिति से होता है जिसका सम्बन्ध रेचक और पूरक से है।

काल, संख्या व स्थान के अनुसार उपरोक्त तीनों प्रकार के प्राणायाम के नियमों पर चलना अपनी-अपनी इच्छा पर है। इसका यह अर्थ नहीं है कि तीनों नियमों का पालन एक साथ करना चाहिए क्योंकि अनेक स्मृतियों के अपने नियम अलग-अलग हैं। कोई समय को, कोई स्थान को और कोई संख्या को अधिक महत्त्व देते हैं।

योग सूत्र के अध्याय ४ के अनुसार चौथी प्रणाली है प्राण को बाहरी या भीतरी स्थान विशेष पर केन्द्रीभूत करना।

योग सूत्रों के ५०वें सूत्र के अनुसार तीसरे तरह के प्राणायाम का अभ्यास उद्भाता की प्राप्ति तक ही करना चाहिए। इसके बाद चौथी तरह के प्राणायाम का अभ्यास आरम्भ होता है। इस प्राणायाम में प्राण को भिन्न-भिन्न चक्रों में केन्द्रीभूत करके धीरे-धीरे अन्त में कपाल

स्थित सहस्रार नामक चक्र में ले जाना होता है जहाँ प्राण को ले जाने से समाधि लग जाती है। यह आन्तरिक क्रिया है। आभ्यन्तरिक प्राणायाम में समयानुसार रहने वाले तत्त्व के अनुसार श्वास के आकार को रखने का साधन करना पड़ता है। प्राण भीतर और बाहर सभी जगह चालन किया जा सकता है।

आरम्भिक तीनों प्रकार के प्राणायामों पर अभ्यास का अधिकार प्राप्त करने के उपरांत चतुर्थ प्रकार के प्राणायाम का आरम्भ करना चाहिए। तीसरे प्रकार के प्राणायाम में वातावरण का ध्यान नहीं रखा जाता। एक ही प्रयत्न में श्वास रोक दी जाती है और स्थान, काल तथा संख्या के अनुसार उसे नाप कर दीर्घ तथा सूक्ष्म बनाते हैं। चौथे प्रकार में पूरक और रेचक के वातावरण का निश्चय होता है। भिन्न-भिन्न अवस्थाओं पर धीरे-धीरे अधिकार होता है। तीसरे प्रकार की तरह सहसा ही चौथे प्रकार के प्राणायाम का अभ्यास नहीं करना चाहिए। प्राणायाम में जैसे-जैसे अभ्यास किया जाता है वैसे-वैसे भिन्न-भिन्न अवस्थाओं की पूर्णता प्राप्त होती जाती है। एक अवस्था की पूर्णता प्राप्त करने के बाद ही दूसरी अवस्था का अभ्यास आरम्भ कर देना चाहिए। इस तरह एक के बाद दूसरे का अभ्यास होता रहता है। तीसरे प्रकार के प्राणायाम के पहले नाप जानने की आवश्यकता नहीं है और एक ही प्रयत्न से उसका अभ्यास हो जाता है, परन्तु चौथे का अभ्यास बिना नाप जाने नहीं हो सकता। चौथे प्रकार के प्राणायाम में कठिन अभ्यास करना पड़ता है। तीसरे और चौथे में यही बड़ा भेद है। इस प्राणायाम में भी काल, स्थान और संख्या के भेद लागू हैं। सफलता की प्रत्येक अवस्था के अनुसार अध्यात्मिक शक्तियों का विकास भी होता रहता है।

अधम, मध्यम और उत्तम नाम से प्राणायाम के तीन भेद माने गए हैं। जिनकी मात्राएँ व काल अन्यत्र दिया गया है। आरम्भ में एक महीने तक अधम का अभ्यास करना चाहिए। फिर मध्यम का अभ्यास तीन महीने तक करने के पश्चात् उत्तम प्रकार का अभ्यास आरम्भ करना चाहिए।

साधन के अभ्यास की मात्रानुसार ही प्राणायाम में सिद्धि प्राप्त होती है। परम उत्साह, साहस व दृढ़ता वाला अभ्यासी छ: महीने में ही सिद्धि प्राप्त कर सकता है। आलसी दस वर्ष में भी कुछ न कर सकेगा। धैर्य, भक्ति, दृढ़ विश्वास और लगन के साथ अभ्यास करने पर अवश्य सफलता मिलेगी। निरंतर अभ्यास करते रहिये। हतोत्साहित होने का कोई कारण नहीं है।

प्राणायाम विधि

हठयोग के चार अंग हैं। आसन, प्राणायाम, मुद्रा, नादानुसंधान और प्राणायाम अष्टांग योग का चौथा अङ्ग है। आसनों द्वारा नाड़ियाँ मुलायम होती हैं और शरीर के रोगों की निवृत्ति होती है । पश्चात् प्राणयाम द्वारा अङ्गों की साधना का अभ्यास किया जाता है।

ब्रह्मचारी, नियमित आहार-विहार वाले, मितभाषी, सत्यवादी श्रद्धालु, अक्रोधी, धीर, तमाखू, भाँग, गाँजा, चरस, शराब आदि मादक वस्तुओं का सेवन न करने वाले मुमुक्षु ही प्राणायाम के अधिकारी है। उनकी सद्गुरु की संरक्षणता में रहकर अभ्यास करना चाहिए। ब्रह्मचर्यहीन, व्यवहार में अधिक व्यस्त रहने वाले, सूर्य के ताप में अधिक भ्रमण करने वाले, अग्नि सेवी, अधिक श्रम करने वाले, अधिक पठन-पाठन करने वाले, यम नियम का पालन करने वाले, जन्म रोगी, दुर्बल, हृदय वाले प्राणायाम के अधिकारी नहीं हो सकते। जो बालक और युवक (सात से चालीस साल तक की आयु

वाले) हैं, जिनके शरीर में रक्ताभिसरण की क्रिया बलवती है और जिनके हृदय, फेफड़े आदि अवयवों में जन्मगत कोई न्यूनता नहीं है, वे ही प्राणायाम के अधिकारी है।

प्रणायाम का अभ्यास आरम्भ करने के पहले जब तक पद्मासन, सिद्धासन, स्वस्तिकासनादि मुख्य आसनों में से कोई एक आसन से लगातार दो तीन घंटे तक अचल न बैठा जा सके उस वक़्त तक आसनों का ही अभ्यास बढ़ावे। आसन दृढ़ होने पर प्राणायाम आरम्भ करे। आरम्भ करने के लिए बसन्त और शरद्ऋतु अनुकूल है। जिस देशकाल में कफ़ की वृद्धि होती हो उसमें योगाभ्यास न करे।

प्राचीन ग्रंथकारों ने प्राणायाम का अभ्यास दिन में चार-बार प्रातः काल, मध्यान्ह, सायंकाल और अर्धरात्रि के समय नियमपूर्वक करने की आज्ञा दी है। एक-एक बार में दस प्राणायाम से आरम्भ करके अस्सी तक बढ़ावे अर्थात् एक दिन में तीन सौ बीस प्राणायाम करे, परन्तु समय और परिश्रम का विचार करते हुए यह संख्या बहुत अधिक है इसलिए उत्तम प्राणायाम में प्रवेश होने पर एक बार में केवल पच्चीस करे। यदि किसी दिन थकावट मालमू हो तो उस दिन आधा या चौथाई ही करे।

प्राणायाम का अभ्यास प्रातःकाल शौच से निवृत्त होकर सूर्योदय के पहले करे और संध्या को सूर्यास्त के दो घंटे बाद। गर्मी के दिनों में संध्या समय अथवा कुछ और देर में करे और दोपहर के समय न करे। प्रकृति दोष अजीर्ण, थकावट के समय रात का अभ्यास थोड़ा करें। अभ्यास करते वक़्त पूरक रेचक धीरे-धीरे करे व पूरक, कुम्भक व रेचक अनुपात के अनुसार ही करे और न्यूनाधिक कदापि न होने दे।

नित्य प्रातः व सायंकाल एक मिनिट से क्रमशः बढ़ाकर दस मिनिट तक शीर्षासन करे। लोम, विलोम (प्राणायाम जिसमें कुम्भक न करे केवल पूरक व रेचक ही साथ ही साथ किया जाता है) व आसन सिद्ध हो जाने पर प्राणायाम करे। प्राणायाम में पूरक व रेचक

सदा धीरे धीरे ही करे। पूरक, कुम्भक व रेचक के समय "ॐ" का उच्चारण करते हुए उँगलियों के पोरों पर गिनती करता जाय ताकि तीनों के समय के अनुपात का ज्ञान रहे। एक समय में बीस प्राणायाम से अधिक न बढ़ाना चाहिए। वायु का विशुद्धतम अंश ही प्राणवायु कहलाता है और इसका सम्बन्ध ग्रहों व विशेषकर सूर्य ज्योति से है। सूर्य से ही ससांर में जागृति फैलती है। जिस तरह बाहर सूर्य है उसी तरह हमारे शरीर में भी सूर्य केन्द्र है। इसका स्थान नाभि के पास है। पुराणों में इस शक्ति स्थान को मणिपुर चक्र कहा है। (इसी प्रकार विष्णु का कुंठ व शिव का कैलाश भी मनुष्य के शरीर में है, जो कि ज्ञान से जाना जा सकता है) अतः प्राणायाम द्वारा मणिपुर चित्त शक्ति बढ़ाकर मणिपुर चक्र को जगाया जाता है और जैसे जैसे वह जगने लगता है वैसे ही वैसे साधक का भी तेज चमकने लगता है, व वह शक्तिमान् होने लगता है। मस्तिष्क ही ज्ञान रज्जु के रूप में मेरू दंड के भीतर नीचे तक समस्त स्नायु तन्तुओं के रूप में फैला हुआ है। वायु से दो अंगुल ऊपर, उपस्थ से चार अंगुल नीचे ज्ञान-रज्जु मेरुदंड के बाहर चार अंगुल-विस्तृत कन्द के रूप में प्रकट हुई है। इसी कन्द से बहत्तर हज़ार नाड़ियों का सम्बन्ध है। इन नाड़ियों में मुख्य इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना हैं। हमारा उद्देश्य प्राणायाम द्वारा केवल उस कन्द को पुष्ट करके शरीर को ही पुष्ट करना न होना चाहिए। शरीर तो स्वयं पुष्ट होगा ही बल्कि हमारा लक्ष्य होना चाहिए। ब्रह्मानन्द प्राप्ति व शिवशक्ति सम्मिलन। जब हमारी अन्तर्मुख शक्ति सिद्ध होगी तब हमारा सम्बन्ध सुषुम्ना से होगा क्योंकि सुषुम्ना नाड़ी कन्द से होती हुई मस्तिष्क तक जाती है और जीवात्मा से विशेष सम्बन्ध रखती है अतएव इसी सुषुम्ना द्वारा योगी केवल भावना व प्राणायाम से संचित शक्ति को ठोकर लगाकर कुंडलिनी शक्ति को जगा कर उर्ध्वगामिनी करने में समर्थ होते हैं और अमृत पद प्राप्त करते हैं। कृष्ण भक्त लोग इस कुल कुंडलिनी रूपी राधिका का कृष्ण ब्रह्म के साथ (बंशीवट के निकट) मस्तिष्क के पास रास विलास देखते हैं और आधुनिक संत सुरति शब्द कह कर गदगद होते हैं। यही जीव शिव हो जाता है।

सब ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं। कुंडलिनी के जागरण पर शरीर में एक प्रकार का कम्प पैदा होता है और उससे ॐ की ध्वनि स्वयं निकलने लगती है तथा अनेक प्रकार के स्वर निकलने लगते हैं। यह ओंकार जगदम्बा का उद्‌गार है और काम, क्रोध, लोभ, मोह का नाश ही शुम्भ, निशुम्भ, चण्ड व मुंड का नाश है।

❖ ❖ ❖

नाड़ियाँ

मानव शरीर में तीन लाख पचास हज़ार नाड़ियाँ होती है। इनमें सत्तरह नाड़िया प्रधान हैं। (१)सुषुम्ना (२) इड़ा (३) पिंगला (४) गांधारी (५) हस्तिजिह्वा (६) कुहू (७)सरस्वती (८) पूषा (९) शंखिनी (१०) पयस्विनी (११) वारूणी (१२) अलम्बुषा (१३) विश्वोदरा (१४) यशस्विनी (१५) वज्रा (१६) चित्रा (१७) ब्रह्म। इनमें सुषुम्ना, इड़ा व पिंगला सर्व प्रधान हैं। योगसाधन में यही अधिक उपयोगी है। अन्यान्य समस्त नाड़ियाँ सुषुम्ना के आश्रय से रहती हैं। इस सुषुम्ना के मध्यगत चित्रा के मध्य सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर ब्रह्मरंध है। यह ब्रह्मरंध्र ही दिव्य मार्ग व अमृत तथा आनन्ददायक है। कुंडलिनी शक्ति इसी ब्रह्मरंध्र द्वारा मूलाधार से सहस्रार में जाती है और परमशिव में मिल जाती है। इसी कारण ब्रह्मरंध्र को दिव्य मार्ग कहते है।

इड़ा और पिंगला। शिवसंहिता के अनुसार इड़ा और पिंगला दो नाड़ियाँ गुदा के पास कुंडलिनी से मेरुदंड (पीठ की रीढ़) को एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व तक लपेटे हुए सुषुम्ना से मिलकर व त्रिवंध बनाकर जिसे त्रिवेणी भी कहते है सर में होती हुई माथे के भ्रूमध्य स्थान में सुषुम्ना से अलहदा-अलहदा बाएँ नकुएँ में इड़ा और दाहिने में पिंगला समाप्त हो जाती है। इड़ा और पिंगला नामक दोनों नाड़ियों के मध्य में जो सुषुम्ना नाड़ी है उनकी छः ग्रन्थियों में पद्‌माकार के

छः चक्र संलग्न है। गुह्य स्थान में, लिंगमूल में, नाभिदेश में, हृदय में, कंठ में और दोनों भ्रू के बीच में इन छः स्थानों में छः चक्र विद्यमान है। यह छः चक्र सुषुम्ना नाम की छः ग्रन्थियों के रूप में प्रसिद्ध है। इन ग्रन्थियों का भेद करके जीवात्मा को परमात्मा के साथ संयोग करना पड़ता है। इसी को प्रकृति योग कहते हैं।

इड़ा नाड़ी बाम भाग में स्थित होकर सुषुम्ना नाड़ी को प्रत्येक चक्र में घेरती हुई दक्षिण नासापुट से और पिंगला नाड़ी दक्षिण भाग में स्थित होकर सुषुम्ना नाड़ी को प्रत्येक चक्र में परिवेष्ठित करती हुई वाम नासापुट से आज्ञा चक्र में मिलती है। इड़ा और पिंगला के बीच-बीच में सुषुम्ना नाड़ी के छः स्थानों में छः पद्म और छः शक्तियाँ निहित है। कुंडलिनी देवी ने अष्टधा कुंडलित होकर सुषुम्ना नाड़ी के समस्त अंशों को घेर रखा है तथा अपने मुख में अपनी पूँछ को डालकर साढ़े तीन घेरे दिए हुए स्वयं भू को वेष्टन करके ब्रह्म द्वार का अवरोध कर सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग में स्थित है।

❖ ❖ ❖

नाड़ी

इड़ा नाड़ी बाएँ नासारंध्र से चलने वाली चन्द्र नाड़ी है। उसका वर्ण शुभ्र है और पिंगला दाहिने नासारंध्र से चलने वाली सूर्य नाड़ी रक्त वर्ण है। इड़ा को अमृत विग्रहा और पिंगला को रौद्रात्मिका भी कहते हैं। यह दोनों नाड़ियाँ काल स्वरूप दिखाती है। यह दोनों जब समगति से चलती है तब सुषुम्ना नाड़ी में उनका लय होता है। इसी अवस्था में नाड़ी में कुंडलिनी प्रवेश करती है। मूलाधार से जहाँ यह तीनों निकलती है उसे मुक्त त्रिवेणी और आज्ञाचक्र के समीप जहाँ यह मिलती हैं उसे युक्त त्रिवेणी कहते हैं।

मेरुदंड के बाई और कुहू नाडी है। बायीं आँख से बाएँ पैर के

अँगूठे तक चलने वाली गांधारी नाड़ी है। दाहिनी आँख से दाहिने पैर के अँगूठे तक हस्तिजिह्वा नाड़ी है। सुषुम्ना के दाहिनी ओर सरस्वती नाड़ी है जो कि जिह्वा के पास आकर मिली है। दाहिनी आँख से पेट तक पूषा नाड़ी है। गांधारी और सरस्वती के बीच से शंखिनी नाड़ी है। पूषा और सरस्वती के बीच में पयस्विनी नाड़ी है। दाहिने हाथ के अँगूठे से बाएँ पैर तक यशस्विनीनाड़ी है। कुहू और यशस्विनी के बीच में वारूणी नाड़ी है और उसकी व्याप्ति शरीर के नीचे के भाग में है। कुहू और हस्तिजिह्वा के बीच में विश्वोदरा नाड़ी है, वह भी वारूणी नाड़ी के समान शरीर के निचले भाग में फैली है। सुषुम्ना के मध्य भाग में वज्रा नाड़ी है और वज्रा के मध्य में चित्रा है व चित्रा के मध्य भाग में ब्रह्म नाड़ी है। सुषुम्ना नाड़ी अग्नि स्वरूपा है और वज्रा सूर्य रूपा है व चित्रिणी पूर्ण चन्द्र मंडल रूपा है। शब्द ब्रह्म के यह तीन प्रकार हैं। शब्द ब्रह्मरूपा कुंडलिनी जब ऊर्ध्व गामिनी होती है तब इन तीन नाड़ियों को स्पर्श करती हुई चलती है। इसलिए इन तीनों नाड़ियों को शब्द ब्रह्म रूप कहा है। चित्रा नाड़ी को ब्रह्म द्वार कहते हैं, क्योंकि इसी नाड़ी के पास से कुंडलिनी ऊर्ध्व गामिनी होती है।

शंखिनी नाड़ी के आभ्यन्तर जो नाड़ी है उसके अन्तर्गत पुरीरित नाड़ी है। मन के पुरीरित नाड़ी में प्रवेश करने पर सुषुप्ति हो जाती है, उस समय कोई भी ज्ञान नहीं होता। पुरोरित नाड़ी जिस मेध्या नाड़ी द्वारा आवृत्त है उसमें मन के संयोग होने से निद्रा और निद्रा में स्वप्न-दर्शनादि का ज्ञान होता है। मन का गांधारी के साथ संयोग होने पर वाम चक्षु और हस्ति जिह्वा के संयोग से दाहिने चक्षु द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। पूषा में मन का संयोग होने से दक्षिण कर्ण द्वारा और यशस्विनी में संयोग होने से वाम कर्ण द्वारा श्रवण प्रत्यक्ष होता है। अलम्बुजा के उध्र्व देश में मन के सयोंग से घ्राणज और मध्य देश में संयोग होने से रसास्वादन का ग्रहण अर्थात् रसना प्रत्यक्ष होता है।

कुहू में मन का संयोग सुख का हेतु होता है। सुषुम्ना में मन संयोग योगारंभ व सुषुम्ना मध्य स्थित चित्रिणी प्रभृति नाड़ी में शांत मन का गाढ़ संयोग समाधि है।

सुषुम्ना के अतिरिक्त अन्य सब नाड़ियों में मन का संयोग विविध प्रकार के यत्न इच्छा, द्वेष, शरीरिक चेष्टा व विविध विषयों के भोग के लिए उपयोगी होता है। इड़ा, पिंगला के साथ मन का संयोग जीवन, योनि, यत्न प्रभृति का उत्पादक है। पातंजलोक्त, चित्तवृत्ति निरोध, सुषुम्नान्तर्गत नाड़ी में मन के संयोग से होता है।

❖ ❖ ❖

मुख्य नाड़ियाँ

प्राणायाम से सम्बन्ध रखने वाली मुख्य नाड़ियों का संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जाता है।

इड़ा पिंगला व सुषुम्ना

मेरुदंड (पीठ की रीढ़) के दोनों तरफ एक स्नायु प्रणाली है। बायीं स्नायु प्रणाली को इड़ा और दाहिनी को पिंगला कहते हैं। यह प्राणवाहक नाड़ियाँ है। इड़ा में चन्द्र का और पिंगला में सूर्य का वास है। इसी कारण इड़ा शीतल और पिंगला उष्ण है। इड़ा नासिका के वाम और पिंगला दाहिने रंध्र से चलती है। इनमें से प्रत्येक ढाई-ढाई घड़ी चलती है उन्हीं के अनुसार स्वर बदलते रहते हैं। उक्त दोनों नाड़ियों के चलते रहने पर मनुष्य सांसरिक कामों में लगा रहता है।

नाड़ी मंडल में सुषुम्ना सबसे महत्त्वपूर्ण है। सारा ब्रह्मांड इसी पर स्थित है और यही मोक्ष का मार्ग है यह गुदा मार्ग के पिछले भाग में स्थित मेरूदंड से लगी हुई सर में स्थित ब्रह्मरंध्र तक चली गई है। इसके दाहिने तरफ़ पिंगला और बायीं तरफ़ इड़ा स्थित है। इसके जागृत होते ही योगी का वास्तविक कार्य होने लगता है। उसकी समाधि लगने लगती है और वह संसार से विमुख हो जाता है। योगी लोग सुषुम्ना में प्रवेश करके महाप्रयाण का समय बदल देते हैं।

इसीलिए कहते हैं कि सुषुम्ना नाड़ी कालभक्षक या काल रोधक है। इसी कारण योगी लोग सदा अपने प्राण को सुषुम्ना में जिसे ब्रह्म नाड़ी भी कहते हैं चलाने का प्रयत्न करते हैं। यह बहत्तर हज़ार नाड़ियों को भेदकर सब को व्याप्त कर रहती है।

यह तीनों नाड़ियाँ प्राण वाहक नाड़ियाँ है और चन्द्रमा, सूर्य व अग्नि क्रम से उनके देवता है। सुषुम्ना के समय ध्यान अच्छा लगता है। सुषुम्ना के चलते समय ध्यान का अभ्यास करते-करते कुंडलिनी जागृत हो जाती है और वह सुषुम्ना में होती हुई षट्चक्रों का भेदन करती हुई ऊपर चढ़ने लगती है। उस समय योगी को अनेक प्रकार के अनुभव शक्तियाँ और आनन्द प्राप्त होने लगते हैं। इस नाड़ी को स्थिर करके प्राणायाम करने से वह शीघ्र सिद्ध होता है।

कुंडलिनी व षट्चक्रों का विवरण अलग प्रकरण में दिया गया है।

भगवान् शंकर महादेव के ग्रन्थ शिव स्वरोदय में भिन्न-भिन्न कार्य के लिए भिन्न-भिन्न नाड़ियों का चलना आवश्यक बतलाया गया है। अमुक कार्य के लिए अमुक नाड़ी ही चले ऐसा विधान है। इसका विवरण स्वरशास्त्र प्रकरण में दिया गया है।

फेफड़े

हमारे शरीर में श्वास लेने के दो फेफड़े छाती के अन्दर दोनों तरफ़ होते हैं उन दोनों को जोड़ती हुई श्वास नलिका नाक तक चली गई है। दोनों फेफड़ों के बीच में हृदय है जहाँ रक्त जमा होता है और उसी के पास बड़ी-बड़ी श्वास नाड़ियाँ हैं शरीर में फेफड़े मुख्य अङ्ग हैं प्राणायाम के अभ्यास के फेफड़े पुष्ट होते हैं इसी कारण प्राणायाम करने वालों का स्वर गम्भीर मधुर व आकर्षक होता है।

अब ज़रा विचारिए कि वह कौन-सी शक्ति है जिसने इस आश्चर्यजनक शरीर को बनाया और शरीर के सारे अङ्गों को गतिशील कौन करती है? उस सर्व शक्तिमान परमात्मा के सिवाय भला और कौन-सी दूसरी शक्ति हो सकती है? वही ईश्वरीय शक्ति इसी प्रकार

अप्रगट रूप से सारे संसार का संचालन करती है अतएव उन्हीं जगदीश्वर का अपने शरीर और सभी सांसारिक वस्तुओं में अस्तित्व अनुभव करिए। उन्हीं भगवान् की प्रार्थना करते हुए उनके गुणानुवाद गाइए तथा सदा उन्हीं का ध्यान करिए।

प्राणायाम

प्राणायाम सम्बन्धी आवश्यक बातें

प्राणायाम सम्बन्धी ग्रन्थों व योगियों के आदेशानुसार प्रातः, मध्याह्न, सायंकाल व अर्धरात्रि के समय अर्थात् प्रतिदिन नियमपूर्वक चार बार प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। प्रत्येक बार में १० प्राणायाम से आरम्भ करके और प्रतिदिन पाँच-पाँच बढ़ाकर पन्द्रह दिन के पश्चात् अस्सी-अस्सी प्राणायाम प्रतिबार करते हुए दिन भर में ३२० प्राणायाम करें। उत्तम प्रकार के इतने प्राणायामों के करने में कम से कम छः घन्टे का समय लगेगा। इतना समय और परिश्रम हर एक साधक के लिए बिल्कुल ही असम्भव है। अतएव साधारण स्थिति के साधकों को अपनी शक्ति और सुविधानुसार करना चाहिए। सम्भव हो तो दस से आरम्भ करके चालीस तक बढ़ावे अर्थात् प्रतिदिन १६० प्राणायाम करे। कुम्भक के समय को क्रमशः बढ़ावे अथवा हानि होने का भय रहता है। अभ्यास करते समय जल्दी न करके बहुत ही शांति और धैर्यपूर्वक करना चाहिए। यदि किसी दिन थकावट मालूम हो तो उस दिन संख्या कम कर दे या फेफड़ों को पूरा विश्राम दे दे। यदि सुविधापूर्वक अभ्यास चार बार न कर सके तो प्रातः व सायंकाल दो बार ही करे। गर्मियों के दिनों में सायंकाल का अभ्यास कुछ देर में ठंडक हो जाने पर करे।

प्राणायाम करते समय फुफ्फसों (फेफड़ों) को शिथिल रखे ताकि वह अधिक वायु को ग्रहण कर सकें व कुम्भक अधिक समय तक हो सके। फुफ्फस कड़े रहने से पूरक भी अधिक मात्रा में न हो सकेगा

और न वायु के प्रभाव से वे निर्बल भी हो जाएँगे जिससे वायु फुफ्फसों में भरा रहेगा और दूषित होकर डकारों के रूप में बराबर निकलता रहेगा। यदि ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो तो अभ्यास बन्द कर देना चाहिए और कुछ दिनों तक केवल आसनों का ही अभ्यास करे। उक्त दशा में शीर्षासन के अभ्यास से फुफ्फस बलवान् हो जावेंगे। दो-तीन महीने बाद फिर प्राणायाम का अभ्यास करने पर यदि उक्त दशा ही मालूम पड़े तो राजयोग का मार्ग ग्रहण करें। प्राणायाम न करें।

प्राणायाम के अभ्यास के समय मूलबंध तो आरम्भ से अन्त तक बहुत दृढ़ रखना चाहिए। मूलबंध दृढ़ रहने से मलावरोध न होकर मलमूत्र नियमित रूप से निकलता रहेगा। मल दोष न रहने से नाड़ियाँ शुद्ध हो जावेंगी और रक्त संचालन ठीक होने से नाद भी खुल जावेंगे तथा अपान तत्त्व प्राणतत्त्व से मिलकर मस्तिष्क में जाने लगेगा व कुंडलिनी जागृत होगी। मूलबंध दृढ़ न होने से फुफ्फस वायु के आघातों से कमजोर हो जावेंगे और मलावरोध होकर जल्दी थकावट मालूम होने लगेगी।

पूरक करने के पश्चात् तुरन्त ही जालंधर बंध लगाना चाहिए। सिर को आगे झुकाकर ठोड़ी को कंठ और छाती के संधि स्थान कंठकूप में दृढ़तापूर्वक लगावे जिससे उस स्थान पर स्थित विशुद्ध चक्र पर दबाब पड़े। इससे कंठस्थित श्वासमार्ग का निरोध होता है और फुफ्फसों से वायु उछलकर घण्टिका के ऊपर के भाग में आघात नहीं करती। इस बंध से समस्त शरीर के ज्ञानतन्तु बलवान् होते हैं क्यों कि जालंधर बंध (विशुद्ध चक्र) का सम्बन्ध पादांगुष्ठ, गुल्फ जानु (घुटने) उरु, (जाँघ) सविनी का मूत्रेन्द्रिय, नाभि, हृदय, ग्रीवा, कंठदेश, लम्बिका (घण्टिका), नासिका भ्रू, कपाल, मूर्द्धा (कान के पीछे का भाग) और ब्रह्मरंध्र आदि सोलह आधार स्थानों से हैं। ज्ञानतंन्तु का स्थान मस्तिष्क है फिर भी नीचे के अवयवों का नियमन केन्द्र स्थान के अनुकूल करना और उनका सन्देश ऊपर केन्द्र स्थान में भेजना यह दोनों कार्य विशुद्ध चक्र करता है। अतएव

प्राणायाम के समय मस्तिष्क पर वायु का आघात न पहुँचने देना इसी बंध पर निर्भर है और इसके दृढ़ होने से मस्तिष्क व सब ज्ञान तन्तुओं का रक्षण होता है। इसके ठीक न होने से अनेक स्थानों में विकृति होने लगती है विशेषकर नाक, नेत्र और मस्तिष्क में विकार व वात प्रकोप जन्य व्याधि उत्पन्न हो जाती है।

जालंधर बंध का अभ्यास पाँच मिनिट से आरम्भ करके क्रमशः समय बढ़ावे। गर्दन में दर्द मालूम होने पर तेल मालिश कर देने या दो एक दिन विश्राम लेने से ठीक हो जाएगा।

रेचक के समय धीरे-धीरे उस वक़्त तक उड्डीयान बंध लगाया जाय और जालंधर बंध खोला जाय जब तक वायु पूर्ण रूप से न निकल जाय। इसके पूर्ण रीति से करने से त्रिधातुओं के विकार से उत्पन्न होने वाले रोग नष्ट हो जाते हैं और त्रिधातु सम अवस्था में हो जाते है व सुषुम्ना मार्ग शुद्ध होकर प्राण तत्त्व उर्ध्वगमन करता है। इस बंध को 'मृत्युमातंग केसरी' अर्थात् मृत्यु रूपी हाथी को पछाड़ने वाला सिंह कहते हैं। इसी कारण यह सबसे उत्तम बंध माना जाता है। इसके करने से फुफ्फस और आमाशय निर्बल हो जाते हैं।

प्राणायाम का अभ्यास करने के पहले तीनों बंधों का अभ्यास कर लेना चाहिए।

कुम्भक इतना ही करे जितने में रेचक धीरे धीरे हो सके। पूरक भी इसी प्रकार धीरे-धीरे करे। पूरक जल्दी करने से एक तो फुफ्फुस कोषों को आघात पहुँचता है, दूसरे कुम्भक देर तक नहीं होता। रेचक जल्दी करने से फुफ्फुस व नाड़ियों में क्षोभ उत्पन्न होकर फुफ्फुस, हृदय, नासिका, नेत्र, कर्ण, मस्तिष्क आदि अवयवों को हानि पहुँचती है। अतएव रेचक आन्तरिक बल से बहुत धीरे धीरे करना चाहिए। इसके बाद एक दो सेकिण्ड कुम्भक करके फिर पूरक करना चाहिए। बाह्य कुम्भक से फुफ्फुस कोष अधिक बलवान् होते हैं।

उत्तम प्राणायाम में कुंभक पचास सेकिण्ड, मध्यम में तेंतील और

कनिष्ठ में सोलह सेकिण्ड होना चाहिए। पूरक से दुगुना समय रेचक में और रेचक से दुगुनासमय कुंभक का होना चाहिए। उत्तम प्राणायाम में प्रवेश करने पर भस्त्रा प्राणायाम के अभ्यास से कुंभक का समय बढने व रेचक का समय कुछ घटने लगता है पाँच मिनिट से अधिक हो जाने पर दो बार पूरक किया जा सकता है।

उत्तम प्राणायाम में प्रवेश करने पर भस्त्रा प्राणायाम के अभ्यास से कुम्भक का समय शीघ्र बढ़ने लगता है व रेचक का समय कुछ कम हो जाता है। क्योंकि फुफ्फुस का कुछ वायु प्राण तत्त्व में रूपान्तरित हो जाता है। कुम्भक का अभ्यास पाँच मिनिट हो जाने पर दो बार पूरक द्वारा करने के बाद रेचक करना चाहिए। प्राणायाम में पूरक जो वायु ग्रहण किया जाता है वह शरीर के अन्य भागों में न जाकर फुफ्फुस में जाता है और दूषित वायु जो आमाशय में उत्पन्न होती है वह डकार द्वारा तथा आँतों में उत्पन्न होने वाली गुदा द्वारा निकल जाती है। जो पाँच प्रकार के वायु शास्त्रकारों ने बतलाएँ है वह सब प्राण तत्त्व हैं। प्राण तत्त्व और वायु में अन्तर है। प्राण तत्त्व वायु का रूपान्तर है। इस प्राण तत्त्व का दूसरा भेद अपानतत्व प्राण तत्त्व के साथ मिलकर सुषुम्ना द्वारा मस्तिष्क में चढ़ता है। जब वह पूर्व मार्ग से चढ़ता है तब नेत्र से भ्रू स्थान में प्रकाश मालूम होने लगता है। नीले, लाल, सफ़ेद, पीले आदि तरह-तरह के रंग दिखाई पड़ते हैं। इस रीति से प्राणों की उर्ध्वगति करने की क्रिया को ही कुंडलिनी जागृति कहते हैं। यही अवस्था आगे बढ़ने पर उन्मनी अवस्था और समाधि कहलाती है।

उत्तम प्राणायाम में प्रवेश होने के बाद प्राण तत्त्व सुषुम्ना द्वारा मस्तिष्क में चढ़ने लगता है। आरम्भ में वह पिपीलिका (चींटी) के समान धीरे-धीरे सूक्ष्म परिणाम में ऊपर चढ़ता है। उपरांत तीनों ग्रन्थिभाग के आगे नाड़ी के शेष भाग की शुद्धि होने पर मेंढक की गति से कूद कर ऊपर चढ़ने लगता है और भस्त्रा प्राणायाम द्वारा कुम्भक बढ़ने से ग्रन्थियों के भेद न होने पर विहंगम (पक्षी) की तरह

उड़कर शीघ्र प्राण तत्त्व सहस्रदल कमल में प्रवेश करता है। जब प्राणतत्त्व मस्तिष्क में जाने लगता है उस समय मस्तिष्क में भारीपन मालूम होता है। कुछ दिनों में मस्तिष्क का शोधन होकर सहनशीलता बढ़ जाती है, जिससे कष्ट नहीं मालूम होता। एकाध वर्ष के बाद जब प्राण तत्त्व अधिक वेग से गति करने लगता है तब मन की एकाग्रता होकर आनन्द का अनुभव होने लगता है।

प्राणायाम के अभ्यास के बाद शांति के लिए शवासन व नादानुसन्धान करना चाहिए। आसन और विपरीत करणी मुद्रा करनी हो तो प्राणायाम को पहले सुबह करे। संध्या समय न करे। विपरीत करणी रात्रि को हानिकर है। कुछ देर विश्राम के पश्चात् गुनगुने जल से स्नान करके संध्या वन्दन करे। अभ्यास के बाद आवश्यकतानुसार गरम किया हुआ दूध ठंडा करके पिये।

उत्तम प्राणायाम का अभ्यास हो जाने पर खेचरी का अभ्यास किया जा सकता है। कोई-कोई आचार्य चालीस प्राणायाम का अभ्यास हो जाने पर महाबंध और महावेध का अभ्यास कराते हैं, परन्तु यह निर्बलों के लिए हानिकारक है।

आसन और विपरीत करणी मुद्रा करनी हो तो प्राणायाम से पहले सुबह करे। शाम को व रात्रि को विपरीत करणी हानिकारक मानी गई है।

अभ्यास के आरम्भ में भोजन घी और दूध का विशेष रूप से प्रयोग करना चाहिए ताकि प्राणायाम से उत्पन्न गर्मी शरीर को कष्ट न पहुँचा सके।

प्राणायाम से नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं, जठराग्नि प्रदीप्त होती है, अन्तर्नाद सुनाई देने लगता है व स्वास्थ्य बहुत अच्छा हो जाता है। निरन्तर अभ्यास से जब नाड़ी चक्र शुद्ध हो जाते हैं, तब धीरे-धीरे श्वास सुषुम्ना नाड़ी में भी प्रवेश करने लगता है। कुम्भक के समय गर्दन की और गुदा की मांस पेशियों के आकुंचन से प्राण वायु सुषुम्ना में प्रवेश करने लगता है और उसके

इस नाड़ी में प्रवेश करते ही साधक संसार से मृत होकर समाधि की अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

अपान वायु को ऊपर खींचने और प्राणवायु का गले की सहायता से नीचे दबाने का अभ्यास करते करते योगी जरावस्था से मुक्त होकर बिल्कुल युवा हो जाता है। नाड़ियों के शुद्ध होते ही साधक के शरीर पर विशेष चिन्ह प्रकट होने लगते है। शरीर का हल्का होना, चेहरे पर तेज का बढ़ना, जठराग्नि का प्रदीप्त होना, शरीर दुबला होना, सुस्ती का नष्ट होना आदि नाड़ी शुद्धि के लक्षण हैं।

जो रोग किसी भी प्रकार के इलाज से अच्छे नहीं होते वे प्राणायाम के अभ्यास से जड़ से अच्छे हो जाते हैं।

प्राणायाम करने के लिए किसी न किसी आसन से बैठना पड़ता है अतएव प्राणायाम आरम्भ करने के पहले पद्म, स्वस्तिक, सुखासन, सिद्धासन आदि किसी न किसी आसन का अभ्यास कर लेना चाहिए। आसन सिद्ध कर लेने से प्राणायाम करने में सुविधा होती है।

जिस प्रकार प्राणायाम का अभ्यास करने के पहले आसन सिद्ध कर लेना अनिवार्य है उसी तरह षट्कर्म भी है। सम्पूर्ण नाड़ी मंडल शुद्ध होने के उपरान्त ही योगी में प्राण वायु रोकने की शक्ति आती है। जिसके शरीर में चर्बी और कफ़ अधिक हो उसे षट् क्रिया अच्छी तरह करनी चाहिए, जिसमें यह दोष न हो वह षट् कर्म न करे।

चार अङ्गों की पूर्ति

आसनों व षट्कर्मो के सिवाय प्राणायाम के अभ्यासी को आगे लिखे चार अङ्गों की पूर्ति करना भी अत्यन्त आवश्यक है।

(१) ब्रह्मचर्य (२) सिद्ध योगी के तत्वावधान में रहना (३) अनुकूल संगति (४) हितकारी भोजन अर्थात् अधिक नमकीन,

अधिक मीठा, कोई खट्टी, नशीली व कड़वी चीज़ न खाये पिये।

इन नियमों के पालन न करने से भयंकर हानि, उन्माद, हृदय व श्वास आदि रोग हो सकते हैं।

प्राणायाम सम्बन्धी नियम

(१) ध्यान या प्राणायाम के आरम्भ करने के पहले अपने गुरु इष्ट देव की मूर्ति अथवा चित्र की मानसिक पूजा या ध्यान करना चाहिये तथा ३ॐ श्री गणेशाय नमः कहकर अभ्यास आरम्भ कर देना चाहिए।

(२) बैठने के स्थान को यदि सम्भव हो तो धूप या अगरबत्ती आदि जलाकर व जल छिड़क कर शुद्ध कर लेना चाहिए।

(३) आसन के लिए कम्बल को चौपर्त करके उस पर एक साफ़ कपड़ा बिछा ले और उत्तर की तरफ़ मुँह करके बैठे।

(४)प्राणायाम के लिए नीचे लिखी पाँच वस्तुएँ आवश्यक है।

(१) उत्तम स्थान (२) उचित समय (३) साधारण हल्का एवं पुष्टकारी भोजन (४) उत्साह, शुद्ध चित्त व धैर्य के साथ लगातार अभ्यास (५) नाड़ी शुद्धि। नाड़ी शुद्ध होने पर योग की प्रथम अवस्था प्राप्त हो जाती है।

(५) एक बार में लगभग डेढ़ घन्टे तक श्वास को रोकने का अभ्यास हो जोने से अद्‌भुत् शक्तियाँ प्राप्त होती है। यह अभ्यास प्राणायाम जानने वाले गुरु की अध्यक्षता में करना चाहिए।

(६) तीन मिनिट तक बिना किसी सहायता के श्वास रोकने से नाड़िया काफ़ी शुद्ध होकर चित्त स्थिरता को व शरीर स्वस्थता को प्राप्त हो जाता है।

(७) प्राणायाम के अभ्यास के लिए जहाँ तक सम्भव हो एकांत, सुन्दर, रमणीक व शांत स्थान होना चाहिए। जहाँ जल दूध व खाद्य पदार्थों की सुविधा हो।

(८) प्राणायाम का अभ्यास बसंत या शरद् ऋतु से अर्थात् मार्च-अप्रैल या सितम्बर-अक्टूबर से आरम्भ करे।

(९) योगशास्त्र के निपुण और कुशलता प्राप्त गुरु की शरण में जाकर तथा उनकी सेवा करके श्रद्धा के साथ शिक्षा ग्रहण व शंकाओं का समाधान करे।

(१०) प्राणायाम के अभ्यासी को सदैव वैराग्य, धर्म, श्रद्धा, भक्ति आदि की वृद्धि व पुष्टि तथा उसे सदा प्रत्येक के साथ प्रिय, मधुर व सत्यता का व्यवहार करना चाहिए।

(११) आध घण्टे से एक घण्टे तक एक आसन पर लगातार बैठ सकने पर भी प्राणायाम का अभ्यास आरम्भ किया जा सकता है।

(१२) प्राणायाम के अभ्यास का उपयुक्त समय प्रातः ४ बजे १० बजे दिन, ५बजे शाम (गर्मियों में ७-८) रात में १० बजे से १२ बजे तक। अभ्यास के अनुसार संख्या बढ़ते-बढ़ते ३२० तक हो जायगी।

(१३) प्राणायाम के अभ्यास के पहले नाक अच्छी तरह साफ़ कर लेनी चाहिए। अभ्यास के बाद यदि नहाना हो तो आधा घंटा ठहर कर नहावे।

(१४) जब कभी किसी तरह की उदासी, घबराहट व सुस्ती मालूम हो, तो प्राणायाम से उसी समय शरीर में उत्साह, स्फूर्ति व चैतन्यता आ जावेगी व आनन्द प्राप्त होगा तथा लिखने पढ़ने में मन लग जाएगा।

(१५) प्राणायाम के आरम्भ में उन्नति के विचार से समय और मात्रा का ध्यान रखने की आवश्यकता होती है। अभ्यास करते करते बाद में स्वयं ही इसका अनुभव होने लगता है। फेफड़े स्वयं इसकी सूचना देते हैं। प्राणायाम के समय सीना तना रहना चाहिए।

(१६) इतना अधिक प्राणायाम न करे कि थक जाय बल्कि

उतना करे जिसमें चित्त प्रसन्न और उत्साहित रहे, बहुत से नियमों के भी बन्धन ठीक नहीं।

(१७) श्वास हमेशा बहुत धीरे-धीरे लेनी व छोड़नी चाहिए, भस्त्रिका, कपाल भाँति, शीतली व शीतकारी प्राणायाम में बहुत धीमा शब्द होना चाहिए। किसी भी अवस्था में दम घुटने का कष्ट न प्रतीत हो। रेचक के पश्चात् कुछ देर ठहर कर फिर करें।

(१८) नित्य के अभ्यास के लिए एक दो रुचिकर प्राणायाम चुन ले। भस्रिका, कपाल भाँति व सुख साध्य प्राणायाम का नित्य अभ्यास करते हुये शीतली व शीतकारी का कभी-कभी अभ्यास दूसरी बार करे।

(१९) कुम्भक वह अवस्था है जिसमें श्वास और प्रश्वास दोनों क्रियाएँ बन्द रहती है व शरीर निश्चल रहता है। उस अवस्था में अभ्यासी प्रज्ञाचक्षु से देखता, बहिरों की तरह सुनता और शरीर को लकड़ी की तरह अनुभव करता है। कुम्भक की पूर्णता का यही लक्ष्ण है।

(२०) भय, क्रोध, आलस्य न अधिक सोना, न अधिक जागना, 'न अधिक भोजन, न अधिक उपवास आदि नियमों का पालन नित्य प्रति कठोरता से करने पर योगाभ्यासी को तीन महीने में आत्म ज्ञान, चार महीने में देव दर्शन, पाँच महीने में ब्रह्मनिष्ठ और छः महीन में कैवल्य पद प्राप्त हो सकता है इसमें संदेह नहीं।

(२१) नये अभ्यासियों को पहले पूरक व रेचक का ही अभ्यास करना चाहिए। बैठे-बैठे चलते-फिरते भी अभ्यास करने से लाभ होता है।

(२२) कुम्भक का अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाकर पहले सप्ताह में ४ सेकिण्ड दूसरे में ८ व तीसरे में १२ करे तथा इसी प्रकार अपनी शक्ति भर आराम के साथ रोकने का अभ्यास करे।

(२३) अपने अभ्यास में युक्ति से काम लें। यदि कोई अभ्यास उपयुक्त न बैठे तो उसके कारणों का विचार करे, गुरु या किसी

अनुभवी से सम्मति लेकर परिवर्तन कर दे।

(२४) गर्मियों में प्रातःकाल एक बार ही अभ्यास करना चाहिए। सिर में गर्मी मालूम होने पर आँवले का तेल या मक्खन लगाए।

(२५) अभ्यास के नियम पहले आदि से अन्त तक पढ़कर अच्छी तरह समझ लीजिए। कहीं संदेह हो या जो समझ में न आता हो उसे गुरु व किसी अनुभवी से समझ लेना चाहिए।

(२६) सूर्य भेद, उज्जायी से शरीर में गर्मी, शीतकारी व शीतली से ठंडक पैदा होती है तथा भस्त्रिका से शरीर का तापमान स्थिर रहता है। सूर्यभेद से वायु का अधिक नष्ट, उज्जायी से कफ़ और श्लेष्मा, शीतली व शीतकारी से पित्त तथा भस्त्रिका से वात, पित्त और कफ़ तीनों प्रकार के विकार शांत होते हैं।

(२७) सूर्य भेद व उज्जायी का अभ्यास जाड़ों में, शीतली व शीतकारी का गर्मी में तथा भस्त्रिका का अभ्यास हर समय किया जा सकता है। अपनी प्रकृति के अनुसार इनमें परिवर्तन भी किया जा सकता है।

(२८) आध्यात्मिक सफलता आसन, प्राणायाम, जप, ध्यान, ब्रह्मविचार, सत्संग, एकांतवास, मौन, निष्काम, कर्म, सत्य, अहिंसा व ब्रह्मचर्य द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। हठ योग के अभ्यास बिना राज योग कठिनता से सफल होता है। कुम्भक के अन्त में मन को सब पदार्थों से हटा लेने के अभ्यास ही से राज योग में प्रवेश हो जाएगा।

(२९) वेदान्त का अध्ययन करने वाले प्राणायाम पर अधिक ध्यान नहीं देते परन्तु जब तक वे साधन चतुष्टय अर्थात् शमदमादि की षट् सम्पत्ति में निष्णात न हो जावें उस समय तक उनको आसन व प्राणायामादि का अभ्यास करते रहना चाहिए।

(३०) अभ्यास करने में कभी संकोच न करे और न कभी ऐसे गुरु के पाने की ही प्रतीक्षा करे जो सदैव पास बराबर बैठकर अपने सामने अभ्यास कराता रहे। यदि लगन सच्ची है, अभ्यास- विधि व नियम ठीक है और यदि इस पुस्तक में बतलाई हुई विधियों के

अनुसार सावधानी से अभ्यास किया जाय तो किसी प्रकार का कष्ट न होगा तथा अवश्य सफलता मिलेगी। आरंभिक कठिनाईयों, विघ्न बाधाओं से घबड़ाकर अभ्यास न छोड़कर धैर्य, युक्ति व सावधानी से काम लेने पर अन्तरात्मा, ज्ञानशक्ति किसी न किसी प्रकार मार्ग-प्रदर्शन करेगी और आप सच्चे योगी हो जायेंगे।

(३१) प्राणायाम खाली पेट ही अच्छा होता है। अन्यथा श्वास की मात्रा में कमी हो जाती है।

(३२) जीवन का लक्ष्य आत्म साक्षात्कार करना है, यदि आपकी लगन सच्ची है और आप उपयुक्त लक्ष्य प्राप्त करना चाहते हैं तो सांसारिक जीवन में आने वाली विघ्न बाधाओं को दूर करने के लिए बिना हिचकिचाहट व निष्ठुर होकर साहस के साथ विरक्त होकर ईश्वर पर विश्वास करके अभ्यास व साधना कीजिए। परमात्मा आपकी अवश्य सहायता करेंगे।

(३३) समय व संख्या की मात्रा जानने के लिए अभ्यास के समय ॐ का उच्चारण करते रहना चाहिए। बल्कि ॐ का उच्चारण आसनों व दूसरे व्यायामों के साथ भी करने से संख्या जप दोनों काम हो जाते हैं।

(३४) प्राणायाम के समय छाती को ऊपर की तरफ ऊँची व चौड़ी और कमर सीधी व पेट ढीला रखे।

(३५) पूरक व रेचक करते समय साधारणतया कोई ज़ोर का शब्द नहीं होना चाहिए। विशुद्ध पूरक व रेचक वही है जिसमें शब्द न हो।

(३६) रेचक करते समय पसलियों और धड़ का सारा ऊपरी भाग साँस निकालने के साथ-साथ धीरे-धीरे सिकुड़ता जाय और नीचे वाली पसलियाँ और पेडू ऊपर खिंचते आवें।

(३७) शरीर व छाती को आगे बहुत कम झुकने दें। धड़ गर्दन एक सीध में रहना चाहिए।

(३८) साँस लेने वाली मांस पेशियों को ढीला करने से और छाती के स्वयं बैठने से श्वास भी स्वतः निकलने लगती है।

(३९) आरम्भ में श्वास लेने के पश्चात् ही उसे रोकने का प्रयत्न न करे बल्कि श्वास लेने के बाद ही उसे निकालना शुरू कर दे। जब इसका अच्छी तरह अभ्यास हो जाय तब पाँच सेकिण्ड से कुम्भक का अभ्यास आरम्भ करके धीरे धीरे बढ़ावे।

(४०) एक आवृत्ति करने के पश्चात् कुछ ठहर कर अर्थात् दो चार मिनिट विश्राम ले लेना चाहिए।

(४१) सूर्योदय और सूर्यास्त यह दो संध्याकाल हैं। इन दोनों संधि कालों के समय दोनों श्वास दो तीन मिनिट तक बराबर साथ-साथ चलते हैं अर्थात् उस समय सुषुम्ना नाड़ी चलती है। यह प्राणायाम अन्य साधनाओं के लिए अत्यन्त उपयुक्त समय है। यही कारण है कि संध्या उक्त दोनों संधियों के समय ही की जाती है। इसलिए उसे संध्या कहते हैं।

प्राणायाम करते समय निम्नलिखित स्थानों में दृष्टि स्थिर करना चाहिए तथा किन-किन स्थानों में दृष्टि स्थिर करने से क्या क्या लाभ होते हैं इसका विवरण इस प्रकार है।

(१) पैरों के अँगूठों पर दृष्टि करने से शरीर हल्का होता है।

(२) नाभि मूल पर दृष्टि स्थिर करने से सर्व रोगों का नाश होता है।

(३) नासाग्र पर दृष्टि स्थित करते हुए प्राणायाम करने से वायु पर अधिकार होता है। प्राणायाम के समय नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि स्थिर करने का उद्देश्य यह है कि नेत्रों के अधिक खोलने से क्षय होगा

और बिल्कुल बन्द करने से आलस्य से चित्त लय होगा। उस समय शाम्भवी मुद्रा की तरह नेत्र किंचित् खुले रखना चाहिए।

(४) भृकुटी मध्या जो कि द्विदल कमल है और शिवजी का निवास स्थान है। यहाँ महाकाल रूद्र लेटे हैं। जगदम्बा कुंडलिनी जागृत होकर इसी स्थान पर ठोकर लगाती है और उनके वक्षस्थल पर नृत्य करके उनमें जीवन का संचार करती हुई सहस्रदल पद्म में विहार करती है, तथा यहीं पर प्राणायाम सम्बन्धी इड़ा, पिंगला व सुषम्ना नाड़ियों का सम्बन्ध होता है।

प्राणायाम के अङ्ग

इड़ा-पिंगला

प्राणायाम दोनों नासारंध्रो व मुँह से भी किया जाता है। इन दोनों नासांरध्रों में वाम को चन्द्र स्वर अर्थात् इड़ा व दाहिने को सूर्य स्वर अर्थात् पिंगला कहते हैं।

पूरक, कुम्भक व रेचक

जिन क्रियाओं द्वारा प्राणायाम किया जाता है उनको (१) पूरक (२) कुम्भक और (३) रेचक कहते हैं।

(१) **पूरक** - आकाशस्थ वायु को खींचकर पेट भरने को पूरक कहते हैं। इसे सदा धीरे-धीरे करना चाहिए क्योंकि शीघ्रता से किया गया पूरक हानि करता है। पूरक करते समय यह अनुभव करे कि दैवी शक्ति, कृपा, प्रेम, दया, सत्य, अहिंसा व ब्रह्मचर्य आदि मेरी अन्तरात्मा में प्रवेश कर रहे हैं।

(२) **कुम्भक**- पेट में भरे हुए वायु को अन्दर व बाहर के वायु को बाहर ही रोके रहने को कुम्भक कहते हैं। कुम्भक दो प्रकार के होते हैं। (१) आन्तर कुम्भक (२) वाह्य कुम्भक।

(१) **आन्तर कुम्भक**- बाहर से खींचकर भरे हुए श्वास को अन्दर ही रोक रहने को कहते हैं।

(२) **वाह्य कुम्भक** - श्वास को बाहर निकाल कर फिर न लेना अर्थात् उसे फिर वहीं रोके रहने को कहते हैं।

कुम्भक

इसके और भी कई भेद हैं।

(१) **वाह्य कुम्भक** - आठ प्रणव (ॐ) के उच्चारण से रेचक करके सोलह से वाह्य कुम्भक करना और फिर चार से पूरक करना वाह्य कुम्भक है।

(२) **आभ्यन्तर कुम्भक**- बाहर के वायु को चार प्रणव से पूरक, सोलह से कुम्भक और आठ से रेचक करना आभ्यन्तर कुम्भक है।

प्रयत्नपूर्वक स्थिर किया हुआ कुम्भक बल वर्धक व लाभदायक होता है। कुम्भक में शिथिलता करना हानिकारक हैं। कुम्भक सदा उतना ही करे जिसमें रेचक धीरे-धीरे हो सके। रेचक के पश्चात् दो तीन सेकिण्ड कुम्भक करके फिर पूरक करें।

कुम्भक चलते, फिरते व खड़े होते किसी भी अवस्था में किया जा सकता है।

बाह्य और आभ्यन्तर दोनों कुम्भक करने योग्य हैं। जिस मात्रा में आभ्यन्तर किया जाता है उसी में बाह्य भी किया जाना चाहिए। आरम्भ में अभ्यास करते **समय** कुछ कठिनाई मालूम होती है परन्तु धीरे-धीरे सरलता से होने लगता है और साथ ही में किया जा सकता है। बाह्य कुम्भक रेचक के पश्चात् किया जाता है और उसके पश्चात् ही फिर पूरक से आरम्भ किया जाता है अर्थात् पहले पूरक फिर अभ्यान्तर कुम्भक रेचक के उपरांत बाह्य

कुम्भक। इसी प्रकार चक्र चलता है।

(३) **रेचक**- पेट में रोके हुये वायु को बाहर निकालने को रेचक कहते हैं। रेचक भी किसी विशेष क्रिया के सिवाय कभी भी शीघ्रता से नहीं करना चाहिए अन्यथा बल की हानि होती है। रेचक के समय यह अनुभव करे कि लोभ, मोह, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, मद व मत्सर आदि आसुरी वृत्तियाँ मेरे शरीर से बाहर निकल रही है।

जिस नासिका से पूरक किया गया हो उससे कभी रेचक न करे परन्तु दोनों नासिकाओं से पूरक करने पर यथा कथित एक या दोनों से रेचक किया जा सकता है।

पूरक करते समय जो नाभि तक श्वास खींचता है उसे रेचक के सोलह अँगुल, जो हृदय तक खींचता है वह आठ अँगुल और जो नासिका के अन्दर ऊपरी अन्तिम भाग तक हीं खींचता है उसे चार अँगुल तक ही छोड़े।

मुँह-मुँह से जहाँ जैसा करने का आदेश हो उसके सिवाय मुँह से पूरक व रेचक न करें। मुँह से रेचक करना तो कभी श्रेयस्कर नहीं है क्योंकि उससे बल का बहुत क्षय होता है।

प्राणायाम वाम नासारंध्र से आरम्भ करके क्रमशः दाहिने बाएँ से करें।

प्राणायाम का समय

प्राणायाम का अभ्यास करने के लिए सूर्योदय के एक पहर पहले शौचादि से निवृत्त होकर स्नान संध्यादि करने के पश्चात् गुरु, इष्टदेव व सहस्रमुख वाले शेषनाग जो और उन पर लेटे हुए भगवान् लक्ष्मीनारायण का ध्यान करे। फिर रीढ़ सीधा करके जिस आसन से सुखपूर्वक बैठ सके उसे लगाकर एकाग्र चित्त से अभ्यास आरम्भ करे।

धूप, अगरबत्ती आदि द्वारा वायु को शुद्ध कर ले।

संभव हो तो दिन रात में चार बार अर्थात सूर्योदय के पूर्व, मध्यान्ह, सायंकाल और अर्धरात्रि में दस से बारह बजे तक प्राणायाम का अभ्यास करे। यदि ऐसा न कर सके तो प्रातः मध्यान्ह और शाम को करे। यह भी न कर सकने पर प्रातः व सांयकाल ही करे।

गर्मियों में सुबह केवल एक चक्र का अभ्यास करे।

प्रणायाम के भेद (प्रकार)

प्राणायाम तीन प्रकार के होते हैं। (१) आभ्यन्तर वृत्ति (२)स्तम्भ वृत्ति (३) वाह्य वृत्ति

(१) **आभ्यन्तर वृत्ति-** चार प्रणव से पूरक, सोलह से आभ्यन्तर कुम्भक आठ से रेचक करने को कहते हैं।

(२) **स्तम्भ वृत्ति-** चार प्रणव से पूरक, आठ से रेचक करते-करते सुखपूर्वक जहाँ कहीं भी प्राणों को रोकने को कहते हैं।

(३) **वाह्य वृत्ति-** आठ प्रणव से रेचक, सोलह से वाह्य कुम्भक और चार से पूरक करने को कहते हैं। प्राणयाम के और भी कई भेद है जैसे (१) अगर्भ अर्थात अबीज और (२) सगर्भ अर्थात सबीज।

अगर्भ अर्थात अबीज- बीज (मंत्र) का उच्चारण न करके जो प्राणायाम किया जाता है उसे कहते हैं।

सगर्भ अर्थात सबीज- ध्यान और मानस जप करते हुए जो प्राणायाम किया जाता है उसे कहते हैं।

प्राणायाम के समय चित्त को स्थिर करने के स्थानों को देश कहते हैं, यह भी दो प्रकार के होते हैं। (१)आभ्यन्तर देश(२) बाह्य देश।

आभ्यन्तर देश- प्राणवायु का नाभि, हृदय, कंठ या नासिका के भीतरी भाग तक को कहते हैं।

बाह्य देश- नासिका से बाहर सोलह अँगुल तक बाह्य देश कहलाता है।

प्राणायाम का अनुपात

प्राणायाम में संख्या और काल का बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है अतएव इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि इनमें न्यूनाधिकता न होने पावे। इस सम्बन्ध में प्राणायामों के अनुसार पूरक, कुम्भक व रेचक के अनुपात का विवरण आगे दिया जाता है।

प्राणायाम	पूरक	कुम्भक	रेचक	बाह्य कुम्भक
(१) निकृष्ट	४	१६	८	१ सेकिन्ड
(२) मध्यम	६,८	२४,३२	१२,१२	२ "
(३) उत्तम	८,१६,३२	१६,६४,१२८	१६,३२,१२८	३,४,५"

ऊपर लिखे अनुपात के सिवाय द्वादश मात्रा में पूरक वाला प्राणायाम अधम होता है, इसके अभ्यास से शरीर में पसीना आता है। चौबीस मात्रा में पूरक वाला मध्यम होता है, उससे शरीर में कम्पन होता है और बत्तीस में पूरक वाला उत्तम होता है इससे वायु ब्रह्मरंध्र में ठहरती है।

जितनी संख्या और काल में पूरक किया जाय उतनी ही संख्या और काल रेचक व कुम्भक में भी लगाया जा सकता है अर्थात् पूरक, कुम्भक व रेचक का अनुपात क्रमशः १,४,२ है।

प्रत्येक बार कम से कम दस प्राणायाम करना चाहिए।

बारह प्राणायामों की एक आकृति व प्रत्याहार कहलाता है। १२X१२ अर्थात् १४४ की एक धारणा होती है। १२X१२X१२ अर्थात् १७२८ का एक ध्यान होता है व १२X१२X१२X१२ अर्थात् २०७३६ प्राणायामों की एक समाधि होती है। इतने प्राणायाम एक ही बैठक में करने होते हैं। अन्तिम साधन केवल अभ्यस्त योगी ही सात दिन तक अहोरात्र सतत उसी में लगाकर कर सकता है।

प्राणायाम की संख्या व अनुपात क्रमशः धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। इसमें जल्दी नहीं करनी चाहिए अन्यथा लाभ की अपेक्षा हानि होने की सम्भावना रहती है। धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाकर प्रत्येक समय अस्सी के अनुपात से चार बार (प्रातः, दोपहर, सायंकाल व रात्रि) में ३२० मर्तबा तक किया जा सकता हैं।

आरम्भ अवस्था में शरीर से पसीना निकलता है। प्राणायाम करते करते जब शरीर में कम्प होने लगे तो उसे मध्यमावस्था कहते हैं। जब शरीर ज़मीन से उठकर अधर अवस्था में ठहरने लगता है तब उसे अन्तिम अवस्था कहते हैं।

पसीना आने पर शरीर को हाथ से खूब रगड़ने से शरीर हल्का और बलवान् होता है।

प्राणायाम के प्रकार

नाड़ी शोधक प्राणायाम

(१) अनुलोम-विलोम (२) नाड़ी-शोधक (३) अभ्यासिक ।

अन्य प्राणायाम

(१) सूर्यभेदी (२) उज्जायी (३) शीतकारी (४) शीतली (५) भस्रा अथवा, भस्त्रिका (६) भ्रमरी (७) मूर्च्छा (८) प्लावनी (९) कपालभाति (१०) तालयुक्त (११) कुण्डलिनी जागृत करने वाला (१२) सुखसाध्य (१३) चलते-फिरते में प्राणायाम (१४) शवासन में प्राणायाम (१५) केवल कुम्भक (१६) सूर्यचक्र पर ध्यान लगाने वाला प्राणायाम।

नेति, धौति, कपालभाति आदि क्रियाओं द्वारा नाड़ी शोधन किया जाता है परन्तु प्रत्येक विशेषकर दुर्बल मनुष्यों के लिए यह सम्भव और सुलभ नहीं है क्योंकि यदि उक्त क्रियाएँ उचित रीति से न की गई तो दुःसाध्य व्याधियों से नाना प्रकार के कष्ट भोगना तथा यमराज का मेहमान बनना पड़ता है।

वर्तमान काल का विचार करके जगद्‌गुरु भगवान् शंकराचार्य ने नाड़ी शोधन की आगे लिखी अनुलोम-विलोम नामक अत्यन्त सरल विधि बतलाई है, जिसके द्वारा नाड़ी शोधन की क्रिया दो तीन महीने में सिद्ध हो जाती है और उसमें किसी प्रकार की हानि का भी भय नहीं ।

आसन सिद्ध हो जाने पर प्राणायाम आरम्भ करने के पहले नाड़ी शोधन की क्रिया आरम्भ करे।

अनुलोम-विलोम

(१)

स्थिर भाव से किसी आसन में सुख से बैठकर दाहिने हाथ के अँगूठे से दाहिनी नासिका को बन्द कर बायीं नासिका से पूरक करे और वायु को ज़रा देर भी न रोककर अनामिका व कनिष्ठिका अँगुलियों से बायीं नासिका को बन्द करके दाहिनी नासिका से धीरे-धीरे रेचक कर दे। इसी प्रकार दाहिनी नासिका से पूरक करके बायीं से रेचक करे। इस प्रकार प्रथम तीन बार, पश्चात् क्रमशः पाँच, सात व अधिक संख्या बढ़ावे। इसको किसी भी ऋतु में किया जा सकता है।

इस प्रकार प्रातः, दोपहर, सायंकाल व अर्धरात्रि के समय अर्थात् चार बार नियमपूर्वक अभ्यास करने से यह क्रिया सिद्ध हो जाएगी। अभ्यास करते करते कभी-कभी मन प्रफुल्ल हो उठता है व नाक में सुगन्ध मालूम होने लगती है। यह लक्षण जब प्रकट होने लगे तब इस क्रिया को सिद्ध समझना चाहिए।

(२)

सुखासन अथवा पद्मासन आदि किसी आसन से सुख पूर्वक बैठकर नीचे लिखे अनुसार अभ्यास करे।

(१) बायीं नासिका को अँगूठे से बन्द कर दाहिनी नासिका से ज़ोर से श्वास लेकर ज़ोर से छोड़ दे।

(२) दाहिनी नासिका को बन्द करके बायीं नासिका से उसी तरह ज़ोर से श्वास लेकर ज़ोर से छोड़ दे।

(३) दोनों नासिकाओं से श्वास लेकर बाएँ से और बाएँ से लेकर दाहिनी से धीरे-धीरे छोड़े।

उक्त तीनों अभ्यास लगातार साथ-साथ नहीं बल्कि एक ही समय क्रमशः जितनी-जितनी भी संख्या में हो सके करे। संख्या धीरे-धीरे बढ़ावें।

नाड़ी शोधक प्राणायाम

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है कि नाड़ियों में जब तक मल भरा रहता है तब तक वायु सुषुम्ना मार्ग में प्रवेश नही कर पाता। अतएव प्राणायाम का अभ्यास करने के पहले नाड़ियों की सफ़ाई कर लेना अत्यन्त आवश्यक है। समानु और निर्मानु नामक दो उपायों से भी नाड़ी शुद्ध होती है। समानु उपाय में बीज मंत्र के जप द्वारा और निर्मानु उपाय में षट्कर्मों द्वारा नाड़ी शुद्ध की जाती है।

विधि

(१) पद्मासन से बैठकर धूम्रवर्ण के वायु बीज वं का ध्यान करिए। बायीं नासिका से श्वास लेकर पूरक करते समय सोलह बार वायु बीजाक्षर को मन में जपिए। इसी प्रकार मन में चौसट बार उसी बीजाक्षर का जप करते हुए कुम्भक करिए और बत्तीस बार बीज मंत्र के जप में दाहिनी नासिका से रेचक करिए।

(२) नाभि में अग्नि तत्त्व का स्थान है। अग्नि तत्त्व का ध्यान करते हुए दक्षिण नासिका से अग्नि बीज रं का सोलह बार मानसिक जप के साथ पूरक करिए। पश्चात् चौसठ बार उसी बीज का जप करते हुए कुम्भक और बत्तीस बार जप करते हुए बायीं नासिका से रेचक करिए।

(३) चन्द्रमा (भ्रूमध्य) पर अपनी दृष्टि स्थिर करिए और वाम

नासिका द्वारा सोलह बार व बीज का मानसिक जप करते हुए पूरक करिए।

पश्चात् चौसठ बार उसी का जप करते हुए कुम्भक करके बत्तीस बार पृथ्वी बीज लं का जप करते हुए दक्षिण नासिका से रेचक करिए। कुम्भक के समय ऐसा ध्यान करिए कि चन्द्रमा से प्रवाहित होने वाला अमृत सारे शरीर की रग-रग में बह कर नाड़ी शुद्ध कर रहा है।

उपर्युक्त तीनों प्रकार के प्राणायामों में किसी का भी अभ्यास करने से नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं। इसके उपरांत अपने नित्य के अभ्यास. वाले आसन पर बैठकर साधारण प्राणायाम का अभ्यास करिए।

शांडिल्य उपनिषद् के मतानुसार नाड़ी शोधक प्राणायाम लगातार कई महीनों तक नित्य कम से कम दो बार करना चाहिए, देह की कृशता, कान्ति इच्छानुसार वायु धारण करने की सामर्थ्य, अग्नि वृद्धि, नाद की अभिव्यक्ति और आरोग्यता आदि लक्षण जब क्रमशः आविर्भूत हो जाए तब समझना चाहिए कि सब नाड़ियाँ शुद्ध हो गई।

अभ्यास नं. 1

पद्मासन या सिद्धासन से बैठकर तथा मूलबंध लगाकर वाम नासापुट से थोड़ा रेचक करके परूक करना चाहिए। पश्चात् जालंधर बंध लगाकर कुम्भक करना चाहिए, अन्त में जालंधर बंध को खोलकर और उड्डियान बंध लगाकर दक्षिण नासापुट से धीरे-धीरे रेचक करना चाहिए। पुनः एक सेकिण्ड बाह्य कुम्भक करके दक्षिण पुट से पूरक करना चाहिए। फिर आन्तरिक बल के अनुसार कुम्भक करके वाम स्वर से रेचक करना चाहिए। इस प्रकार दो प्राणायाम हो जाते हैं। पुनः एक सेकिण्ड वाह्य कुम्भक करके पूर्वानुसार आवृत्ति करना चाहिए। इस प्रकार एक साथ दस प्राणायाम करना चाहिए फिर

प्रतिदिन पाँच-पाँच प्राणायाम बढ़ाकर एक सप्ताह में उसकी संख्या चालीस कर देनी चाहिए।

अभ्यास नं. 2

मूलबंध लगाकर सिद्धासन, पद्मासन अथवा स्वस्तिकासन से बैठकर पहले शरीरस्थ समस्त अशुद्ध वायु को नासिका द्वारों से निकाल दे (ऐसा करने से पेट खाली हो जाने के कारण स्वभावत: अन्दर चला जाएगा उसे उसी दशा में रोकते हुए) फिर बायीं नासिका से क्रमश: ४,८,१६ मात्राओं से पूरक करे और जालंधर बंध लगाकर क्रमश: १६, ६४,३२, मात्राओं तक कुम्भक करें। पश्चात् जालंधर बंध हटाकर क्रमश: ८,३२,१६ मात्रा में दाहिनी नासिका से रेचक करे। रेचक करने से पेट पुन: अन्दर चला जाएगा। उसको कुछ देर उसी स्थिति में रखे।

इसी प्रकार दाहिनी नासिका से आरम्भ करे और बायीं से रेचक करे यह एक प्राणायाम हुआ। आरम्भ में १०-२० प्राणायाम करे। इसके अभ्यास से भी तीन मास में समस्त नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती है।

यह प्राणायाम समशीतोष्ण होने से बारहों मास किया जा सकता है।

अभ्यास नं. 3

किसी आसन से सुखपूर्वक एकाग्रचित बैठे और रीढ़ को सीधा रखे। दाहिने हाथ के अँगूठे से दाहिनी नासिका को बंद करे औार वाम नासारंध्र से धीरे-धीरे पूरक करे। साँस खीचतें समय मूलबंध करते हुए क्रम से गर्दन को झुकावे जिससे पूरक के अन्त तक ठोड़ी छाती से लगकर जालंधर बंध लग जावे। अब कनिष्ठिका और अनामिका उँगलियों से वाम नासारंध्र बंद करके पूरक में जितना समय लगा हो उससे चौगुने समय तक कुम्भक करें। उसके उपरांत अँगूठा हठा दक्षिण नासारंध्र खोलकर पूरक के दुगुने समय में धीरे-धीरे रेचक

करे। उस समय नाभि के आधे भाग को धीरे-धीरे दबाते जाय और गर्दन को उठाते जाय। रेचक के बाद बगैर श्वास टूटे दक्षिण नासारंध्र से वायु निकाल दें। इसे कम से कम दस से आरम्भ करे और धीरे-धीरे शक्ति के अनुसार बढ़ाते जाय।

(१) सूर्य भेदी

पद्मासन या सिद्धासन से बैठकर दाहिनी अनामिका व कनिष्ठिका उँगलियों से बायाँ नासारंध्र बंन्द करके दाहिने नासारंध्र से जब तक हो सके धीरे-धीरे पूरक करने के बाद दाहिने अँगूठे से ही दाहिना नासारंध्र भी बन्द कर ले तथा जालंधर बंध लगाकर नेत्र बन्द रखे। जब तक बालों और नखों तक रुका हुआ वायु न पहुँच जाय व बदन में पसीना न आ जाय उस वक़्त तक कुम्भक करके दाहिना नासारंध्र बन्द रखते हुये बाएँ सें धीरे-धीरे रेचक करे। कुम्भक का समय धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए।

दाहिने नासारंध्र से ही पूरक करने के कारण इसे सूर्य भेदी प्राणायाम कहते हैं। परन्तु कुछ योगाचार्यों के मतानुसार यह दोनों नासारंध्रों से किया जा सकता है।

इसके अभ्यास से मस्तक के सब व ८० प्रकार के वात रोग तथा उदर के कीड़े नष्ट हो जाते हैं। सिर, कृमि आदि के रोग व ८४ प्रकार के वात रोग दूर होते हैं।

(२) पहले थोड़ा रेचक करके दाहिने नासारंध्र से पूरक फिर जालंधर बंध के साथ कुम्भक करके बाएँ नासारंध्र से रेचक कर दे।

इसके अभ्यास के कपाल देश में जमा श्लेष्म, वातवाह्य

नाड़ियों के विकार, रक्त व त्वचा दोष, उदर व प्रस्वेद व कुष्ठादि से उत्पन्न कृमि, नष्ट हो जाते हैं। यह मन को शुद्ध और वायु प्रकोप के चार रोग व आँतों के विकारों को दूर करता है। गाठिया, नाक व सिर के रोग तथा नसों की पीड़ा का निवारण करता है। कुंडलिनी जाग्रत होती है।

आरम्भ में दोनों प्रकार के अभ्यासों को १० से २० तक करे। इनसे शरीर में उष्णता बढ़ती है अतएव इनको सर्दियों में करे।

(२) उज्जायी

(१) इसमें मुँह बन्द करके दोनों नासारंध्रों से इस तरह पूरक करे कि कंठ से हृदय तक हल्के घर्राटे का शब्द होता रहे। सूर्य भेदी की तरह अधिक से अधिक देर तक कुम्भक करे व दाहिने अँगूठे से दाहिने नासारंध्र को बन्द करके बाएँ धीरे-धीरे रेचक करे। आरम्भ में १०-२० तक करे। इससे कंठ के कफ़ का दोष नष्ट होता है। जठराग्नि प्रदीप्त, दमा, क्षय, गुल्म व जालंधर आदि रोग नष्ट होकर आयुवृद्धि होती है।

यह प्राणायाम भी उष्ण है अतएव इसे भी शरद् ऋतु में ही करें।

(२) मुँह को कुछ आगे झुकाकर कंठ से हृदय पर्यंत शब्द करते हुए वायु को फुफ्फुस (फेफड़ों) में प्रविष्ट करें इस प्रकार दोनों नासापुटों से अल्प परिणाम में वायु को खींचकर व चार पाँच सैकिण्ड कुम्भक करके दाहिने हाथ के अँगूठे से दाहिनी नासारंध्र को बन्द करके बाएँ से धीरे धीरे रेचक करे। इसमें पूरक, रेचक व कुम्भक परिमाण में ही किये जाते हैं और किसी बंध के लगाने की आवश्यकता नहीं। इसका अभ्यास चलते-फिरते, उठते-बैठते भी

किया जा सकता है।

शरीर की अस्वस्थता के कारण जब दूसरे प्राणायाम न कर सके व समय अनुकूल न हो तो एक घंटे या शक्ति के अनुसार इसे करें।

इसके अभ्यास से कफ़ दोष, पेचिस, उदर रोग, जलोदर, शोथ, मन्दाग्नि, अजीर्ण, मेदादि धातुओं के विकार, मलावरोध जनित समस्त रोग, दमा, क्षय आदि दूर होते व अग्नि प्रदीप्त होती है।

इसको सात बार से आरम्भ करके प्रति सप्ताह तीन तीन बढ़ाते हुए इक्कीस तक बढ़ावे।

(३) शीतकारी

(१) दोनों नासारंध्रों को बन्द करके जिह्वा को दोनों ओठों के बीच में लगाकर या मोड़कर उसका सिरा तालु से लगाकर सिसकारी भरते हुये पूरक करके यथाशक्ति कुम्भक करने के पश्चात् दोनों नासारंध्रों से धीरे-धीरे रेचक करे।

इसके अभ्यास से कामदेव की तरह शरीर हो जाता है। यह शीतल है अतएव इसे गर्मियों में करे। तीन वर्ष तक निरन्तर सौ-सौ संख्या में प्रतिदिन के अभ्यास से युवावस्था प्राप्त होती है, सफ़ेद बाल काले हो जाते हैं।

(२) ओठों को फुलाकर व दाँतों के बीच से जीभ को ओठों तक निकाल कर मुँह से सीत्कार करते हुए वायु को खींचकर अन्दर प्रवेश करके दोनों नासारंध्रों को बन्द कर ले। चार, पाँच सेकिण्ड या यथाशक्ति जिह्वामूल में कुम्भक करने के पश्चात् दोनों नासारंध्रों से धीरे-धीरे रेचक करें। देर तक करना हो तो बंध लगावे, अन्यथा नहीं।

इससे क्षुधा, तृष्णा, निद्रा, आलस्य, तन्द्रा नष्ट व पित्त कोप कम होकर शरीर तेज़स्वी होकर स्फूर्ति आती है। किसी चोट का असर न होकर इसका अभ्यासी इन्द्र के समान बलवान् व योगेन्द्र तथा छः महीने के अभ्यास से सब रोगों से मुक्त हो जाता है।

प्रातः दोपहर व संध्या समय जो मुख से वायुपान करता है उसकी जिह्वा पर सरस्वती का वास व वह वृहस्पति के समान विद्वान् व चतुर वक्ता हो जाता है।

(४) शीतली

(१) दोनों नासारंध्रों को बन्द कर ओठों को बाहर पक्षी की चोंच की तरह बल देकर अर्थात् नली से बनाकर व थोड़ी सी जीभ निकाल कर धीरे-धीरे सीटी सी बजाते हुए यथाशक्ति पूरक करे और कुम्भक करने के उपरान्त दोनों नासारंध्रों से धीरे-धीरे रेचक कर दे। आरम्भ में दस से बीस तक करे।

(२) जीभ को ओठों से एक अँगुल बाहर पक्षी की चोंच की आकृति बनाकर बाहर से वायु खीचें। कुछ देर कुम्भक करने के बाद दोनों नासारंध्रों से धीर-धीरे रेचक करे। इसका अभ्यास प्रातः व सांयकाल आधे घंटे तक पदम या सिद्धासन से अथवा चलते फिरते करे।

इन दोनों अभ्यासों से रक्त शुद्ध, भूख-प्यास शांत, शरीर शीतल, गुल्म प्लीहा, ज्वर, रेतक्षय, शूल छाती, पेट का किसी प्रकार का दर्द दूर हो जाता है। जलन, वात, पित्त, कफ़ की समानता होने से कोई व्याधि नहीं हो पाती। बिच्छू व सर्प का विष नही चढ़ता, रूप लावण्य की वृद्धि होती है। यह प्राणायाम गर्म कोठे वालों के लिए लाभदायक

है। इससे रक्त स्वच्छ होकर शरीर कामदेव की तरह तेज़ होता है।

कुंडलिनी का ध्यान करते हुए दोनों संध्याओं के समय जो इस प्राणायाम को करता है उसका क्षय-रोग नष्ट होता है।, उसे दूर की वस्तु दिखाई देती है, अन्न, जल व वायु का कष्ट सरलता पूर्वक सहा जा सकता है।

यह शीतल है अतएव इसे गर्मियों में करे। प्रतिदिन, दो तीन, चार बार पाँच-सात मिनिट प्रति बार अथवा जितना अधिक हो सके करे उतना ही लाभ होगा।

इससे कभी अजीर्ण, कफ़ पित्तादि व चर्मरोग नहीं होते। इसका फल दीर्घ काल तक रहता है।

इससे शरीर विशेष स्वस्थ रहता है अतएव योगी लोग प्रायः इसी को करते है।

(५) भस्त्रा अथवा भस्त्रिका

यह प्राणायाम आगे लिखी किसी भी विधि से किया जा सकता है।

(१) इसका अभ्यास करने वाले को पद्मासन से बैठकर नासारंध्रों से ही पूरक रेचक करना चाहिए। रेचक व पूरक फुफकार के साथ इस तरह करे कि हृदय, कंठ व कपाल तक वायु पहुँचने लगे। कुछ देर धीरे-धीरे करके फिर लुहार की धौंकनी की तरह वेग से शब्द पूर्वक रेचक-पूरक करे, यह रेचक पूरक बीस बार या तब तक करे जब तक कि शरीर थक न जाय। जब थक जाय तब धीरे-धीरे दाहिनी नासिका से यथाशक्ति पूरक व यथाशक्ति कुम्भक करने के पश्चात् धीरे-धीरे बाएँ नासारंध्र से रेचक करे। इसी प्रकार बाम

नासारंध्र से पूरक और दक्षिण से रेचक करे। प्रातः व सायंकाल बीस-बीस की एक से तीन आवृत्तियाँ करे।

(२) बायीं नासिका से कम से कम दस घर्षण (वेग पूर्वक पूरक व रेचक) करके ग्यारहवीं बार उसी नासिका से पूरक करे। यथाशक्ति कुम्भक करके दाहिनी नासिका से धीरे-धीरे रेचक करे। फिर दाहिनी नासिका से इसी प्रकार पूरक करके बायीं से रेचक करे। आरम्भ में पाँच से दस प्राणायाम तक करे।

(३) दाहिनी नासिका से बायीं नासिका की तरफ़ कम से कम दस घर्षण करके दाहिनी नासिका से ही पूरक करे और यथाशक्ति कुम्भक करने के बाद धीरे-धीरे बायीं नासिका से रेचक कर दे। फिर विपरीत क्रम से भी ऐसा ही करे।

यह शीतोष्ण है इसलिए इसको बारहों मास किया जा सकता है। इसके छः मास तक दस-दस की संख्या के प्रतिदिन अभ्यास करने से कुंडलिनी जागृत होती है व छः हों चक्रों का भेदन होकर प्राण ब्रह्मरंध्र में जाने लगता है।

कपालभाति और उज्जाई के संयोग का नाम भी भस्त्रिका है इसके अभ्यास के पहले कपालभाति व उज्जाई का अभ्यास कर लेना चाहिए। यह अत्यन्त बलशाली प्राणायाम है। अभ्यास करते समय यदि घिग्घी बंधने लगे तो कुछ ठहर कर चित्त ठिकाने आ जाने पर फिर करे। जाड़ों में सुबह व शाम, गर्मियों में केवल सुबह की करे।

इसके अभ्यास से गले की सूजन, कफ़ का विकार नष्ट होकर जठराग्नि प्रदीप्त होती है। ब्रह्मा, विष्णु और रूद्र ग्रंथियाँ खुल जाती हैं। सुषुम्ना (ब्रह्म नाड़ी) के द्वार को बन्द रखने वाला कफ़ नष्ट हो जाता है। वात, पित्त व कफ़ से उत्पन्न होने वाले रोग नष्ट हो जाते हैं। शरीर में गर्मी आती है, नाड़ी शुद्ध होती है। सर्दी लगने पर इसका अभ्यास करने से शरीर में गर्मी आ जाती है।

इसका कुम्भक सर्व श्रेष्ठ माना गया है अतएव उसका विशेष रूप से अभ्यास करना चाहिए। उसके अभ्यास से सुषुम्नाश्रित तीनों ग्रन्थियाँ खुल जाती है। कुंडलिनी शीघ्र जाग्रत होती है, इसके अभ्यासी को कभी कोई रोग नहीं होता।

(६) भ्रामरी

(१) पद्मासन या सिद्धासन लगाकर बैठे और पूरक व रेचक दोनों रंध्रो से जल्दी जल्दी इस तरह का शब्द करते हुए करना चाहिए जैसे शहद की मक्खियाँ करती हैं। पूरक व रेचक तब तक करना चाहिए जब तक शरीर से पसीना न निकलने लगे। अन्त में दोनों नासारंध्रों से एक खूब गहरी साँस लेकर उसे यथाशक्ति रोके और अन्त में धीरे-धीरे नासरंध्रों से रेचक कर दे।

यह लोम-विलोम की तरह भी किया जाता है। भेद केवल इतना है कि बायीं नासिका से पूरक करते समय भ्रामरी जैसा नाद स्वर में उत्पन्न करे और दाहिनी से रेचक करते समय भ्रामरी जैसा नाद करें।

(२) सिद्धासन पर बैठकर नेत्र बन्द करके भ्रू में लक्ष्य करे और जालंधर बंध लगावे फिर नासिकाअें से भ्रमर की गुजांर की तरह स्वर सहित प्राणायाम करे। तीन सेकिण्ड कुम्भक करके धीरे-धीरे आवाज़ सहित रेचक करे। इस प्रकार १४४ प्राणायाम करे।

इस प्राणायाम से मन की शीघ्र एकाग्रता होती है व नाद बहुत ज़ोर से उठता है, समाधि शीघ्र व अच्छी तरह लगती है व आनन्द प्राप्त होता है। इसमें जो आनन्द आता है वह वर्णन नहीं हो सकता। अभ्यास करते समय कुछ गर्मी बढ़ती है परन्तु शीघ्र ही शांत हो जाती है।

(७) मूर्च्छा

इसको षड़मुखी मुद्रा भी कहते हैं। यह प्राणायाम पाँच भूतों के पाँच रंग है। पृथ्वी का पीला, जल का सफ़ेद, तेज़ का लाल, वायु का हरा और आकाश का नीला उसको जानने के लिए हैं।

(१) पद्मासन आदि से बैठकर पूरक करे व जालंधर बंध लगावे और श्वास उस वक्त तक रोके रहे जब तक कि बेहोशी न मालूम हो। बेहोशी मालूम होने पर धीरे-धीरे रेचक कर दे। इसी कारण इसका नाम मूर्च्छा पड़ा है।

यह क्रिया विशेष प्रकार के साधक के लिए है हर एक के लिए नहीं।

(२) दोनों हाथों के अँगूठे दोनों कानों में, दोनों तर्जनी दोनों आँखों पर, दोनों मध्यमा नासिकाओं पर और अनामिका व कनिष्ठिकाओं को मुँह पर रखे। मूलबंध व जालंधर बंध को आरम्भ से अन्त तक स्थिर रखकर बायीं नासिका से पूरक व यथाशक्ति कुम्भक करके दाहिनी नासिका से धीरे-धीरे रेचक करे।

(३) भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास पूरा होने पर सिद्धासन से बैठकर दोनों नासाग्र से पूरक करके जालंधर बंध लगावे पश्चात् कान, नेत्र, दोनों नासिकाओं और मुँह पर क्रमशः तर्जनी, मध्यमा, अनामिका व कनिष्ठिका को रखकर छः सेकिण्ड कुम्भक करे पश्चात् नासाग्र पर से अनामिका को शिथिल कर जालंधर बंध रखते हुए धीरे-धीरे दोनों नासिकाओं से रेचक करे। दूसरे प्राणायामों के साथ प्राणायाम करने से कुम्भक अधिक होता है परन्तु रेचक दोनों नासिकाओं से किया जाता है। अधिक कुम्भक के लिए उड्डियान बंध लगाया जाता है और रेचक के वक्त जालंधर बंध खोल दिया जाता है।

इस प्राणायाम से पित्त का निरोध समाधि में चित्त की एकाग्रता होती है।

(८) प्लावनी

पद्मासन से बैठकर दोनों हाथों को ऊपर की ओर लम्ब तथा सीधे रखे, दोनों नासिकाओं से पूरक करके लेट जाय, लेटते वक्त मत्स्यासन की तरह दोनों हाथों को समेट कर तकिए की तरह सिर के नीचे रखें और जहाँ तक कुम्भक ठहरे वहाँ तक ऐसी भावना करे कि मेरा शरीर रूई के समान हल्का है फिर पूर्व स्थिति में बैठकर दोनों नासाग्र से धीरे धीरे रेचक करे।

इसके निरन्तर अभ्यास से बारह-बारह घंटे बल्कि और भी समय तक जल पर तैरने व चलने की शक्ति आती है। बिना भोजन किए साधक केवल वायुपान करके कई दिन तक रह सकता है, साधकवायु को पानी की तरह धीरे-धीरे पीता है जिससे पेट कुछ फूला-सा होने लगता है और बजाने से वायु का शब्द होता है। धीरे धीरे इसका अभ्यास किया जाता है। धीरे धीरे डकार या उड्डीयान बंध द्वारा सब वायु बाहर निकाली जाती है इसके लिए साधक में कौशल की आवश्यकता है।

(९) कपालभाति

संस्कृत में कपाल के अर्थ है खोपड़ी और भाति के अर्थ हैं प्रकाशित होना अर्थात् इसके अभ्यास से खोपड़ी के विकार दूर होकर चमकने लगती है। पृष्ठयोग के प्रसिद्ध षट्कर्मों में यह भी एक क्रिया है।

पद्मासन से बैठकर व हाथों को घुटनों पर रखकर तथा आँखें बन्द

कर जल्दी जल्दी पूरक व रेचक करिए। इस प्रकार काफ़ी व्यायाम होने से पसीना निकलने लगेगा। इससे कुम्भक नहीं होता। रेचक ही इसका मुख्य अङ्ग है। पूरक दीर्घ, कोमल व धीर-धीरे करे, परन्तु रेचक जल्दी व पेडू की मांस पेशियों को पीछे की तरफ़ खींचते हुए करना चाहिए उनको ढीला कर देना चाहिए। धड़ और सिर को न झुकाकर सीधा रखना चाहिए। आरम्भ में प्रति सेकिण्ड एक व अभ्यास बढ़ने पर दो रेचक करे साथ ही पहले सप्ताह में प्रातःकाल १० रेचकों की एक आवृत्ति करे। दूसरे सप्ताह में सायंकाल भी १० रेचकों की एक आवृत्ति करे। तीसरे सप्ताह में दो आवृत्तियाँ सुबह व दो शाम को करे। इस प्रकार धीरे धीरे प्रति सप्ताह सुबह व शाम एक एक आवृत्ति बढ़ाकर एक बार में १२० रेचक तक करे। इसका अभ्यास हो जाने से भस्त्रिका प्राणायाम सरलता से हो जाता है।

इसके अभ्यास से नासामार्ग और श्वास यंत्रों की सफ़ाई होकर श्वास नलिका की रुकावटें दूर हो जाती हैं। दमा ऐसा भयंकर रोग कुछ ही दिनों में अच्छा हो जाता हैं। प्राण फेफड़ों की जड़ों तक पहुँचने लगते है जिससे क्षय के कीटाणु न ठहर सकने व फेफड़े पुष्ट हो जाने के कारण उक्त रोग नष्ट हो जाता है। रोगोत्पादक विषैली वायु बड़ी मात्रा में निकल जाती है और रक्त शुद्ध हो जाता है। शरीर के रग रेशों को अधिक मात्रा में शुद्ध वायु पान करने से स्वास्थ्य अच्छा हो जाता है व हृदय ठीक-ठीक काम करने लगता है।

अभ्यास करते समय सभी मांस तन्तु, कोष रगें, शिरायें व परमाणु काँपने लगते हैं।

(१०) तालयुक्त प्राणायाम

हम लोग बहुत ही अनियमित रूप से श्वास लेते हैं। इसी कारण हम लोंगों को नाना प्रकार की बीमारियाँ व कष्ट होते रहते हैं। अतएव हमें अपनी श्वास को नियमित रखने का अभ्यास करना चाहिए।

(१) श्वास १६ मात्रा में बाहर और १२ मात्रा में अन्दर जाता है। इस प्रकार ४ मात्रा की कमी रहती है। यदि आप १६ मात्रा में ही श्वास खींच भी सकें तो वह तालयुक्त प्राणायाम हो जाएगा। इसके अभ्यास से आनन्द की प्राप्ति, कुण्डलिनी जाग्रत, श्वास-प्रश्वास के केन्द्र पर अधिकार, स्नायु शांत तथा मन को स्थिर कर सकते हैं और बीमारियों से भी बच सकते हैं।

(२) ६ बार ॐ कहते हुए पूरक करके ६ बार ही ॐ कहकर रेचक करने से एक नियमबद्ध व तालयुक्त प्राणायाम हो जाएगा। इसके अभ्यास से श्रमित नसों को आराम मिलता है व आनन्द और शांति प्राप्त होती है।

(३) चार बार ॐ कहते हुए दोनों नासारंध्रों से पूरक, आठ बार ॐ कहते हुए कुम्भक (आभ्यान्तरिक) और चार बार ॐ कहते हुए रेचक तथा आठ बार ॐ कहते हुए श्वास बाहर रोंके (वाह्य कुम्भक करें) अपनी शक्ति के अनुसार इसी क्रम से मात्रा बढ़ाई जा सकती है। परन्तु तब तक शक्ति के अनुसार इसी क्रम से मात्रा बढ़ाई जा सकती है परन्तु जब तक शक्ति का निश्चय न हो जाय कभी संख्या न बढ़ाओं। ताल पर ध्यान देना चाहिए क्योंकि संख्या की अपेक्षा उसका अधिक महत्त्व है, सारा शरीर तालमय हो जाएगा और शान्ति व दृढ़ता प्राप्त होगी।

(११) कुंडलिनी जाग्रत करने वाला प्राणायाम

दाहिने अँगूठे से दक्षिण नासारन्ध्र को बन्द करके धीरे धीरे तीन बार ॐ कहते हुए वाम नासारन्ध्र से पूरक करिए और ध्यान करिए कि ऊर्ध्व वायु से प्राण खींच रहे हो। पश्चात् दाहिने हाथ की अनामिका और कनिष्ठिका अँगुलियों से बाम नासा रन्ध्र भी बन्द कर दीजिए। बारह बार ॐ कहते हुए श्वास स्थिर रखिए और मूलाधार

चक्र में श्वास को रीढ़ से पहुँचाइए। ध्यान करिए कि श्वासधारा मूलाधार चक्र छूती व कुण्डलिनी जाग्रत करती है। छः बार ॐ कहते हुए दक्षिण नासारंध्र से धीरे धीरे रेचक करिए। इसी प्रकार फिर दक्षिण नासारंध्र से करिए। इस क्रिया को तीन बार प्रातः व तीन बार सायंकाल करिए। अपनी शक्ति व योग्यता के अनुसार संख्या व समय को धीरे धीरे बढ़ाइए। इस प्राणायाम में मूलाधार चक्र पर ध्यान एकाग्र करना अत्यंत आवश्यक है। उक्त चक्र पर पूर्ण रीति से ध्यान एकाग्र करने व नित्य नियमपूर्वक उक्त प्राणायाम करने से कुण्डलिनी बहुत शीघ्र जाग्रत होती है।

उक्त चक्र गुदा के ऊपर व लिंगमूल के नीचे स्थित है।

(१२) सुखसाध्य प्राणायाम

अपने इष्ट देवता का ध्यान करके या चित्र रखकर पद्मासन या सिद्धासन से बैठ जाइए। दाहिने अँगूठे से दाहिने नासारन्ध्र को बन्दकर बाम से धीरे धीरे पूरक करे। पश्चात् दाहिने हाथ की छोटी व पास वाली अँगुली से बाम नासारन्ध्र को बन्द करिए। जब तक सुख से श्वास रोकी जा सके रोक कर अँगूठा हठा ले व दक्षिण नासारन्ध्र से श्वास को बाहर फेंक दे। यह आधी क्रिया हुई। फिर दक्षिण नासारन्ध्र से श्वास लेकर व पूर्ववत् रोककर बाएँ से बाहर फेंके। इस प्रकार यह एक प्राणायाम हुआ। इस तरह बीस प्रातः व बीस सायंकाल करे व धीरे-धीरे संख्या बढ़ावे। पूरक करते समय दया, प्रेम, क्षमा, शांति, आनन्द आदि देवी वृत्तियों के शरीर के अन्दर प्रवेश करने तथा रेचक के समय, काम , क्रोध, लोभ व मोह आदि आसुरी वृत्तियों के बाहर निकलने का विचार करे। साथ ही पूरक, कुम्भक व रेचक के समय ॐ या गायत्री का जप करे। कठिन परिश्रम करने वाला साधक एक आसन में अस्सी के हिसाब से प्रतिदिन चार बार में तीन सौ बीस कर सकता है।

यह प्राणायाम क्षय रोग को दूर, नाड़ियों को शुद्ध, मन को एकाग्र करता, भूख व पाचन शक्ति बढ़ाकर ब्रह्मचर्य की रक्षा व तत्क्षण नाड़ी शुद्धि तथा कुण्डलिनी को जगाता है इसके अभ्यास से मनुष्य ऊपर उठने लगता है।

(१३) चलते फिरते प्राणायाम

(१) सिर को ऊपर, कंधों को पीछे और छाती को चौड़ी कर के चलिए। दोनों नासारन्ध्रों से तीन बार (प्रत्येक पग पर एक बार) ॐ कहते हुए पूरक कर बारह बार ॐ कहने तक रोके रहिए और छः बार ॐ कहते हुए धीरे धीरे रेचक करिए। पश्चात् बारह बार ॐ कहने तक विश्राम करिए। यदि पग के अनुसार ॐ न कह सके तो वैसे ही कहे।

(२) इसी प्रकार चलते चलते कपाल भाति भी किया जा सकता है। जो लोग कार्यो में अधिक व्यस्त रहते हैं वे प्रातः व सायंकाल घूमते समय यह प्राणायाम कर सकते हैं। मैदान व शीतल वायु के चलते समय प्राणायाम से बड़ा आनन्द प्राप्त होता है स्फूर्ति और बल शीघ्र बढ़ता है।

ॐ कहते हुए तेज़ी से चलने पर प्राणायाम बिना परिश्रम व स्वयं हो जाता है।

(१४) शवासन में प्राणायाम

आराम से आसन पर लेटकर दोनों हाथों और पैरों को सीधा तथा घुटनों को पास रखिए। पसलियों व नसों को ढीला कर दीजिए। दोनों नासारन्ध्रों से बिना शब्द के धीरे धीरे पूरक करके जब तक हो सके कुम्भक करके दोनों ही नासारन्ध्रों से रेचक कर दीजिए। इस क्रिया को १२ बार प्रातः और १२ बार सांयकाल ॐ कहते हुए करे।

आसन, प्राणायाम, ध्यान व विश्राम सभी इस अभ्यास में हो जाते हैं यह शरीर के साथ मन को भी शान्ति, सुख और आनन्द पहुँचाता है।

यह कमज़ोर व वृद्ध पुरूषों के लिए बहुत ही उपयोगी है।

गृहस्थों की नित्य- नैमित्तक साधना

(१) सूर्योदय से पहले उठना चाहिए।

(२) उठते ही भगवान् का स्मरण व प्रार्थना करनी चाहिए।

(३) गुरु, माता, पिता आदि बड़ों को प्रणाम करना चाहिए।

(४) शौच स्नानादि से निवृत्त होकर भगवान् अथवा इष्टदेव की उपासना, संध्या व तर्पणादि करना चाहिए।

(५) अपने धन्धे या व्यापारादि में छल, कपट, चोरी असत्य और बेईमानी का त्याग करके सच्चाई और ईमानदारी से काम करो। अपने कारोबार में आलस्य त्याग कर पूर्ण परिश्रम से काम करो।

(६) अपना धन उपयोगी व आवश्यक कार्यों में ही व्यय करो। विलासिता व अपव्यय (फिजूल ख़र्ची) से बचो।

(७) अपनी सामर्थ्य के अनुसार योग्य व्यक्तियों की धनादि से सहायता करो।

(८) इन्द्रियों के आधीन न होकर उनको अपने वश में रखो।

(९) अपने प्रत्येक कार्य में सत्य, ईमानदारी व प्रेम का व्यवहार क़रो।

(१०) किसी का तिरस्कार, अपमान व अहित न करो। कभी किसी से कटु वचन न बोलो और न किसी से ईर्ष्या व द्वेष रखो।

(११) मन, वचन और शरीर से पवित्र, विनयशील व परोपकारी बनो।

(१२) अपने कुटुम्बी, सम्बन्धी, मित्र, पड़ोसी आदि से सदा प्रेम का व्यवहार रखो।

(१३) सभी उपयुक्त कर्मो को ईश्वर के कार्य समझकर अपने मन में कर्ता होने का अभिमान न करके तथा फल की इच्छा छोड़कर ईश्वर अर्पण करते हुए करो।

(१४) अपना भार दूसरों पर न डालकर सदा स्वावलम्बी बनो।

(१५) बुरी संगत से बचकर सदैव सत्संग करो।

(१६) अपना समय कभी व्यर्थ नष्ट न करके उसका पूरा-पूरा सद् उपयोग करो। कभी बेकार अथवा आलस्य में अपना समय न गँवाओ।

(१७) सदा शुद्ध और ात्विक भोजन करो व नियम से रहो।

(१८) अपने कार्य में असफल होने पर निराश व दु:खी न होकर अधिक उत्साह से काम करो।

(१९) सच्चाई, ईमानदारी व पूर्ण परिश्रम के साथ जो प्राप्त हो जाया करे, उसी पर सन्तोष करो।

(२०) अपनी मृत्यु को लक्ष्य में रखते हुये ईश्वर को उपस्थित समझकर ही सब काम करो और सदैव भगवत्प्राप्ति ही अपना मुख्य उद्देश्य समझो।